राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

राजस्थान राज्य द्वारा प्रकाशित

प्रधान सम्पादक—चन्द्रमोहन मीना I.A.S.

[निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर]

ग्रन्थाङ्क १७८

सायणीयनिरुक्तिकोश

सम्पादक

डा० द० बा० क्षीरसागर

प्रकाशक

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर (राजस्थान)

RAJASTHAN ORIENTAL RESEARCH INSTITUTE, JODHPUR

१९९४ मूल्य ६८.००

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला
राजस्थान राज्य द्वारा प्रकाशित

प्रधान सम्पादक—चन्द्रमोहन मीना I.A.S.

[निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर]

ग्रन्थाङ्क १७८

सायणीयनिरुक्तिकोश

सम्पादक
डा० द० बा० क्षीरसागर

प्रकाशक
राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान
जोधपुर (राजस्थान)

RAJASTHAN ORIENTAL RESEARCH INSTITUTE, JODHPUR

१९९४ मूल्य ६८.००

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

राजस्थान राज्य द्वारा प्रकाशित

प्रधान सम्पादक--चन्द्रमोहन मीना I.A.S.

[निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर]

ग्रन्थाङ्क १७८

सायणीयनिरुक्तिकोश

सम्पादक

डा० द० बा० क्षीरसागर

प्रकाशक

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर (राजस्थान)

RAJASTHAN ORIENTAL RESEARCH INSTITUTE, JODHPUR

१९९४ मूल्य ९८.००

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

प्रकाशक
(राजस्थान राज्य संस्थापित)
निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान
जोधपुर (राजस्थान)

प्रथम संस्करण : १९९४

प्रथमावृत्ति : ५००

© प्रकाशक

मूल्य : ६८.०० रुपये

मुद्रक
मारवाड़ प्रिण्टर्स, जोधपुर

विक्रमाब्द : २०५०   ख्रिस्ताब्द : १९९४

T   CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

निदेशकीय

वैदिक साहित्य संसार का प्राचीनतम वाङ्मय होने के गौरव से युक्त है किन्तु भाषा की दुरूहता के कारण उसके अध्येताओं की संख्या अपेक्षाकृत सीमित रही है। वेदों की इसी दुर्बोधता के कारण नाना प्रकार से उसके अर्थ की अभिव्यक्ति करने के प्रयास होते रहे। वेदों के उपलब्ध भाष्यों के आचार्यों में सायण प्रथम व्यक्ति हैं। सायण के बाद और भी भाष्य लिखे जाते रहे, विशेषकर वर्तमान में महर्षि अरविंद, महर्षि दयानन्द सरस्वती एवं महामहोपाध्याय पं. मधुसूदन ओझा जैसे लब्धप्रतिष्ठ विद्वानों ने वेदों की मनोवैज्ञानिक, व्युत्पत्तिप्रधान एवं वैज्ञानिक व्याख्याएँ प्रस्तुत की हैं। फिर भी, वेद की संहिताओं के यज्ञपरक अर्थ का अपना अलग महत्व है और इस दृष्टि से सायण भाष्य न केवल उपादेय है, अपितु सामान्य संस्कृतज्ञ के लिये भी वह सहज बोधगम्य है।

सायण भाष्य अत्यधिक विस्तृत है और शब्दों की निरुक्ति की दृष्टि से अध्ययन करने वालों अथवा मीमांसकों के लिये सभी भाष्य-स्थलों को एक साथ ध्यान में रखना किंचित् दुष्कर है। इसलिये इस प्रकार के समेकित कोश की आवश्यकता का अनुभव किया जा रहा था। डा. द. बा. क्षीरसागर ने अत्यन्त परिश्रमपूर्वक आचार्य सायण के द्वारा दी गयी निरुक्तियों का संकलन किया है। उनके प्रयत्न को पुस्तक रूप में आपके हाथों सौंपते हुए मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है। आशा है, विद्वज्जगत् एवं शोधार्थी इस संकलन से अवश्य ही लाभान्वित होंगे।

चंद्रमोहन मीना

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

प्रकाशक
(राजस्थान राज्य संस्थापित)
निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान
जोधपुर (राजस्थान)

प्रथम संस्करण : १९९४

प्रथमावृत्ति : ५००

© प्रकाशक

मूल्य : ६८.०० रुपये

मुद्रक
मारवाड़ प्रिन्टर्स, जोधपुर

विक्रमाब्द : २०५० खिस्ताब्द : १९९४

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

निदेशकीय

वैदिक साहित्य संसार का प्राचीनतम वाङ्मय होने के गौरव से युक्त है किन्तु भाषा की दुरूहता के कारण उसके अध्येताओं की संख्या अपेक्षाकृत सीमित रही है। वेदों की इसी दुर्बोधता के कारण नाना प्रकार से उसके अर्थ की अभिव्यक्ति करने के प्रयास होते रहे। वेदों के उपलब्ध भाष्यों के आचार्यों में सायण प्रथम व्यक्ति हैं। सायण के बाद और भी भाष्य लिखे जाते रहे, विशेषकर वर्तमान में महर्षि अरविंद, महर्षि दयानन्द सरस्वती एवं महामहोपाध्याय पं. मधुसूदन ओझा जैसे लब्धप्रतिष्ठ विद्वानों ने वेदों की मनोवैज्ञानिक, व्युत्पत्तिप्रधान एवं वैज्ञानिक व्याख्याएँ प्रस्तुत की हैं। फिर भी, वेद की संहिताओं के यज्ञपरक अर्थ का अपना अलग महत्व है और इस दृष्टि से सायण भाष्य न केवल उपादेय है, अपितु सामान्य संस्कृतज्ञ के लिये भी वह सहज बोधगम्य है।

सायण भाष्य अत्यधिक विस्तृत है और शब्दों की निरुक्ति की दृष्टि से अध्ययन करने वालों अथवा मीमांसकों के लिये सभी भाष्य-स्थलों को एक साथ ध्यान में रखना किंचित् दुष्कर है। इसलिये इस प्रकार के समेकित कोश की आवश्यकता का अनुभव किया जा रहा था। डा. द. बा. क्षीरसागर ने अत्यन्त परिश्रमपूर्वक आचार्य सायण के द्वारा दी गयी निरुक्तियों का संकलन किया है। उनके प्रयत्न को पुस्तक रूप में आपके हाथों सौंपते हुए मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है। आशा है, विद्वज्जगत् एवं शोधार्थी इस संकलन से अवश्य ही लाभान्वित होंगे।

चंद्रमोहन मीना

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

प्राक्कथन

डा. दत्तात्रेय क्षीरसागर के इस ग्रंथ के विषय में दो शब्द लिखते हुए मुझे अत्यंत हर्ष हो रहा है। सर्वप्रथम मुझे इनके पीएच. डी. शोध-प्रबन्ध को देखने का सुयोग मिला था। तभी से मैं इनके गंभीर अध्ययन चिंतन से प्रभावित हूँ। वैदिक मनु पर लिखा गया वह शोध-पूर्ण ग्रंथ निस्संदेह वैदिक अध्ययन को एक नई दिशा देने वाला है। उसके पश्चात् विभिन्न विषयों पर इनके लेख आते रहे। इधर जोधपुर राज्य के संगीतज्ञों की परंपरा पर भी इन्होंने लिखा है, क्योंकि अपने सुयोग्य पिता से इन्हें संगीत-विद्या का ज्ञान और प्रेम भी प्राप्त हुआ है। प्राच्य-विद्या-प्रतिष्ठान के विविध कार्यों में संलग्न रहने के साथ ही नगर के सांस्कृतिक कार्यक्रमों (विशेषकर साहित्य और संगीत के) से डाक्टर क्षीरसागर जुड़े रहते हैं। फिर भी गंभीर शोधकार्य के लिए समय निकाल लेने के लिए वे बधाई के पात्र हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ वेद के सुप्रसिद्ध भाष्यकार आचार्य सायण के विविध भाष्यों पर आधारित है। आचार्य सायण ने अपने वेद-भाष्यों में अनेक दुर्बोध शब्दों की विद्वतापूर्ण व्याख्या प्राचीन परंपरा के आधार पर दी है। प्रसंगवश उन्होंने स्थान-स्थान पर वैदिक शब्दों के निर्वचन भी दिए हैं। इन सभी निर्वचनों को लेखक ने संकलित किया है जो अपने में स्वयं एक अत्यंत परिश्रम-साध्य तथा समय-साध्य कार्य है। साथ ही इस विद्वान् ने इस बात का भी पता लगाया है कि आचार्य सायण ने कौन सा निर्वचन किस ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् आदि में दिया है। इसलिए व्युत्पत्ति-संग्रह की उपयोगिता और बढ़ गई है। इस संपूर्ण कार्य के लिए संकलनकर्त्ता को साधुवाद अर्पित करता हूँ।

सायणीय निरुक्तियों का यह संकलन वैदुष्य एवं उपयोगिता की दृष्टि से भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण होगा। पूरा कार्य वैदिक अनुसंधान और अध्ययन के

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

लिए बहुत सहायक सिद्ध होगा। यह एक ऐसा कार्य है जिसकी आवश्यकता बहुत दिनों से अनुभव की जा रही थी। आशा है वैदिक विद्वान् और वेद-प्रेमी सज्जन इस ग्रंथ से समुचित लाभ उठाकर विद्वान् संपादक के परिश्रम को सार्थक करेंगे।

प्राच्यविद्याप्रतिष्ठान ने इस ग्रंथ को प्रकाशित करके विद्वज्जगत् का जो उपकार किया है उसके लिए वह धन्यवाद का पात्र हैं। डा. क्षीरसागर अपने अनुसंधान द्वारा वैदिक अध्ययन एवं शोध में निरंतर इसी प्रकार योग देते रहेंगे। ऐसी आशा करता हूँ।

फतहसिंह
निदेशक,
वेद संस्थान, नई दिल्ली

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

भूमिका

वेदार्थ की अभिव्यक्ति या उसे जानने के जो-जो प्रयत्न हुए हैं, उनमें प्राचीन और मध्यकालीन भारतीय चिन्तकों की दृष्टि ने वेद के आधिभौतिक अर्थ को ही, चूंकि वह साक्षात् ब्राह्मणग्रंथों की यज्ञप्रक्रिया से ही संबद्ध है, यज्ञपरक मानकर ग्रहण किया है। वेद चूंकि मंत्र और ब्राह्मण ग्रन्थ दोनों के लिये ही प्रयुक्त होता रहा है, संहिता में आये शब्दों की निष्पत्ति से ब्राह्मणग्रंथों में उपलब्ध उन्हीं शब्दों से सामञ्जस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया जाता रहा। निघण्टु जो आद्य वैदिक कोश है, उसके निरुक्तिकार यास्काचार्य और उनके टीकाकार दुर्गाचार्य इन दोनों का ही वेद के भारतीय व्याख्यानकारों पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। स्वयं आचार्य सायण के वेद भाष्य में ही कुछ पूर्व-टीकाकारों का मिलने वाला उल्लेख यद्यपि इस बात का स्वयमेव प्रमाण है कि उनसे पूर्व भी वेदभाष्य विद्यमान रहे हैं, परन्तु यह भी सर्वमान्य ही है कि वेदों के उपलब्ध भाष्यों में उपलब्ध विस्तृत पूर्वतम भाष्य आचार्य सायण का ही है।

आचार्य सायण ने (१) तैत्तिरीय-संहिता, ऋग्वेद-संहिता, सामवेद-संहिता, काण्व संहिता (शुक्ल-यजुर्वेदीय), अथर्ववेद-संहिता (२) तैत्तिरीय ब्राह्मण तथा आरण्यक (३) ऐतरेय-ब्राह्मण तथा आरण्यक (४) ताण्ड्य-महाब्राह्मण, षड्विंश-ब्राह्मण, सामविधान-ब्राह्मण, आर्षेय-ब्राह्मण, देवताध्याय, उपनिषद्-ब्राह्मण, संहितोपनिषद्-ब्राह्मण, वंश-ब्राह्मण तथा (५) शुक्ल यजुर्वेदीय शतपथ ब्राह्मण पर, विस्तृत भाष्यों की रचना की है। बहुत संभव है कि उनके पूर्व भाष्यकार कुण्डिन, भवस्वामी, गुहदेव, क्षुर तथा भट्ट भास्कर मिश्र के तैत्तिरीय भाष्य, माधव भट्ट, स्कन्दस्वामी, वेंकटमाधव, आनन्दतीर्थ, आत्मानंद, गोविन्दस्वामी और षड्गुरुशिष्य के ऋग्वेद या ऐतरेय ब्राह्मण के भाष्य, माधव, भरतस्वामी और गुणविष्णु के सामभाष्य सायण के समय में उपलब्ध रहे हों तथा उनका पूरा उपयोग भी किया गया

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

हो। परन्तु यह तथ्य तो हमे निर्विवाद रूप से स्वीकार करना चाहिये कि सायण के परवर्ती भारतीय चिन्तक उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाये हैं।

वेद की संहिताएँ और तत्सम्बद्ध ब्राह्मणादि साहित्य हमें परम्परा से प्राप्त हुआ है और उसके व्याख्यान में भी परम्परा के आश्रय का अनन्य महत्त्व है। सायणीय भाष्य का भी परम्पराश्रयत्व के कारण ही महत्त्व है। आचार्य यास्क ने भी कहा है कि मंत्रों की व्याख्या पृथक्-पृथक् न कर प्रकरण के अनुसार ही की जानी चाहिये। केवल परम्परा ही नहीं, वेदभाष्य के लिये आवश्यक मीमांसा, निरुक्त, व्याकरण आदि शास्त्रों को भी सायण ने अपने भाष्य का आधार बनाया है। उनकी यह आधार-सीमा पुराणों तक भी चली जाती है, क्योंकि पुराण और इतिहास से वेदार्थ के उपबृंहण की मान्यता का भी उन्होंने पालन किया है। यास्क के अतिरिक्त ऋग्भाष्य में उन्होंने स्कन्द और माधव को भी उद्धृत किया है। सायण यज्ञविधान के भी प्रकृष्ट पण्डित जान पड़ते हैं और इसीलिये व्याख्यान में मीमांसा का निवेश उन्होंने बहुत सुन्दर ढंग से किया है। उनके द्वारा याज्ञिक-परम्परा को पुष्ट करनेवाला व्याख्यान डा. बलदेव उपाध्याय के शब्दों में उस समय की आवश्यकता ही थी। भाष्य की महत्ता के विषय में वे लिखते हैं—"उनका वेदभाष्य वास्तव में वेदार्थ की कुञ्जी है, वेद के दुर्गम दुर्ग में प्रवेश कराने के लिये विशाल सिंहद्वार है।"

वेद की पांच संहिताओं तथा शतपथ एवं अन्य ब्राह्मण ग्रन्थों के इस विस्तृत भाष्य में, चूंकि उन्होंने प्रकरणानुसार ही यास्कवचन का पालन करते हुए लिखा है, शब्दों की भिन्न-भिन्न निरुक्तियां पाई जाती हैं और यह अर्थभिन्नता अध्येता के मन में संशय उत्पन्न करने का कारण बन जाती है। दूसरे, इस विशाल भाष्य का मात्र पारायण भी करें तब भी वह समयापेक्षी कार्य है। इसलिये वैदिक साहित्य के अध्ययनकर्ताओं को आने वाली कठिनता का विचार कर मैंने "ऋग्वैदिक मनु की परिकल्पना" इस विषय पर अपना शोधकार्य संपन्न करने के पश्चात् सायणाचार्य के उपलब्ध संपूर्ण वैदिक भाष्य का अध्ययन प्रारम्भ किया—साथ में उनके द्वारा दिये गये शब्दों के निर्वचनों का संकलन करता गया और लगभग 7-8 वर्षों के निरन्तर श्रम का ही यह सुफल है कि उनके द्वारा दी गयी सभी निरुक्तियों का एक संकलन तैय्यार हो सका।

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

वैदिक साहित्य में पारायण और अध्ययन की दृष्टि से ऋक्संहिता का ही प्राथम्य है, तथापि सायण ने अपने भाष्य का प्रारम्भ तैत्तिरीय-संहिता से ही किया है, इसलिये मैंने भी इस निरुक्ति-कोश में तैत्तिरीय आदि ऋग्वेदेतर संहिताओं की निरुक्तियों को प्रथम भाग में दिया है, दूसरा भाग ऋग्वेद की निरुक्तियों का तथा तीसरा भाग ब्राह्मण ग्रंथ, उपनिषद् तथा आरण्यकों की निरुक्तियों के संकलन को प्रस्तुत करता है।

वैदिक शब्दों की अर्थमीमांसा को सुकर करने के लिये यद्यपि पूर्वत: पं. भगवद्दत्त, डॉ. सूर्यकान्त, डॉ. फतहसिंह, मेक्डोनेल और कीथ के वैदिक कोश उपलब्ध हैं, तथापि वे किसी टीकाकार विशेष की दृष्टि का उद्-बोधन नहीं कराते हैं। स्वामी दयानन्दजी सरस्वती के भाष्य में उपलब्ध निर्वचनों का संग्रह किये जाने की भी चर्चा है। इससे स्पष्ट है कि वेदार्थ के लिये परम्परा विशेष का अनुकरण करने की प्रवृत्ति अब भी विद्यमान् है। दूसरे भगवद्दत्तजी या डॉ. फतहसिंह के कोश वेद के पाठ को ही आधार बनाते हैं, किसी टीका विशेष को नहीं। ऊपर परम्परा की चर्चा आयी है, परम्परा को जानने के लिये परम्परागत ज्ञान ही आधार हो सकता है। इस दृष्टि से सायणाचार्य की निरुक्तियों का यह संकलन, मुझे आशा है, वेद के अध्येता और आचार्य दोनों के लिये उपयोगी सिद्ध होगा।

प्राच्य-विद्या-प्रतिष्ठान के पूर्व-निदेशक और मेरे गुरुवर्य डॉ. फतहसिंहजी ने इस संकलन का प्राक्कथन लिखकर मुझ पर "गुरु-ऋण" की जो मात्रा बढ़ायी है, उससे उऋण होना भी नहीं चाहता। निरुक्तियों के संकलन में प्राच्य-विद्या-प्रतिष्ठान के पुस्तकालय के अतिरिक्त सरस्वती पुस्तकालय, उदयपुर और रामानुजकोट पुस्तकालय, जोधपुर से भी मुझे जो सहायता प्राप्त हुई है, तदर्थ मैं उनका हृदय से आभारी हूँ।

विदुषां वशंवद:
द. बा. क्षीरसागर

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अनुक्रम

निदेशकीय

प्राक्कथन

भूमिका

संकेतसूची

ऋग्इतरसांहितेय-प्रथमभागः .... 1—112

ऋक्सांहितेय-द्वितीयभागः 113–209

ब्राह्मणारण्यकीय-तृतीयभागः 210--295

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

संकेत - सूची

तै. सं.	—	तैत्तिरीय संहिता	....
तै. ब्रा.	—	तैत्तिरीय ब्राह्मण	....
तै. आ.	—	तैत्तिरीय आरण्यक	....
ऋ.	—	ऋग्वेद संहिता	....
ऐ. उ.	—	ऐतरेय उपनिषद्	....
ऐ. आ.	—	ऐतरेय आरण्यक	....
का. सं.	—	काण्व संहिता (शुक्लयजुर्वेदोया)	....
अ. वे.	—	अथर्ववेद संहिता	....
सा. वे.	—	सामवेद संहिता	....
तां. म. ब्रा.	—	ताण्ड्य महाब्राह्मण	....
षड् ब्रा.	—	षड्विंश ब्राह्मण	....
सा. वि. ब्रा.	—	सामविधान ब्राह्मण	....
दे. ब्रा.	—	देवताध्याय ब्राह्मण	....
उ. ब्रा.	—	उपनिषद् ब्राह्मण	....
सं. उ. ब्रा.	—	संहितोपनिषद् ब्राह्मण	....
वं. ब्रा.	—	वंश ब्राह्मण	....
श. ब्रा.	—	शतपथ ब्राह्मण (शुक्लयजुर्वेदीय)	....

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

सायणीयनिरुक्तिकोशः

(सायणीयवेदभाष्योपलब्धनिर्वचनसंग्रहः)

ऋगेतरसांहितेयादिमभागः

अ

अंशध्री (यज्ञवेदि)

अंशान् भागान् देवमनुष्यपितृसम्बन्धिनो धारयतीति अंशध्री ।

—अ. वे. ११, १, २३;

अंशभू (सोमवरुणौ)

अंशं द्रव्यभागं भवते प्राप्नोतीति अंशभूर्दायादः । —तै. सं. ६, ४, ८, २;

अंहोमुक्

अंहसो मोचयतीति अंहोमुक् । —तै. सं. ७, ५, २२, १;

अङ्कुपच्छन्दस्

अं कुपं कुटिलगतया आप्नोति इति अंकुपमुदकम् । —का. सं. १६, १;

अङ्गिरस्

(1) अङ्गति सर्वत्र गच्छतीति अङ्गिरोऽग्निः ।

—सा. वे. २, १५, २, २, १;

(2) अङ्गारेभ्यो जातो महर्षिरङ्गिरा । —अ. वे. ४, २९, ३;

अग्धात् (अग्नि)

अग्नयस्त्रयस्तेष्वेकोऽग्धं होमेनाऽऽगतमत्तीति अग्धात् ।

—तै. सं. ३, ३, ८, २;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अग्नि

अङ्गति गच्छति सर्वंजाठरवैद्युतादिरूपेण कृत्स्नं जगद् व्याप्नोतीति ।

—ग्र. वे. १, ७, १; ३, १, १;

अग्निष्टुत्

अग्निरेव यत्र स्तूयते सोऽग्निष्टुत् । —तै. सं. ७, ४, ३, ३;

अग्न्याधेय

अग्नयो गार्हपत्यादयो यस्मिन् कर्मणि आधीयन्ते तद् अग्न्याधेयम् ।

—अ. वे. ११, ६, ८;

अग्रेगा

अग्रे गन्तुं शक्नोतीति अग्रेगा तादृशी वाक् । —तै. सं, ३, १, १०, २;

अग्रेगु (आपः)

प्रवाहरूपेण शीघ्रगामित्वात् गन्तृभ्योऽपि अग्रे गच्छन्तीति अग्रेगुवः ।

—तै. सं. १, १, ५, १;

अग्रेणी (अग्नि)

अग्रे प्रथमं नीयत इति अग्रेणी । —का. सं. ६, १, २;

अग्रेपू (आपः)

शुद्धिहेतूनां दर्भादीनामपि प्रोक्षणेन शोधकत्वात् अग्रे पुनन्तीति अग्रेपुवः ।

—तै. सं. १, १, ५, १;

अग्रेवध (रुद्र)

अग्रे पुरो वर्तमानो हन्तीति अग्रेवधः । —का. सं. १७, ६, ४;

अघमार

अघेन पापेन निमित्तेन मारयतीति अघमारः । —अ. वे. ६, ९३, १;

अघशंस

(1) अघं पापं शंसति·······राक्षसः ।

—का. सं. १४, १; अ. वे. ८, ४, ४;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

(2) अघं पापं हिंसालक्षणं तद् शंसति । —अ. वे. १६, ४७, ६;

(3) अघेन पापेन क्रूरेण शस्त्रादिना शंसति हिनस्तीति वा अघशंसः ।
—अ. वे. १६, ४७, ६;

अघशंसहा (सोम)
अघं पापं शंसतीति अघशंसाऽऽसुरास्तेषां हन्तेति ।
—सा. वे. २, ६, १, ३, ७;

अच्युतक्षित् (पैतुद्रुवृक्षः उत्तरवेदीस्थतद्काष्ठादिर्वा)
अच्युते विनाशरहिते यज्ञे क्षियति निवसतीति अच्युतक्षित् ।
—का. सं. ५, ४, ४;

अच्युतक्षित्तम (ध्रुव)
अच्युते क्षियन्ति निवसन्तीति अच्युतक्षितः तेषां श्रेष्ठः ।
—का. सं. ७, ११, २;

अज
अजति गच्छतीति अजरो गतिशीलः । —का. सं. १७, ५, ४;

अञ्जयान
अञ्जसाऽऽर्जवेन यान्ति गच्छन्ति एभिरिति अञ्जयानाः ।
—अ. वे. १८, २, ५३;

अतिच्छन्दस्
अक्षराधिक्येन गायत्र्यादीनि छन्दांस्यतिक्रम्य वर्तत इति अतिच्छन्दाः ।
—तै. सं. ६, १, ६, ४;

अतिथि (अग्नि)
यजमानानां गृहान् प्रति तिथिषु न अभ्येतीति अतिथिः ।
—सा. वे. १, १, ६, ५;

अतिथिग्व
अतिथ्यर्था गावो यस्य..................अथवा सत्कारार्थं अतिथीन् गच्छतीत्यतिथिग्वः । —अ. वे. २०, ३७, ८;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अतिपश्य

अतिशयेन अतिक्रम्य वा पश्यतीति अतिपश्यः। —अ. वे. ११, २, १७;

अतिरात्र (सोमयाग)

रात्रिमतीत्य वर्तत इति अतिरात्रः..........एकोनत्रिंशत्स्तुतशस्त्रवान् सोमयागः। —अ. वे. ११, ९, ११;

अत्रि

मातृपित्रात्मसम्बन्धिनस्त्रिविधाः दोषा नास्मिन्निति सन्ति अत्रिः।

—अ. वे. ४, २९, ३;

अदारसृत्

दारयन्ति पुरुषहृदयं विदारयन्तीति दारास्स्त्रियः। दारान् सरति गच्छतीति दारसृत्। न दारसृत् अदारसृत्। —अ. वे. १, २०, १;

अद्मसद्वन्

अद्यत इति अद्म अन्नम्। तस्मिन् सीदतीति अद्मसद्वा भुक्तमन्नं जरयितुं जाठराग्निरूपेणात्र सीदतीति। —तै. सं. १, ३, १४, ७;

अद्रिज

अद्रौ पर्वते दावानलरूपेण जायत इति अद्रिजा। —तै. सं. ४, २, १, ५;

अद्रिवन् (इंद्र)

अत्ति भक्षयति शत्रूनिति अद्रिर्वज्रः। आदृणातीति वा।

—अ. वे. २०, २०, ४;

अधराची (यातुधानी)

अधरं अधोदेशे अञ्चन्तीति ताः अधराच्यः। —का. सं. १७, १, ५;

अधिदेवन

(1) अधिदीव्यन्ति द्यूतेन क्रीडन्त्यस्मिन् स्थान इत्यधिदेवनम्।

—तै. सं. ३, ४, ८, २;

(2) अध्युपरि दीव्यन्त्यस्मिन् कितवा इत्यधिदेवनं द्यूतस्थानम्।

—अ. वे. ६, ७०, १;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अधिपति

अधिकं पालयन्तीत्यधिपतयः। —तै. सं. ५, ५, १०, २;

अधिपत्नी

(1) (इष्टका) अधिकं पातीति अधिपत्नी।

(2) (ऊर्ध्वदिक्) अधिपालयतीति व्युत्पत्त्याऽधिपत्नी इति ऊर्ध्वदिशो नाम। —तै. सं. ५, ५, १०, २;

अधिराज

अधिकं राजत इत्यधिराजः। —तै. सं. १, ३, ७, २;

अधीति

अधीयन्त इत्यधीतयः। —अ. वे. २, ६, ३;

अद्धाति

अद्धा प्रत्यक्षं अतति सततध्यानेन प्राप्नोतीति अद्धातिः। एतत्संज्ञो महर्षिः। —अ. वे. ६, ७६, २;

अनड्वान्

(1) अतो वहतीति अनड्वान् बलीवर्दः। —का. सं. १५, ३;

(2) अनः शकटं वहतीति अनड्वान्। शकटवहनसमर्थो वृषः.......... यद्वा। अनडुच्छब्देन वृषरूपो धर्मोऽभिधीयते। धर्मो वृषभाकृतिर्भूत्वा पृथिव्यादिधारणं करोतीति योज्यम्। —अ. वे. ४, ११, १;

अनानुद (इन्द्र)

नुदति शत्रूनपसारयतीति नुदः न तादृशोऽनुदः अप्रेरकः। तादृशो न भवतीति अनानुदः। सर्वदा शत्रुच्यावकः....... अथवा अनु पश्चात् द्यति खण्डयति इत्यनुदोऽनुचरः। स यस्य नास्ति सोऽनानुदः। —अ. वे. २०, २१, ८;

अनस्थ

न विद्यत अस्थि-उपलक्षितं षाट्कौशिकं शरीरमेषामिति अनस्थाः। —अ. वे. ४, ३४, २;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अनास्राव

आस्रवन्तीति आस्रावाः अतीसारातिमूत्रनाडीव्रणादयः। तेषां निवर्तकम्। —अ. वे. २, ३, २;

अनुपसेचन (ब्रह्मौदन)

उपसिच्यत अनेनेति उपसेचनम्। क्षीराज्यदध्यादि तद्रहितम्। --अ. वे ११, ३, २४;

अनुमति

चतुर्दशीमिश्रितायाः पौर्णमास्याऽभिमानिदेवताऽनुमतिः। —तै. सं. १, ८, १, १;

अनुस्रोक

स्रोकमनुसृत्य गच्छतीति अनुस्रोकः। —अ. वे. २, २४, ३;

अनुरोधन

अनुरुध्यते वशीक्रियत अनेनेति अनुरोधनम्। —अ. वे. ६, १०२, ३;

अनुवा

अनु सूर्यास्तमयात् पश्चात् वाति चरति प्रयातीति अनुवा सायंसंध्या। —तै. सं. ४, ४, १, १;

अनुसर्प

सर्पः एतद्संज्ञो यातुधानाधिपतिः। तमनुसृत्य गच्छतीति। —अ. वे. २, २४, २;

अनुस्तरणी

मृतं दीक्षितमनुस्तीर्यते हन्यत इत्यनुस्तरणी काचिद्गौः। —तै. सं. ६, ६, ७, १;

अनूकाश

अनुक्रमेण काशन्ते भासन्ते ज्योतींष्यस्मिन्। —तै. सं. ५, ७, १२, १;

अनूक्य

(1) अनुक्रमेणोच्यन्ति समवयन्ति अस्थीनि अस्मिन्निति अनूक्यं तत्संधिः। —अ. वे. २, ३३, २;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

(2) अनु उच्यते समवेयते संधीयत इति अनूक्या ।

—अ. वे. ११, ३, ६;

अनूचीन

अनुक्रमेणाञ्चति प्रवर्तत इत्यनूचीनम् । —तै. सं. ७, १, ५, ४;

अनृतदेव (स्तोता)

अनृतेन दीव्यन्तीति······· अथवा अनृताः असत्यभूताः देवाः अस्य ।

—अ. वे. ८, ४, १४;

अन्तक

अन्तं करोतीति । —अ. वे. ८, १, १; १६, ६, ७;

अन्तरिक्ष

अन्तरा क्षान्तमिति । —अ. वे. ७, १, २; २०, ११, १०; ३४, २;

अन्तरिक्षसद् (रथ)

(1) तरुगुल्माद्यनवरुद्धेऽन्तरिक्षे सीदतीति ।

—तै. सं. १, ८, १५, २;

(2) अन्तरिक्षे धूमज्वालादिरूपेण सीदतीति ।

—तै. सं. ४, २, १, ५;

अन्नाद

अन्नं पुरतः प्राप्तं सर्वमत्तीति अन्नादः । —का. सं. ३, २, ५;

अन्वाहार्य

अतिरिक्तकर्मणो यच्च ही नमित्यस्मिन् प्रायश्चित्ताहुतिमन्त्रे प्रोक्तमधिकं यज्ञाङ्गमत्र क्रूरं न्यूनं विश्लिष्टं तदुभयमनेनान्वाहार्यदानेनानुकूलं यथा भवति तथाऽऽहरति समादधति । तस्मादन्वाहार्यंत आनुकूल्येन समाधीयतऽनेनेति अन्वाहार्यः । —तै. सं. १, ७, ३, १;

अन्वाहार्यपचन

अन्वाहार्यः पच्यतेऽस्मिन्निति अन्वाहार्यपचनः । —तै. सं. १, ७, ३, १;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अपचित्

अपाक् चीयमाना गलादारभ्याधस्ताद् कक्षादिसंधिस्थानेषु प्रसृता गण्डमाला अपचितः। यद्वा। अपचिन्वन्ति पुरुषस्य वीर्यमित्यपचितः।

—अ. वे. ७, ७८, १;

अपधा

अप कुत्सितं धीयत इत्यपधा। —अ. वे. २०, ३४, ३;

अपस्कम्भ

अपस्कभ्यते विधार्यंत अन्तरिक्षे इत्यपस्कम्भः क्रमुकवृक्षः। यद्वा। अपस्कभ्यते धनुषि धार्यंत इति अपस्कम्भो बाणः।

—अ. वे. ४, ६, ४;

अपान

(1) अपकर्षेण मुखादधस्तादुदरस्थान्तरनिति चेष्टत इत्यपानः।

—तै. सं. २, १, १, २;

(2) अपानितीति अपानः।

—अ. वे. २, १६, १; ८, १, १; ७, ५५, २;

अपापकाशिनी (रुद्रस्य तनुः)

पापं हिंसारूपमनिष्टं काशयतीति
पापकाशिनी तादृशी न भवतीति।

—तै, सं. ४, ५, १, १;

—का. सं. १७, १, २;

अपामार्ग

अपमृज्यते रोगादिनिराकरणेन पुरुषः शोध्यत अनेनेति अपामार्गः।

—अ. वे. ४, १८, ७;

अपां नपात्

न पातयति उदकमध्ये गूढतया स्थितोऽपि तदुदकं न विनाशयतीति नपात्। —तै. सं. १, ३, १३, २;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अपिज

(१) अप्सु जायत इत्यपिजः । —का. सं. १९, ९;

(२) अप्सु पुनः पुनर्जायत इत्यपिजः । —का. सं. १०, ४, १;

अपीच्य (जननेन्द्रिय)

अपीच्यतेऽत्यादरेण प्राप्यत इत्यपीच्यः । —तै. सं. ७, ४, १९, २;

अप्वन्

अपवाययति अपगमयति सुखं प्राणांश्चेति अप्वा पापदेवता ।
—अ. वे. ३, २, ५;

अप्सः

(१) अपः सनोतीति अप्सः । —का. सं. १५, १;

(२) प्साति भक्षयति विनाशयतीति प्सः । न प्सातीति अप्सः ।
—तै. सं. ४, ३, १२, २;

अप्सरस्

(१) अप्सु उदकेषु अन्तरिक्षे वा सरन्ति गच्छन्तीति अप्सरसः मध्यमलोकस्थानाः । —अ. वे. १९, ५४, ४;

(२) आप इत्यन्तरिक्षनाम । तत्र चरतीति । —अ. वे. २, २, २;

(३) अपस् इति रूपनाम । रो मत्वर्थीयः । —अ. वे. २, २, २;

अप्सुवाट्

आपः कर्माणि तेषु इन्द्रं वहन्तीति । —सा. वे. १, ३, ११, १०;

अप्सुषद्

(१) अनुपलक्षितेऽन्तरिक्षे सीदन्तीति अप्सुषदः ।
—तै. सं. १, ४, १०, १; ४, ४, ७, १;

(२) वाडवरूपेणाप्सु सीदतीति । —तै. सं. ४, ६, १, ४;

अबन्धु

बध्नाति कुलं सततमविच्छिन्नं करोति इति बन्धुः········तद्रहिता ।
—अ. वे. ६, १२२, १;

अब्जा

(१) श्रुतेरद्भ्यो जातैरश्वैरुपेतत्वाद् अब्जा । —तै. सं. १, ८, १५, २;

(२) अप्सु वृष्टिधारारूपासु वैद्युतरूपेण जायते प्रादुर्भवतीति अब्जा ।
—तै. सं. ४, २, १, ५;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अभिघ्नन् (रुद्र)

अभिहन्ति शत्रुमिति अभिघ्नन् । —का. सं. १७, ७, ५;

अभिजित्

अभितो जयतीति अभिजित् । —तै. सं. ३, ५, २, ४;

अभिदर्दि

अभितो दीयते प्रक्षिप्यत आज्यमस्मिन् चराविति अभिदर्दि ।
—तै. सं. ६, ६, ७, २;

अभिधा

अभिधीयते धार्यते बध्यत इत्यभिधा । —तै. सं. ७, १, ११, १;

अभिभा

आभिमुख्येन भाति रणरङ्गे दीप्यत इत्यभिभाः शत्रुः ।
—अ. वे. १, २०, १;

अभिभू

कृत्स्नं धर्ममभिभवतीति अभिभूः । —तै. सं. ४, ३, ३, २;

अभिमातिषाट्

अभिमातिं पाप्मानं सहते तिरस्करोतीति अभिमातिषाट् ।
—तै. सं. ४, २, ७, ४, ५, ७, २, ३;

अभिमातिषाह

अभिमातिं पाप्मानं सहते तिरस्करोतीति अभिमातिषाहः ।
—का. सं. १३, ७;

अभिमोदमुद्

आभिमुख्येन वर्तमानो मोदः अभिमोदः ।
अभिमोदेन मोदयन्ति हर्षयन्तीति । —अ. वे. ११, ९, २६;

अभिव्याधिन्

अभिमुखमागत्य विध्यन्ति हिंसन्तीति अभिव्याधिनः ।
—अ. वे. १, १९, १;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अभिशस्तिपावन्

अभिशस्तिर्वैकल्यनिमित्तोऽभिशापः।
तस्मात् पाति रक्षतीति अभिशस्तिपावा। —का. सं. ५, १, ४;

अभिषत्वन्

अभिषदनशीलः शत्रुसेनाभिगमनशीलः। यद्वा। सत्वनो वीरान् अभिभवतीति अभिसत्वा। —अ. वे. १६, १३, ५;

अभीवर्ग

अभितो वृज्यते गृहादिरूपेण परिच्छिद्यते इति अभीवर्गः अवकाशात्मकः आकाशः। —अ. वे. ११, २, ४;

अभीवर्त

अभितो वर्तते चक्रमनेनेति अभीवर्तो नेमिः। —अ. वे. १, २९, १;

अभ्र

अपो बिभ्रति वृष्ट्यमुदकं धारयन्तीति उदकपूर्णा मेघा अभ्रशब्देनोच्यन्ते। —अ. वे. ४, १५, १;

अभ्रजा

अपो बिभर्तीत्यत्र प्रवर्षको मेघसंघः तस्माज्जायते प्रवर्षणोदकसंसर्गेण उत्पद्यत इत्यभ्रजा श्लेष्मरोगः। —अ. वे. १, १२, ३;

अमावस्या

(१) आ मा वसन्ति देवा इत्यमावास्याशब्दनिरुक्तिः।
(२) इमे देवा मयि निवसन्ति इति आवासपदस्य अर्थकथनद्वारेणापि अमावस्या शब्दो निरुच्यते।
(३) अमा सह वररूप इन्द्रो वसति अस्यां तिथाविति अमाशब्दनिरुक्तिः। —तै. सं. २, ५, ३, ६; अ. वे. ७, ८४, २;

अमीवचातन

ओषधीजन्यपथ्यादिभिः अमीवान् रोगांश्चातयति नाशयतीति अमीवचातनः। —का. सं. १३, ६; तै. सं. ४, २, ६, २;

अय

अयन्ति गच्छन्ति तत्तत्कालानुसारेण वर्तन्ते प्राणिनोऽत्रेत्यया युगरूपाः कालविशेषाः। —तै. सं. ४, ३, ३, २;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अयःशया (अग्नेः तनुः)

अयसि शेत इत्ययःशया। —तै. सं. १, २, ११, २; का. सं. ५, २, ८;

अरगराट

रथचक्रावयवाः कीलका अराः। तान् गिरति आत्मना संश्लेषयति इति अरगरो रथः। तेन अटन्ति संचरन्तीति अरगराटाः रथिनो यशस्विनो राजानः। यद्वा। अरा अरयस्तान गच्छन्तीति अरगाः वीरा भटाः। तेषां राटा जयघोषाः। —अ. वे. ६, ६९, १;

अराटकी

अरा अदातारो हिंसकास्तान् अस्मात् स्थानात् आटयति उच्चाटयतीति अराटकी। —अ. वे. ४, ३७, ६;

अराति

राति ददातीष्टं वस्तु इति रातिर्मित्रम्। न रातिः अरातिः।

—अ. वे. १, १८, १;

अरायी

अदायिन्यः…………रा दाने इत्यस्मात् णिनि। यद्वा। रायते दीयत इति रायो धनम्। न रायः अरायः। अधनं आसामस्तीति अरायः अलक्ष्म्यः।

--अ. वे. २, १४, ३;

अरुःस्राण

अरुः स्रायति पक्वं भवति उपशमनोन्मुखं भवति अनेनेति अरुःस्राणम्।

—अ. वे. २, ३, ३;

अर्क

योऽयं चीयमानोऽग्निः क्रतुसाधनभूत एषोऽर्चनीयत्वादर्क इत्युच्यते।

—तै. सं. ५, ७, ५, २;

अर्थेत्

अर्थं प्रयोजनमुद्दिश्य नद्यादेः सकाशात् यज्ञप्रदेशं यन्ति गच्छन्तीति अर्थेतः। —का. सं. ११. २, ३;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अर्यमन्

(१) अरीन् नियच्छतीति । —सा. वे. १, ४, ८, ८;

(२) अरीन् यमयतीति अर्यमा अधिकबलः पुरुप्रदाता च । अर्यमा अधिकधनः । —अ. वे. ३, ५, ५;

अर्वत्

इर्यति गच्छतीति अर्वन् । —का. सं. १२, ४; तै. सं. ४, १, ४, २;

अलाद्य

अलं सम्पूर्णं यथा भवति तथा कर्म फलयन्तीति अलादो जीवः । ......तस्य प्रेरकत्वेन तत् सम्बन्धित्वात् अलाद्यः । —तै. सं. ४, ५, ८, २;

अवकाद

अवका जलोपरिस्था शैवालविशेषाः ।

तान् अदन्ति भक्षयन्तीति अवकादाः । —अ. वे. ४, ३७, ८;

अवनीची

अवनिं भूमिं अञ्चन्ति गच्छन्तीति अवनीच्य आपः ।
—अ. वे. ४, १५, १२;

अवभृथ

अवाचीनानि पात्राणि जलमध्ये ह्रियन्ते यस्मिन् यज्ञविशेषे सोऽयमवभृथः ।
—का. सं. ९, ४, ४;

अवमार्जन

प्रातःकालादौ अश्वस्य पांस्वाद्यपनयनाय शरीरं मृज्यते घर्षणेन शोध्यते तानि अवमार्जनानि । —तै. सं. ४, ६, ७, २;

अवसान

(१) अवस्यन्ति निवसन्त्यस्मिन्निति अवसानमावासस्थानम् ।
—अ. वे. १८, २, ३७;

(२) अवस्यति परिसमाप्तं भवति प्रयाणं अत्र स्थान इति अवसानम् ।
—अ. वे. १९, १४, १;

अवसानदर्श

अवसीयते निश्चीयत इति अवसानं कर्मफलं तद् दर्शयतीति अवसानदर्शः ।
—अ. वे. ७, ४२, १;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अवस्थावन्

मनुष्यानवस्थापयतीति व्युत्पत्त्याऽवस्थावेत्युदग्दिशो नाम ।

—तै. सं. ५, ५, १०, २;

अव्य

अवति अस्मादिति अव्यम् । श्लेष्मरोग इति केचित् ।

—तै. सं. १, ५, ११, ५;

अशन

अश्नातीति अशनम् ।　　—अ. वे. १९, ६, २;

अश्मन्

अश्नातीति अश्मा ।　　—का. सं. १८, १;

अश्व

अश्नुते व्याप्नोति भूतभविष्यद्वर्तमानकालवर्तीनि वस्तूनिति अश्वः ।

—अ. वे. १९, ५३, १;

अश्वक्षभा

अश्वान् क्षायति क्षपयतीति अश्वक्षा । अश्वक्षा भा दीप्तिर्यस्याः सा ।

—अ. वे. १९, ४९, १;

अश्वत्थ

अश्वरूपः सन् अग्निस्तिष्ठत्यत्रेति अश्वत्थः ।

—अ. वे. ३, ६, १, ६, ११, १;

अश्वाजनी

अश्वमजति क्षिपतीति अश्वाजनी कशा ।　　—तै. सं. १, ७, ८, १;

अश्वाभिधानी

अश्वोऽभिधीयते बद्ध्वा धार्यते यया रशनया सेयमश्वाभिधानी ।

—तै. सं. ५, १, २, १;

अंसद्री

अंशान् भागान्……धारयतीति ।　　—अ. वे. ११, १, २३;

T　CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

असंसूक्तगिल (रुद्रगण)

सम्यक् सूक्तं शोभनं भाषितं संसूक्तम् । तद्विपरीतं असंसूक्तं असमीचीनं ········वचनं गृणन्ति भाषन्त इति । यद्वा । तादृक्भाषणं यथा भवति तथा गिरन्ति भक्षयन्तीति असंसूक्तगिलाः । —अ. वे. ११, २, ३०;

असमाति

मातिर्मानं परिच्छेदस्तेन सह वर्तत इति समातिः तद्वैपरीत्यं असमातिः ।
—अ. वे. ६, ७९, १;

असुतृप्

असुषु तृप्यन्तीति । —का. सं. १८, ३;

असुनीति

असून् प्राणान् नयति लोकान्तरं इति असुतीतिः प्राणापहर्त्री देवता ।
—अ. वे. १८, २, ५;

असुर

(१) असन् प्राणान् राति ददातीति असुरः ।
—तै. सं ३, १, ११, ७; ४, १, ८, १;

(२) शत्रून् अस्यति क्षिपतीति असुरः । —तै. सं. ४, ४, ६, १;

(३) असून् प्राणान् लान्ति आददते अपहरन्तीति असुराः ।
—अ. वे. २, ३, ३;

(४) अस्यन्ति शरीरं क्षिपन्ति पातयन्तीति असुरा व्याधयो राक्षसा वा ।
—अ. वे. २, ३, ३; ४, ८, ३;

(५) असुः प्राणः । रो मत्वर्थीयः । —अ. वे. २, ३, ३;

(६) असुरः मेघानां क्षेप्ता । यद्वा । असवः प्राणाः तान् रातीति । वृष्टिजलेन प्राणप्रद इत्यर्थः । "आपोमय प्राण" इति हि ब्राह्मणम् । —अ. वे. ४, १५, १२;

अहर्भाक्

अहानि भजन्तेऽनुतिष्ठन्तीति अहर्भाजः । —तै. सं ७, ४, ५, १;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अहि

(१) अहति गच्छतीति अहिर्मेघरूपं आकाशस्य रंजनम् ।
—तै. सं. ३, १, ११, ४;

(२) अयति गच्छतीति अहिर्मेघः । —अ. वे. २०, ७, २;

(३) आगत्य हन्ति इति अहिर्वृत्तः । —अ. वे. २०, ७, २;

अहुताद्

(१) हुतं स्वाहाकारेण समर्पितमदन्तीति हुताद इन्द्रादयः तद्विपरीतत्वात् प्राणाद्या अहुतादः ।
—का. सं. १८, १; तै. सं. ४, ६, १, ४;

(२) अहुतं अग्नेरन्यत्र क्षिप्यमाणं हविरदन्ति भक्षयन्तीति अहुतादः ।
—अ. वे. १, ३०, ४;

(३) अहुतं लौकिकमन्नमदन्ति·······अहुतादः । यद्वा । अहुतावस्थमेव हविर्मायया अदन्तीति अहुतादः । —अ. वे. १८, २, २८;

आ

आकूतिप्र

इदं मे स्यात् इदं मे स्यादिति ये संकल्पास्ताः आकूतय । तान् पूरयतीति आकूतिप्रः । —अ. वे. ३, २६, २;

आक्रम

क्षुमाक्रमतीति आक्रमोऽन्नम् । —का. सं. १६, २;

आक्रमण

आक्रम्यते प्राप्यते स्वर्गोऽनेनेति आक्रमणः सेतुः । —तै. सं. ६, ५, ३, ३;

आख

वराहान् गजान् पातयितुं मार्गे यो गर्तः आयामेन खन्यते स आखः ।
—तै. सं. ६, ४, ११, ३;

आखिदत्

आ समन्तात् खिद्यते दैन्यं करोति अभक्तानामिति आखिदन् ।
—का. सं. १७, ७, ५;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

आखु

आसमन्ताद् खनतीति आखुः। —अ. वे. ६, ५०, १;

आगर

आगीर्यंते समन्ताद् भज्यते मांसशोणितादिकमत्रेति आगरो युद्धरंगः।
—अ. वे. ४, ३६, ३;

आघार

वेदेनोपयत्य स्रुवेण प्राजापत्यमाघारयतीति अयमाघारो विहितः।
—तै. सं. २, ५, ११, ६;

आजनी

अभिमुखमजति क्षिपति प्रेरयतीति आजनी कशा। —अ. वे. ३, २५, ५;

आजि

अजन्ति कर्मार्थमृत्विजः इति आजिर्यज्ञः। संग्रामनामैतत्। अजन्ति प्रक्षिपन्ति आयुधान्यत्रेति। —सा. वे. १, ५, ७, ११;

आञ्जन

आसमन्ताद् अनक्ति चक्षुषी अनेनेति आञ्जनम्। —अ. वे. ४, ६, ३;

आततायिन्

आततेन विस्तारितेन धनुषा सह एति गच्छति। —का. सं. १७, ८, २;

आतताविन्

आततेन विस्तारितेन धनुषाऽवति रक्षतीति आततावी।
—तै. सं. ४, ५, २, १;

आतान

आसमन्ताद् तन्यत इति आतानो यज्ञः। —का. सं. ६, ३, १, २;

आतिथ्य

अतति सततं गच्छतीति अतिथिः। तदर्थं क्रियमाणं सत्काररूपं कर्म आतिथ्यम्। —तै. सं. १, २, १०, १;

आदान

आदीयत आबध्यत अनेनेति आदानं पाशयंत्रविशेषः।
—अ. वे. ६, १०४, १;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

आदित्यवनि (उत्तरवेदी)

आदित्यान् वनुते सम्भजते प्रीणयतीति आदित्यवनिः ।

—का. सं. ५, ४, ३;

आधाव

आधूयन्ते सर्वतः कम्प्यन्त आपो यैः मान्दादिमन्त्रैः ते मंत्रा आधावाः ।

—तै. सं. ३, ३, ४, १;

आनुजावर

अनु पश्चाज्जातो भ्राताऽनुजस्तस्मादप्यवरोऽनुजावरस्तद्वद्वर्तमान आनुजावर अत्यन्तनिकृष्ट इत्यर्थः । —तै. सं. २, ३, ४, ३, ४;

आनुषूक

व्रीहिस्तम्बेषु लुनेष्ववशिष्टमूलेभ्योऽनुसूयते पश्चादुत्पद्यन्त इति द्वितीयफलरूपाः व्रीहयोऽनुषूकाः तेभ्यो निष्पन्नम् । —तै. सं. २, ३, ४, ३;

आपति

निश्वासरूपेण बहिर्गतः पुनराभिमुख्येन अन्तः पततीति आपतिः प्राणः ।

—तै. सं. १, २, १०, २;

आपाकेष्ठ

आपाकेषु पाकशालासु कुलालगृहेषु वा तिष्ठन्तीति आपाकेष्ठाः ।

—अ. वे. ८, ६, १४;

आमन

सजातानाकामयितुं मनुत इत्यामनम् । —तै. सं. २, ३, ९, २;

आमाद

आमं अपक्वमत्तीति आमादकोऽग्निः । —का. सं. १६, १;

आमीवत्क

आसमन्ताद् मीवन्ति स्थूलीभावं प्राप्नुवन्ति । —तै. सं. ४, ५, ९, २;

आयु

एति निरन्तरं गच्छति इति आयुरादित्यः ।

—तै. सं. ४, ४, ३, ३; ६, ८, १; का. सं. १६, ७;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

आयुर्युध्

आयुषा जीवनेन युध्यन्ते । यद्वा । आयुर्जीवनं पणीकृत्य युध्यन्ते ते आयुर्युधः । —का. सं. १७, ४, १४;

आयुष्कृत्

परेणामायुरभिवृद्धिकर्तार आयुष्कृतः । यद्वा । तपआदिना दीर्घं आयुः कुर्वन्ति संपादयन्तीति आयुष्कृतः चिरकालजीविनः पूर्वे महर्षयः ।

—अ. वे. १६, २७, ८;

आरम्भण

आरभ्यत अनेनेति आरम्भणमुपादानकारणम् । —का. सं. १८, २;

आरोह

वृक्षमारुह्य जायत इत्यारोहः । —तै. सं. ६, ३, ३, ४;

आर्द्रदानु

आर्द्रं वृष्टिजलं ददातीति आर्द्रदानुः । —तै. सं. ४, ७, १२, ३;

आव्य

आसमन्ताद् व्यते पीड्यते येन रोगविशेषेण स रोगविशेषः आव्यः ।

—तै. सं. ३, २, ६, ४;

आव्रश्चन

आवृश्च्यते वृक्षो यस्मान्मूलादिति । —तै. सं. ६, ३, ३, ३;

आशापाल

आशाः पालयन्ति रक्षयन्तीति आशापालाः । —अ. वे. १, ३१, १;

आशीर्दाय

आशिरं.........दधि दत्त इति आशीर्दायौ.........दम्पती ।

—तै. सं. ३, २, ८, ४;

आशु (रुद्र)

अश्नुते जगद्व्याप्नोतीति । —का. सं. १७, ४, ५;

आश्रेष

आश्लिष्यतीति आश्रेषः । —अ. वे. ८, ६, २;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

आस

अस्यते क्षिप्यते कर्मानुष्ठानाय देवतया विधिना वा प्रेर्यत इत्यासो यजमानः । —तै. सं. २, २, १२, २;

आसारैषी

आसारो धारासंपातः तमिच्छतीति आसारैषी सूर्यः ।

—अ. वे. ४, १५, ६;

आस्थान

आसमन्ताद् तिष्ठत्यत्रेति आस्थानं प्रक्षेपणभाजनादिरूपम् ।

—अ. वे. १, २३, ३;

आस्राव

आसमन्ताद् स्रवति अङ्गप्रत्यङ्गेभ्य इत्यास्रावो मूत्रातिसारः ।

—अ. वे. १, २, ४;

आहनन्य

आहन्यते ताड्यत अनेनेति आहनं वाद्यसाधनं दण्डादि तत्र भव आहनन्यः ।

—का. सं. १७, ५, ४; तै. सं. ४, ५, ७, १;

इ

इन्दु

उन्दतीति इन्दु इन्दवो वा । —का. सं. २०, ३;

इन्द्र

इन्दौ सोमे निमित्तभूते सति द्रवति त्वरया गच्छतीति इन्द्रः । यद्वा । इन्दवे सोमाय तत्पानार्थं द्रवतीति वा । —अ. वे. २०, १, १;

इन्द्रसव

सूयत ऐश्वर्यं प्राप्यते येनासौ सवः । इन्द्रस्यैश्वर्यहेतुरिन्द्रसवः ।

—तै. सं. ७, ५, १, ५;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

इरम्मद

(१) इरयाऽन्नेन माद्यतीति इरम्मदः। —का. सं. १२, ७;

(२) समिद्रूपेणान्नेन माद्यतीति। —तै. सं, ४, १, १०, २;

इषुकृत्

इषून् बाणान् कुर्वन्ति ते इषुकृतः। —का. सं. १७, ७, ५;

इषुधि

इषवोऽत्र धीयन्ते धार्यन्त इति इषुधिः। —अ. वे. ३, २३, २;

इष्टर्ग

इष्टं काममृच्छति प्रमादालस्यादिना विनाशयतीति इष्टर्गोऽध्वर्युः।

—तै. सं ३, १, ७, १;

ई

ईदृक्

इमं पुरोडाशं स्वयं संगृह्य पश्यतीति ईदृक्। —का. सं. १८, ७;

उ

उक्थ

उच्यन्त इति उक्थानि स्तोत्राणि। —अ. वे. २०, १८, १;

उक्थशस्

उक्थं शस्त्रं शंसतीति उक्थशाः। —तै. सं. ३, २, ६, १;

उक्थशास

(१) उक्थानि शस्त्राणि शंसतीति उक्थशासः। —का. सं. १८, ३;

(२) परलोकेऽपि भोगं संपादयितुं नानाविधेषु यज्ञेषूक्थानि शंसन्तीति।

—तै. सं. ४, ६, २, २;

उक्थ्य

उक्थं स्तुतिमर्हन्तीति उक्थ्यानि शस्त्राणि। —अ. वे. २०, ३५, १३;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

उग्रजित्

उग्रान् उद्गूर्णबलान् प्रतिकर्तुमशक्यान् शत्रून् जयत इति ।

—ऋ. वे. ६, ११८, १;

उच्छिष्ट

होमादूर्ध्वं शिष्यतेऽवशिष्यते इति हुतावशिष्टः प्राशनार्थं ओदन उच्छिष्टः ।

—अ. वे. ११, ६, १;

उच्छोचन

उच्छोचयति ऊर्ध्वमुत्कृष्योत्कृष्टं वा शोकं करोतीति उच्छोचनः ।

—अ. वे. ७, १००, १;

उत्क्रम

उत्क्रमतीति उत्क्रमोऽन्नम् ।

—का. सं. १६, २;

उत्तम्भन

उत्तभ्यते शकटस्य मुखाग्रमुन्नतत्वेन स्थाप्यते यस्मिन् काष्ठे तत्काष्ठमुत्तम्भनम् ।

—का. सं. ४, १०, ७;

उत्तुद

उत्तुदति उत्कृष्टमूर्ध्वमुखं वा व्यथयतीति उत्तुदः एतत्संज्ञो देवः ।

—अ. वे. ३, २५, १;

उदञ्जि

अज्यते स्त्रीत्वमभिव्यज्यतेऽनेनेति अञ्जिर्योनिः । तथा पुंस्त्वमभिव्यज्यतेऽनेनेति मेढ्रोऽप्यञ्जिः । सर्वोन्नतश्चासावञ्जिश्चेत्युदञ्जिः ।

—तै. सं. ७, ४, १९, १;

उदधि

उदा धीयते यस्मिन् मेघे स उदधिः ।

—का. सं. २०, ३; तै. सं. २, ४, ८, १; ४, ७, १३, २;

उदयन

उद्यन्ति उत्तिष्ठन्ति समापयन्त्यनेनेति उदयनम् ।

—तै. सं. ६, १, ५, १;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

उदान

उदाऽऽनिति ऊर्ध्वं चेष्टत इत्युत्क्रान्तिजनको वायुरुदानः ।

—का. सं १, ७, ४; अ. वे. ११, १०, ४;

उदार

उदारयन्ति आर्ति उद्भावयन्तीति । —अ. वे. ११, ११, १;

उद्ग

उद्गच्छन्तीति उद्गाः शाखाः । —अ. वे. १, २७, ३;

उद्गीथ

उद्गात्रा गीयमानो भाग उद्गीथः । —अ. वे. ११, ९, ५;

उद्गुरमाण

उद्गुरते उद्यमं करोतीति उद्गुरमाणः । —का सं. १७, ७, ५;

उद्धार

उद्ध्रियते गृह्यत इति उद्धारो ग्रहः । —तै. सं. ६, ५, ५, ३;

उपद्

प्रतिदिवसमनुपद्यत इत्युपदन्नम् । —का. सं. १६, २;

उपदान

उपादीयते स्वीक्रियते कृत्यानिर्हरणादिव्यापारेषु इत्युपदानः ।

—अ. वे. १९, ३४, ८;

उपधि

उप तत्समीपे धीयत इत्युपधिः नेमिसंबद्धः अराणां सम्बन्धको वलयः ।

—अ. वे. ६, ७०, ३;

उपभृत्

उप जुह्वाः समीपे स्थित्वा बिभर्त्याज्यं धारयतीति उपभृत् ।

—का. सं. २, १, ८; अ. वे. १८, ४, ५;

उपयज्

अनूयासमीप इज्यन्त इत्युपयजः । —तै. सं. ६, ४, १, १;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

उपयाम

(१) उपयामयतीति उपयामो ग्रहः। —का. सं. ७, २, १;

(२) उपेताः प्रजा यच्छति उत्पादनधारणादिना व्यवस्थापयतीति उपयामो भूभागविशेषः। —तै. सं. ६, ५, ८, ३;

उपरिस्पृक्

उपरितनं स्वर्गं स्पृशतीति उपरिस्पृक्। —तै. सं. ४, ७, १४, ४;

उपवी

उपाकर्तुं वेति गच्छतीति उपवीः। —तै. सं. १, ३, ७, १;

उपस्ति

उप समीपे भृत्यत्वेनास्ति तिष्ठतीति उपस्तिः। —तै. सं. १, १, १०, ३;

उपह्व

उपह्वयतेऽस्मिन्निति उपह्वो यज्ञः। —तै. सं. ३, २, ४, १;

उपायु

उप समीपे यजमानगृहे पुनरायन्ति आगच्छन्तीति उपायवः।
—तै. सं. १, १, १, २;

उपावी

उप समीपं अवति गच्छतीति उपावीः। —का. सं. ६, २, १;

उपांशुसवन

उपांशुनामकग्रहार्थं सोमः सूयते येन पाषाणेन स उपांशुसवनः।
—तै. सं. ६, ४, ४, १;

उपोह

उप समीपमूहति प्रापयति धान्यादिकमिति उपोहः एतत्संज्ञो देवः।
—ऋ. वे. ३, २४, ७;

उरुक्षय

उरूणां बहूनां क्षयौ…………क्षियन्त्यस्मिन्निति।
—सा. वे. २, ४, २, २, ३;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

उलूकयातु

उलूकैर्घूकैः परिवारैस्सह यातयतीति वा उलूकैर्यातीति वा उलूकयातु ।

—अ. वे. ८, ४, २२;

उषर्बुध्

उषसि बुध्यन्त इत्युषर्बुधः । —सा. वे. २, २०, २, १, १;

उस्रिय

(१) वसन्तीति उस्रियाः । —सा. वे. २, ४, ३, ३, ३;

(२) उस्राः किरणाः । वसन्ति निवसन्ति एभिर्जनाः ।

—अ. वे. १, १२, १;

(३) उस्रमुस्रावणं क्षीरस्यन्दनं अर्हन्तीति उस्रियाः ।

—अ. वे. २०, १६, ७;

ऊ

ऊति

ऊतयो मरुतः अवन्ति सर्वत्र गच्छन्तीति । —सा. वे. २, १२, ३, ३, २;

ऊर्क्

(१) ऊर्ज्यते बलं संपाद्यतेऽनया रसरूपयेति ऊर्क् ।

—तै. सं. १, १, १, १; ३, ४, ७, १; अ. वे. २, २६, ७;

(२) वृष्टिगतो बलात्मको रसः सर्वान् मनुष्यपश्वादीन् बलयति पानादिना दृढशरीरान् करोति । यद्वा । प्राणयति प्रकर्षेण चेष्टयतीति व्युत्पत्तिद्वयेन रस ऊर्जशब्देनाभिधीयते ।

—का. सं. १, १, १;

ऊर्जाहुति

ऊर्जमन्नं येनाह्वयन्ति त ऊर्जाहुतयः । —का. सं. १०, १, ४;

ऊर्ध्वस्वप्न

ऊर्ध्वमवस्थिता एव स्वापमनुभवन्ति न तु शयाना इत्यूर्ध्वस्वप्नाः ।

—अ. वे. ६, ४४, १;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

ऊष

ऊषति रुजति अपनुदति दुःखजातमिति ऊषं सुखकरम्। —अ. वे. २, ३६, १;

ऋ

ऋग्मिय (इन्द्र)

ऋग्भिर्विक्रीयमाणं स्तूयमानमित्यर्थः·········यद्वा विक्रीयते ऋग्भिर्मीयते ऋग्मी। —सा. वे. १, ४, ३, ७;

ऋचीषम

ऋचा स्तुतिसाधनया समाय। ऋग्यादृक् रूपं प्रतिपादयति तादृग्रूप एव तत्र सम्मितो भवतीति ऋचीषमो इत्यत्र। अथवा ऋक् स्तुतिः तया समाय वस्तुतः अपरिमेयगुणत्वेऽपि ऋचा परिमीयत परिच्छिद्यत इति ऋचीषमत्वाभिधानम्। —अ. वे. २०, ३५, १;

ऋजुग

ऋजु अकुटिलं गच्छतीति ऋजुगः। —अ. वे. १, १२, १;

ऋज्र

ऋजति भृज्जति पचतीति ऋज्रोऽग्निः। —सा. वे. २, २०, ७, ४, १;

ऋतजित्

ऋतं जयतीति ऋतजित्। —का. सं. १८, ७;

ऋतश्री (वेदि)

फलस्यावश्यंभावित्वात् अस्ति ऋतत्वम्। तच्च फलं हविर्द्वारेण वेद्या श्रीयते। —तै. सं. १, १, ९, ३;

ऋतसत्

(१) ऋते यज्ञे वाजपेयादौ सीदतीति ऋतसत्। —तै. सं. १, ८, १५, ५;

(२) ऋतं सत्यं यज्ञं वा तत्र सीदतीति। —तै. सं. ३, २, १०, १;

(३) ऋते यज्ञे तन्निष्पादकत्वेन सीदतीति। —तै. सं. ४, २, १, ५;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

ऋतसदन

हविषः फलहेतुत्वं न कदाचित् व्यभिचरतीति अस्ति सत्यत्वम् । तच्च सत्यं हविः अस्यां वेद्यां सीदति । —तै. सं. १, १, ९, ३;

ऋताषाट् (अग्नि)

(१) ऋतं सत्यं ब्रह्मलक्षणं महत्तेजः तत्सहत इति ऋताषाट् ।

—का. सं. २०, २;

(२) ऋतेन सत्येन सह सर्वमनृतमभिभवतीति । —तै. सं. ३, ४, ७, १;

ऋतुस्थ

ऋतुषु तिष्ठतीति ऋतुस्थः सम्वत्सरः । —तै. सं. ५, ७, ६, ५;

ऋभुक्षस्

ऋभवो देवा क्षियन्ति निवसन्त्यस्मिन् इति ऋभुक्षाः प्रजापतिः ।

—तै. सं. ४, ६, ८, १;

ऋषि

अर्षति दोहनस्थाने गच्छतीति ऋषिः गौः । —का. सं. ३, ३, ६;

ए

एकज (इंद्र)

एक एव जायते युद्धेषु प्रादुर्भवतीति एकजः । —अ. वे. ६, ९९, १;

एकवीर

वीरयत्यमित्रान् इति वीरः । एकश्चासौ वीरः ।

—सा. वे. २, २१, १, १, १;

एतश (सवितृ)

एति सर्वत्र गच्छतीति एतशः । —का. सं. १२, १;

एनोमुक्

एनसो मोचयन्तीति एनोमुचः । —तै. सं. ७, ५, २२, १;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

एलवकार

एलवानि प्रेरणायुक्तानि कर्माणि कुर्वन्तीति एलवकाराः कर्मकराः ।
—अ. वे. ११, २, ३० ;

ऐ

ऐलभृत्

इलानामन्नानां समूहः ऐलमन्नसमूहः । यद्वा । इला पृथ्वी तस्या इदमन्नं ऐलं तद्वद् बिभ्रन्ति ते ऐलभृतः । —का. सं. १७, ८, १४ ;

ऐलवृद्

इरा अन्नम् । तस्य समूह ऐरम् । ऐरमेवैल । तद् बिभ्रतीति ऐलभृतः । ऐलभृत एव ऐलवृदः । —तै. सं. ४, ५, ११, १ ;

ओ

ओषधी

(१) ओहो दाहः फलपाको धीयते स्थाप्यते यासु ता ओषधयः ।
—तै. सं. ४, २, ६, २ ; द्र. अ. वे. १, २३, २ ; ४, ३७, ६ ; ६, १५, १ ; ६५, ३ ; ७, ६२, १ ; ११, ७, २० ; १६, ३, १ ;

(२) ओषे दाहके पाके ज्वरादौ एनां पाठादिरूपां वैद्योपदेशप्रकारेण धयन्ति पिबन्ति आतुरा इति ओषधिः । अपि वा दोषं धयति पिबति विनाशयतीति । —अ. वे. २, २७, १ ; द्र. नि. ६, २७ ;

क

ककुप्

कं सुखं स्तभ्नाति शरीरे धारयतीति ककुप् । —का. सं. १६, १ ;

कक्ष्यप्र

कक्षे भवः कक्ष्यः । अश्वसन्नाहरज्जुः तया पूर्यते सम्बध्यत इति ।
—का. सं. ८, ८, १ ;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

कपि

कमुदकं शरीरगतं रसं पिबतीति कपिः। —अ. वे. ६, ४९, १;

करुकर

करु इत्यनुकरणशब्दोऽयम्। तत्करोतीति करुकरं हस्तपादाद्यवयवसंगतं संधिमदस्थिजातम्। —अ. वे. ११, ११, ८;

करुण

क्रियतेऽनेनेति करुणं वेदिसम्मार्जनभस्माध्यूहनादिसाधनमित्यर्थः।

—तै. सं. १, ६, ६, ४;

कर्मकृत्

स्वोपासकानां दुष्कर्माणि कृन्ततीति कर्मकृत्। अथवा साध्वसाधुरूपाणि कर्माणि कारयतीति। —अ. वे. २, २७, ६;

कव्यवाहन

कव्यं वहतीति कव्यवाहनः पितृभ्योऽग्निः।

—तै. सं. १, ८, ५, १; २, ६, १२, ५;

कश्यप

पश्यतीति कश्यपः। कश्यपः पश्यको भवतीति श्रुतिः।

—सा. वे. १, ४, २, २;

काट्य

(१) कुत्सितमटति जलमत्रेति काटोऽल्पप्रवाहयोग्यः कुल्याप्रदेशस्तत्र जलरूपेण भवः काट्यः। —तै. सं. ४, ५, ७, १;

(२) कुत्सितमटति जनः यत्रेति काटो विषममार्गस्तत्र भवः काट्यः।

—का. सं. १७, ६, १; ७, ३;

काम

काम्यन्त इति कामाः पुत्रपश्वादयः। —तै. सं. ५, १, ८, २;

कामकाति

कामाः भोगाः काम्यन्ते याभिस्स्तुतिभिः ता कामकातयः।

—तै. सं. १, ४, ४०, १;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

कामदुघा

(१) कामं काम्यमानं फलं दुहन्तीति कामदुघाः ।

—अ. वे. १८, ४, ३३;

(२) काम्यन्त इति कामा भोगास्तान् कामान् दोग्धि सम्पादयतीति कामदुघा लाङ्गलपद्धतिः । —का. सं. १३, ५; तै. सं. ४, २, ५, ६;

काम्या

सर्वैः काम्यत इति काम्या । —का. सं. ६, ६, २;

कार्षीवण

कृषिं वनन्ति सम्भजन्त इति कृषिवनाः शूद्राः । तत्सम्बन्धिनः कर्मकराः कार्षीवणाः । —अ. वे. ६, ११६, १;

किकिदीवि

श्लेष्मावरुद्धकण्ठजन्यध्वनेरनुकरणार्थोऽयं किकिशब्दस्तेन किकिना ध्वनिविशेषेण दीव्यति व्यवहरतीति रोगविशेषः किकिदीविः ।

—तै. सं. ४, २, ६, ४; का. सं. १३, ६;

किमीदिन्

किमिदानीं किमिदानीं वर्तते किमिदमिति वा पैशुन्यार्थे चरन्तीति किमिदिनश्चोराः । —अ. वे. २, २४, १; ५, ६; नि. ६, ११;

कियेधस्

किं परिमाणं यस्य शत्रुबलस्य तादृग्बलं धारयतीति कियेधाः । यद्वा । क्रममाणान् शत्रून् धारयतीति निगृह्णातीति कियेधाः । —अ. वे. २०, ३५, ६;

किरिक

(१) किरन्ति भक्तेभ्यो धनानीति किरिका उदारा रुद्रावताराः ।

—तै. सं. ४, ५, ६, २;

(२) वृष्यादिद्वारा जगत् कुर्वन्तीति । —का. सं. १७, ७, ५;

कुकूनना

कुशब्दमत्यर्थं कुर्वत्यः शब्दं कुर्वाणाः नमन्ति प्रह्वीभवन्तीति कुकूनना मेध्यः आपः । —का. सं. ८, २३, २;

T　　CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

कुण्डपाय्य

कुण्डैः पीयत अस्मिन् सोम इति कुण्डपाय्यः क्रतुविशेषः।

—सा. वे. २, २, २, १, ३;

कुलुञ्च (रुद्र)

(१) कुं भूमिं गृहक्षेत्रादिरूपां लुञ्चन्त्यपहरन्तीति कुलुञ्चाः।

—तै. सं. ४, ५, ३, १;

(२) कुत्सितं लुञ्चति। —का. सं. १७, ३, १;

कुवित्स

कुवित् बहुशः स्यति हिनस्तीति कुवित्सः। —सा. वे. २, १८, १, ४, ३;

कृच्छ्रेश्रित्

कृच्छ्रे व्यसने प्राप्ते सति रक्षार्थं श्रीयन्ते प्राणिभिः सेव्यन्त इति कृच्छ्रेश्रितः। —तै. सं. ४, ६, ६, ३;

कृत्ति

कृन्तन्त्यनेनेति ईदृशी कृत्तिरिव। —सा. वे. २, १२, ४, ३, २;

कृत्याकृत्

कृत्यया क्रियानिर्वृतया पिशाच्या कृन्तति छिनत्तीति कृत्याकृत्।

—अ. वे. ४, २८, ६;

कृपणकाशी

कृपणेष्विन्द्रियार्थेषु प्रकाशयति मनो दीपयतीति कृपणकाशी।

—तै. सं. ३, ४, ७, ३;

कृवि

कृत्यते छिद्यते खन्यत इति कृविः कृषिः। —सा. वे. १, २, ११, १;

केतपू

केतं परकीये चित्ते वर्तमानं ज्ञानं पुनाति शोधयतीति केतपूः।

—का. सं. १२, १; तै. सं. ४, १, १, ३;

क्रन्द (रुद्र)

क्रन्दयति रोदयति सर्वमन्तःकाल इति रुद्रः। —अ. वे. ११, २, ३;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

क्रव्यात्

(१) क्रव्यं आममांसमदन्ति भक्षयन्तीति क्रव्यादो गृध्रादयः ।
—अ. वे. ११, १२, ३;

(२) क्रव्यं मांसमत्तीति क्रव्यात् दुष्टोऽग्निः ।
—अ. वे. ३, २१, ८; २८, २;

क्रव्याद

क्रव्यं मांसमत्तीति क्रव्यादोऽपरोऽग्निः । —का. सं १, ६, १;

क्षत्तृ

क्षियन्ति निवसन्ति रथेष्विति क्षत्तारः । यद्वा । क्षियन्ति प्रेरयन्ति सारथीनिति क्षत्तारो रथाधिष्ठितारः । —का. सं. १७, ३, ५;

क्षत्र

क्षतात् त्रायत इति क्षत्रम् । —अ. वे. १६, २४, २; का. सं. १५, ३;

क्षत्रभृत् (आप्)

(१) क्षत्रं देशाधिपतिं राजानं सुवृष्टिजन्यसन्तोषेण बिभ्रति पोषयन्तीति क्षत्रभृतः । —तै. सं. २, ७, ४, २;

(२) क्षत्रं बलं बिभर्तीति क्षत्रभृत् । —तै. सं. ४, १, ७, ३;

क्षय

(१) क्षीयन्ते शुष्यन्त्यापोऽत्रेति शुष्कतडागादिः क्षयः ।
—का. सं. १४, ६; तै. सं. ४, ३, १, १;

(२) क्षियन्ति निवसन्त्यत्रेति क्षयो निवासस्थानम् ।
—अ. वे. २०, ६, ४;

क्षयण (रुद्र)

क्षियन्ति निवसन्त्यापो यत्र स क्षयणः । —का. सं. १७, ७, २;

क्षा

(१) क्षियन्ति गच्छन्ति उषःकालं प्रापयन्ति ताः ।
—सा. वे. १, ६, ३, ५;

(२) क्षियन्ति निवसन्त्यस्यां प्राणिन इति क्षा वसुन्धरा ।
—अ. वे. १८, १, ३६; २०, ३६, ८;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

क्षिति

क्षियन्ति निवसन्त्यत्रेति क्षितयो मनुष्याः । —सा. वे. १, ३, ११, ६;

क्षिधि

क्षिः क्षयो धीयते क्रियत अनेनेति क्षिधिः । —सा. वे. १, ३, ११, ५;

क्षेत्र

क्षियन्ति निवसन्त्यस्मिन्निति क्षेत्रमुक्तलोकत्रयम् । —अ. वे. २, १२, १;

ग

गति

गम्यते स्वर्गो येनातिरात्रेण सोऽयमतिरात्रविशेषो गतिः ।

—तै. सं. ७, १, ४, २;

गन्धर्व

(१) गन्धं कामयत इति । —का. सं. २०, २;

(२) गामुदकं धारयतीति गन्धर्वः आदित्यः । —अ. वे. १८, १, ४;

(३) गाः रश्मीन् उदकं वा धारयतीति गन्धर्वः सूर्यः ।

—अ. वे. २, २, १;

(४) गावो रश्मयस्तान् धारयतीति गन्धर्वः आदित्यः ।

—अ. वे. २, २, २;

(५) गां वेदरूपां वाचं धारयतीति गंधर्वः आदित्यः ।

—अ. वे. ७, ७७, ३;

(६) गीतिरूपा वाचो गाः धारयतीति गन्धर्वः । —अ. वे. ४, ३७, ७;

(७) गां वाचं धारयन्तीति गन्धर्वाः । —अ. वे. १६, ५४, ४;

गर्तमित्

गर्तशब्देन दक्षिणदेशनिम्नश्मशानं विवक्षितम् । गर्तवत् मीयते यूपा अस्यामेकादशिन्यां इति गर्तमित् तादृशीम् । —तै. सं. ६, ६, ४, २;

गर्तसद्

श्मशानसंचयोऽपि गर्तमुच्यते (नि. ३, ५) इति निरुक्तोक्तेर्गर्तः शवदाहप्रदेशः । तत्र सीदतीति । —अ. वे. १८, १, ४०;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

गर्भधि

गर्भोऽस्यां धीयत इति गर्भधिः । —सा. वे. २, १६, ३, ५, १;

गलुन्त

गण्डमालोद्भवविकारेण तत्र तत्र हस्तपादादिसंधिषु उद्भूतान् गडून् तस्यति उपक्षपयति इति गडुन्तः । —अ. वे. ६, ८३, ३;

गल्ला

गल्लयति कुत्सयति भीतिमुत्पादयतीति गल्ला स्तनयित्नुरूपा माध्यमिका वाक् । —अ. वे. ६, २२, ३;

गह्वरेष्ठ

गह्वरे विषमे गिरिगुहादौ तिष्ठतीति । —तै. सं. ४, ५, ९, १;

गातुवित्

गीयते नानाविधैर्वैदिकशब्दैः प्रतिपाद्यत इति गातुर्यज्ञः । तं विदन्ति जानन्तीति गातुविदः । —का. सं. २, ५, ४; ९, ३, ७;

गिर्

गीर्यन्ते स्तूयन्त इति गिरः । गृणन्तीति वा ।

—अ. वे. १, १५, २; १९, १, १;

गिरिचर (रुद्र)

(१) गिरौ चरतीति । —का. सं. १७, ३, १;

(२) गिरौ काष्ठादिसंपादकानां वस्त्रादिकमपहर्तुं चरतीति गिरिचरः ।

—तै. सं. ४, ५, ३, १;

गिरिश

गिरौ कैलासे शेते गिरिशः ।

—का. सं. १७, १, ४; तै. सं. ४, ५, १, २; ५, १;

गिरिशत्र

गिरौ कैलासे स्थितो भूतानि त्रायत इति । —का. सं. १७, १, ३;

गिरिशन्त

(१) गिरौ कैलासे स्थितः शं सुखं प्राणिनां तनोति विस्तारयतीति गिरिशन्तः । —तै. सं. ४, ५, १, १; का. सं. १७, १, २;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

(२) गिरीव विस्थितः शं तनोतीति । —का. सं. १७, १, २;

(३) गिरौ मेघे स्थितो वृष्टिद्वारेण शं तनोतीति वा ।

—का. सं. १७, १, २;

(४) गिरौ शेते गिरिशः। अमति गच्छति जानातीति अन्तः सर्वज्ञः।

—का. सं. १७, १, २;

गुहा

गूह्यति संवृणोति परिच्छिनत्ति परमात्मानं इति गुहा माया ।

—अ. वे. २, १, २;

गृत्स

गृध्यन्ति वाञ्छन्ति गृत्साः विषयलम्पटाः । —अ. वे. १७, ३, ४;

गो

गोविकारत्वात् वा गमयति इषूनिति वा गावो मौर्व्यः ।

—अ. वे. १, २, ३;

गोजा

(१) गोकार्ये घृते ज्वालादिरूपेण जायते व्यज्यत इति गोजा ।

—तै. सं. ४, २, १, ५;

(२) गोशब्दवाच्याद् व्रजात् जायत इति गोजाः ।

—तै. सं. १, ८, १५, २;

गोत्रभिद्

(१) गा उदकानि त्रायन्त इति गोत्रा मेघाः। यद्वा। गौर्भूमिः तां त्रायन्त इति गोत्राः पर्वताः तेषां भेत्तारम् ।

—सा. वे. २, २१, १, २, ३;

(२) गोत्रान् पर्वतान् भिनत्ति तदीयपक्षान् छिनत्ति इति गोत्रभित् ।

—तै. सं. ४, ६, ४, २; का. सं. १८, ४;

गोधुक्

गां दोग्धीति गोधुक् । —सा. वे. २, ७, ५, २, १;

गोवित्

गां भूमिं विन्दते लभत इति गोवित् ।

—तै. सं. ४, ६, ४, २; का. सं. १८, ४;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

गोष्ठ

(१) गावस्तिष्ठन्त्यत्रेति गोष्ठम् । —ऋ. वे. २, २६, १; ४, २१, २;

(२) गावस्तिष्ठन्ति पानार्थं अस्मिन्निति गोष्ठो जलराशिः ।

—ऋ. वे. ११, १, १३;

(३) गावस्तिष्ठन्त्यस्मिन्निति गोष्ठं गोशाला । —ऋ. वे. २, १४, २;

गोसनि

गां सनोति प्रयच्छतीति गोसनिः । —ऋ. वे. ३, २०, १०;

गोसेधा

गौरिव सेधति गच्छति इति गोसेधा स्त्री । —ऋ. वे. १, १८, ४;

गौ

गच्छतीति गौः । —का. सं. ३, १, ६;

ग्रह

(१) गृह्यते वा सोम एभिरिति ग्रहाः……गृहे सोमो येषु ते ग्रहाः ।

—का. सं. १६, ७;

(२) गृह्यन्त आप एष्विति ग्रहा जलधाराः कुम्भाः ।

—तै. सं. ५, ६, २, १;

ग्रामणी

(१) ग्रामं नयतीति ग्रामणी ग्रामस्वामी । —ऋ. वे. १६, ३१, १२;

(२) ग्रामं नयतीति । —का. सं. १६, ४;

ग्रामवादी

ग्रामेभ्यो हितं ग्राम्यं तद् राज्ञोऽग्रे वदति इति ग्रामवादी । सद्विविधः । अन्तरङ्गो बहिरङ्गश्च । —तै. सं. २, १, ११, ५;

ग्राहि

रक्षसः ब्रह्मराक्षसात् ग्राह्याः गृह्णातीति ग्राहिः राक्षसी ।

—ऋ. वे. २, ६, १;

ग्रैव्या

ग्रीवासु भवाः नाडीः । —ऋ. वे. ६, २५, २;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

ग्लह

गृह्यते पणबन्धेन कल्प्यत इति द्यूतक्रियाजेयोऽर्थो ग्लहः ।

—अ. वे. ४, ३८, १;

ग्लाष्ठा

परिधावनेन ग्लानः सन् यत्र (अश्वः) तिष्ठति सा ग्लाष्ठा गन्तव्यावधिः आत्यन्तः काष्ठापरपर्यायः । —अ. वे. २, १४, ६;

घर्म

घर्मशब्दो दीप्यमानं प्रवर्ग्यं ब्रूते । —का. सं. १, ८, २;

घर्मदुघा

घर्मः प्रवर्ग्यः । तदर्थं पयो या गौर्दोग्धि सा घर्मदुघा ।

—अ. वे. ४, २२, ४;

घर्मसद्

घर्मः प्रवर्ग्यः । तदुपलक्षिते सोमयागे सीदन्तीति ।

—अ. वे. १८, ३, ४७;

घास

अद्यते भुज्यत अस्मिन्निति घासः भोगायतनं शरीरम् ।

—अ. वे. १८, २, २६;

घृत

यस्मात् प्रसृतस्य शीतलपात्रस्थापनेन तत्पुनरध्रियत तद्घनीभूतमभवत्तस्मात् घृतमिति नाम । घृ क्षरणदीप्त्योरिति धातोः नैतद्रूपं किंतु ध्रतमित्यत्र धकारस्य घकारादेशः । —तै. सं. २, ३, १०, १;

घृतनिर्णिक्

विलापनेन घृतं निर्णेनेक्ति निःशेषेण शोधयतीति घृतनिर्णिक् ।

—तै. सं. २, ५, १२, १;

घृतश्चुत्

घृतश्चोतन्ति क्षारयन्तीति घृतश्चुतः । —सा. वे. २, १०, ७, १, ३;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

घृताची

(१) घृतमञ्चतीति घृताची । —का. सं. २, १, ८;

(२) घृतं दीप्तिमञ्चतीति घृताची दीप्तिमती । —अ. वे. १९, ४८, ६;

च

चनोधस्

चनः अन्नं धत्त इति चनोधाः । —का. सं. ८, ४, १;

चन्द्रमस्

चन्द्रमाह्लादनं मिमीते निर्मिमीते ।

—सा. वे. २, ५, ३, ३, ३; अ. वे. ११, ३, २; १८, ४, ८९;

चमस्

(१) चमन्ति अदन्ति अत्रेति चमसः पात्रम् । —अ. वे. १९, ४९, ८;

(२) चम्यते भक्ष्यत अनेनेति चमसः पात्रम् ।

—अ. वे. ७, ११५, ३; २०, १६, ८;

चमू

चमन्ति भक्षयन्त्यत्रेति चम्वो ग्रहाः ।

—सा. वे. १, २, ५, ८; २, १२, ५, ३, २;

चमूषत् (श्येन)

चमन्ति भक्षयन्त्यत्रेति चम्वः चमसाः तेषु सीदन् ।

—सा. वे. २, ९, १, १, ३;

चरित्र

चरति एभिरिति चरित्राः । —तै. सं. १, ३, ९, १;

चर्षणिप्र

चर्षणयो मनुष्यास्तानभिलषितफलेन प्राति पूरयतीति चर्षणिप्रः ।

—अ. वे. ४, २४, ३; तै. सं. १, ४. २१, १; का. सं. ७, २१, १;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

चर्षणीधृत

चर्षणीनां मनुष्याणामभिमतफलप्रदानेन धारकं पोषकं यद्वा आकृषत्यनेन सर्वमिति चर्षणिर्बलं तद्धारकम् । —सा. वे. १, ४, ३, ५;

चर्षणीधृत् (इन्द्र)

चर्षणयो मनुष्याः । तान् धारयति रक्षतीति चर्षणीधृत् ।

—अ. वे. २०, १९, ४;

चित्

(१) भोगांश्चिनोति संपादयतीति चित् । —तै. सं. ४, २, ४, ४;

(२) चीयन्ते भूमौ प्रक्षिप्यन्त इति चितः शर्कराः ।

—तै. सं. ४, २, ७, ४; का. सं. १३, ४;

चित्रावसु

चित्राणि विविधानि चन्द्रनक्षत्रान्धकाररूपाणि वसन्ति यस्यां रात्रौ सा चित्रावसुः । —का. सं. ३, ३, १०;

छ

छदि

(१) सर्वाणि छन्दांसि धारयतीति छदिः । —का. सं. १५, ३;

(२) छाद्यत अनेन गृहमिति छदिस्तृणकटः । —अ. वे. ३, ७, ३;

छन्दस्

छादयन्त्येभिरिति व्युत्पत्त्या छन्दस्त्वं संपन्नम् । —तै. सं. ५, ६, ६, १;

ज

जङ्गिड

जङ्गिडो नाम कश्चिदोषधिविशेषः.........जातानां कृत्यानां कृत्याकृतां च निगरणकर्ता असि । अतो जङ्गिड इत्युच्यते । ....यद्वा । जङ्गम्यते शत्रून् बाधितुं इति जङ्गिडः । गमेर्यङ् लुगन्तात् रूपसिद्धिः । अथवा जनेर्जयतेर्वा डप्रत्यये ज इति भवति । —अ. वे. १९, ३४, १;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

जनभृत्

जनान् एता बिभ्रतीति जनभृतः । —का. सं. ११, २, ३;

जनराट्

जनेषु यजमानेषु राजत इति । —का. सं. ५, ६, ३;

जनि

(१) जनयन्त्यपत्यान्यास्विति जनिशब्दव्युत्पत्तिः ।

—ऋ. वे. २०, ५, १;

(२) जनयन्ति उत्पादयन्ति अपत्यमिति जनयो योषितः ।

—ऋ. वे. २०, १७, १;

जनित्र

जायत इति व्युत्पत्त्या जनित्रशब्दोऽन्नवाची । —तै. सं. ४, ३, ९, २;

जमदग्नि

जमन्तः ज्वलन्तः अग्नयो यस्य । —ऋ. वे. ४, २९, ३;

जय

जयन्ति एभिरिति जयाः । —तै. सं. ३, ४, ४, १;

जयत्व

जयन्ति एभिरिति जयत्वम् । —तै. सं. ३, ४, ६, २;

जरा

जीर्यन्ति अङ्गानि अस्यामवस्थायामिति जरा । —ऋ. वे. ३, ११, ७;

जराबोध

जरया स्तुत्या बोधो यस्यासौ यद्वा जरया बोध्यत इति जराबोधः ।

—सा. वे. १, १, २, ५;

जलाषभेषज

जायन्त इति जाः जनाः·········तैर्लष्यते वाञ्छ्यत इति जलाषं सुखम् ·········जलाषं भेषजं यस्य । —ऋ. वे. २, २७, ६;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

जातवेदस्

(१) जातं जगद् वेत्तीति जातवेदाः ।

—तै. सं. १, ४, ४०, १; २, ६, १२, ५;
सा. वे. १, १, ११, ७; २, २०, २, १, १;

(२) सर्वं स्वात्मतया वेत्तीति । —सा. वे. १, ६, ३, १२;

(३) जातानि जनिमानि भूतानि वेत्ति तैर्विद्यते जायते वा जातेषु सर्वेषु भूतेषु वैश्वानररूपेण विद्यते सत्तां लभते ।

—अ. वे. २, १२, ८; १८, ४, १; १९, ३, १; नि. ७, १९;

(४) जातानि भूतजातानि एनं विदन्तीति जातवेदाः अथवा जातमात्र एव वेदः धनं पशुलक्षणं अनुलभत इति जातवेदाः ।

—अ. वे. ४, २३, ४;

जामि

(१) जायन्ते आसु अपत्यानीति जामयः स्त्रियः भगिन्यादिरूपाः ।

—अ. वे. १, १४, ४;

(२) जायन्त इति जामिः प्रजा । —अ. वे. ७, १०४, १;

(३) सह जायन्त इति जामिर्भगिनी । —अ. वे. २, १०, १;

जाया

(१) जायतेऽस्यामपत्यरूपेण पतिरिति जाया । —अ. वे. ६, ७८, ३;

(२) जायतेऽस्यां सर्वं जगद् इति जाया सिसृक्षावस्थापन्ना पारमेश्वरी मायाशक्तिः । —अ. वे. ११, १०, १;

जीरदानु

जीरं जीवनं पुरोडाशव्दारेण यज्ञस्य ददातीति जीरदानुः ।

—तै. सं. १, ५, १०, ४;

जीव

जीवति प्राणं धारयतीति जीवः आत्मा । —अ. वे. ४, ९, १;

जीवभोजन

जीवात्मना भुज्यते प्रीतिपूर्वकमनुभूयत इति जीवभोजनो य उदञ्जिः ।

—तै. सं. ७, ४, १९, १;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

जीवला

(१) जीवं जीवनं लाति ददातीति जीवला । —ग्र. वे. ६, ५६, ३;

(२) जीवयतीति जीवला । —ग्र. वे. १६, ३६, ३;

जीवातु

जीवयतीति जीवातुः । —का. सं. २०, ४;

जुहू

जुहोति हूयते वाऽनया हविरिति जुहू होमसाधनभूतः पात्रविशेषः ।
—ग्र. वे. १८, ४, ५; का. सं. [illegible] १, ८;

जूर्णि

जीर्यति जीर्णं भवति प्राणिशरीरमनया इति जूर्णिः एतत्संज्ञा राक्षसी ·······यद्वा ज्वरति ग्रनयेति । —ग्र. वे. २, २४, २;

ज्मा

ज्मः जमन्ति गच्छन्त्यस्यामिति ज्मा पृथिवी । —सा. वे. १, १, ५, ८;

ज्येष्ठघ्नी

ज्येष्ठं वयसा प्रवृद्धं हन्तीति ज्येष्ठघ्नी ज्येष्ठाख्यं नक्षत्रम् ।
—ग्र. वे. ६, ११०, २; द्र. तै. ब्रा. १, ५, २, ८;

ज्योता

ज्वलति प्रकाशयतीति ज्योता । —का. सं. ६, ६, २;

त

तनु

तनोति विस्तारयति कुलमिति वा तनुशब्दः पुत्रवाची ।
—ग्र. वे. १६, ५०, ३;

तनुकृत्

तनुं शरीरं कृन्तन्ति छिन्दन्तीति तनूकृन्ति रक्षांसि ।
—का. सं. ५, ६, १; तै. सं. १, ३, ४, १;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

तनूनपात्

तनूर्न पातयति न विनाशयतीति तनूनपात् शरीरपालक इत्यर्थः ।

—तै. सं. ४, १, ८, १;

तनूनप्तृ

तनूं शरीरं न पातयति न विनाशयतीति तनूनप्ता जाठरोऽग्निः ।

—तै. सं. १, २, १०, २;

तनूप

तनूं पातीति तनूपं साम । —तै. सं. ३, २, ७, १;

तन्तिचर

तन्तिः कर्मसन्तानं तत्र चरतीति । —तै. सं. १, १, १०, १;

तन्तु

तायते कुलं विस्तार्यत अनेनेति तन्तुः पुत्रपौत्रादिलक्षणः सन्तानः ।

—अ. वे. ६, १२२, १;

तपोज

तपसो जायन्त इति तपोजाः । —अ. वे. ६, ६१, १;

तप्तायनी

तप्तं पुरुषमयति प्राप्नोतीति तप्तायनी । —का. सं. ५, ३, १;

तमिषीचि/तविषीचि

तविषीति बलनाम । तद् अञ्चन्ति चिन्वन्ति वेति तविषीचयः……… तमिषीं ग्लानिं परेषां आविष्टानामुपचिन्वन्तीति तमिषीचयः ।

—अ. वे. २, २, ५;

तस्कर

तत् प्रसिद्धमनर्थजातं करोतीति तस्करश्चोरः । —अ. वे. १९, ४७, १;

तार्क्ष्य

तीर्णेऽन्तरिक्षे क्षियति निवसतीति तार्क्ष्य अरिष्टनेमिः अनुपहिंसितायुधः ।

—का. सं. १६, ४;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

तार्प्य

तर्पणार्हं प्रीतिकरम् यद्वा तृपा नाम तृणविशेषः तन्निर्मितं घृताक्तं वस्त्रं तार्प्यमित्यन्ये वदन्ति । —अ. वे. १८, ४, ३१;

तिग्मशृङ्ग

शृण्वन्ति हिंसन्ति तमांसीति शृङ्गाणि तेजांसि तीक्ष्णतेजस्कः ।
—सा. वे. २, ८, १, १, ३;

तीर्थ

तरन्ति दुष्कृतानि एभिरिति । —अ. वे. १८, ४, ७;

तुन

तनोति कुलमिति तुनः पौत्रः । —सा. वे. १, ४, ५, ५;

तुराषाट् (इन्द्र)

(१) तूर्णं सहते शत्रूनभिभवतीति । —का. सं. ११, ७; अ. वे. २, ५, ३;

(२) तुरि सीदति य स तुराषाट् । —सा. वे. २, ५, ७, ३, ३;

तुरीप

तूर्णं प्राप्नोतीति तुरीपम् । —तै. सं. ३, १, ११, १;

तुर्मिशां

तूर्मयो हिंसकाः हिंसाकारिणस्तान् श्यति तनूकरोतीति तुर्मिशा······ यद्वा तुरो हिंसकान् मिषति स्पर्धते हिनस्तीति । —अ. वे. १६, ७, १;

तुर्यवाट्

(१) तुर्यं चतुर्थं वहतीति । —का. सं. १५, ३;

(२) चतुर्थं वत्सरं वहतीति । —का. सं. १६, ८;

(३) चतुर्थं सम्वत्सरोपक्रमं वहतीति । —तै. सं. ४, ३, ३, २;

तौल

तुलावद् हूयमानद्रव्यस्य परिच्छेदकत्वाद् स्रुक्स्रुवादिकं अत्र तुलाशब्देनोच्यते । तत्र स्रुवादौ स्थितमाज्यं तौलम् । यद्वा तोल्यते उन्मीयते स्रुवादिना अवदीयत इति तोलम् । —अ. वे. १, ७, २;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

त्रिककुप्च्छन्दस्

ककुप् प्राणः। मेधाकम्पितमुदकं सुभाति पिबतीति त्रिककुप् पयदानः।

—का. सं. १६, १;

त्रिकद्रुक (सोमयाग)

अभिप्लवत्र्यहं त्रिकद्रुकशब्देनोच्यते। तदुक्तमापस्तम्बेन ज्योतिर्गौरायुरिति त्रिकद्रुकाः। त्रयः सन्तः कद्द्रवन्ति कुटिलमावर्त्तन्ते संवत्सरसत्र इति त्रिकद्रुकाः।

—अ. वे. २, ५, ७;

त्रित

त्रिषु लोकेषु त्रायत विस्तार्यत इति त्रितो वायुः।

—तै. सं. ४, ६, ७, १;

त्रिप्रदंशी

त्रिभिर्मुखपुच्छपादरूपैरङ्गैः प्रकर्षेण दशतीति त्रिप्रदंशी।

—अ. वे. ७, ५८, ३;

त्रिवृत्

तेजःकारणात् त्रिधा वर्तत इति त्रिवृदन्नम्। —का. सं. १६, २;

त्रिषधस्थ

सह तिष्ठन्त्यत्रेति सधस्थम्। —सा. वे. २, २०, २, ३, २;

द

दंष्ट्रा

दशन्ति खादन्ति एभिरिति दंष्ट्रा दन्तविशेषाः। —अ. वे. ११, ८, २२;

दक्षवृध्

दक्षान् कर्मकुशलान् वर्धयतीति। —तै. सं. ३, ५, ८, १;

दक्षिणा

(१) दाक्षयन्तीति दक्षिणा। —का. सं. २०, २;

(२) दक्षयति पुरुषं वर्धयतीति दक्षिणा। —अ. वे. ६, ५३, १;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

(३) दक्ष्यते समृध्यते अनयेति दक्षिणा धनसमृद्धिः।
—अ. वे. ११, १०, २२;

दधि

शृतं मा तु न धिनोति न प्रीणयतीति उक्ते प्रजापतिरातञ्चनकर्तॄन् प्रतिदधि कुरुत इत्यब्रवीत्। तच्च दधिकृतं सदेनमिन्द्रमधिनोदप्रीणयत्। तस्मात् दधि नाम……। —तै. सं. २, ५, ३, ४;

दधिक्रावन्

दधि क्रामति प्राप्नोति इति दधिक्रावा एतन्नामको कश्चिद् देवविशेषः।
—तै. सं. १, ५, ११, ४; ७, ८, १९, ४; अ. वे. ३, १६, ६;

दधीची

दधि अञ्चतीति दध्यङ्। —सा. वे. २, ५, ३, ३, १;

दर्श

अमावस्यां सूर्येण सह चन्द्रमा दृश्यते इति सा तिथिर्दर्शशब्देनोच्यते।
—अ. वे. ७, ८६, ४;

दर्शपूर्णमास

यस्मिन् दिने सूर्य एव दृश्यते चन्द्रमास्तु न दृश्यते सोऽयं दर्शः। अमावस्या च तादृशी। यस्यां तिथौ चन्द्रमण्डलं सम्पूर्णं दृश्यते सा पौर्णमासी।
—तै. सं. २, ५, ६, ४;

दशदेव

दीव्यन्ति स्वस्वविषयं प्रकाशयन्तीति देवाः। ज्ञानकर्मेन्द्रियाणि।
—अ. वे. ११, १०, ३;

दाभिन्

दभ्नोति विरोधिनो हिनस्तीति दाभी। —तै. सं. २, ४, ४, १;

दासपत्नी

दासयन्ति उपक्षयन्तीति दासाः उपक्षयितारः शत्रवः ते पतयः पालकाः यासाम्। —सा. वे. २, १६, १, २, २;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

दित्यवाट्

दित्यार्हं खण्डनार्हं वहतीति दित्यवाट् यद्वा द्विवर्षः पशुः दित्यवाट् इत्युच्यते । —का. सं. १५, ३; १९, ८;

दीक्षितविमित

दीक्षितो विशेषेण मीयते प्रक्षिप्यते यस्मिन् शालास्थाने तद्दीक्षितविमितम् । —तै. सं. ६, २, ५, ५;

दुरोणसत् (रथ)

(१) दुरोणेषु गृहेषु सीदतीति दुरोणसत् । —तै. सं. १, ८, १५, २;

(२) अतिथिसमानः सन् दुरोणेषु यजमानगृहेषु सीदतीति (अग्नि) । —तै. सं. ४, २, १, ५;

दूडाश

येन कारणेन दूडाशे दुःखेन दाश्यते दाप्यत इति दूडाशो लुब्धः । —अ. वे. १, १३, १;

दूरेगव्यूति

गावो यूयन्ते मिश्रीभवन्ति सञ्चरन्त्यस्मिन् इति गव्यूतिः गोसंचारभूमिः । —अ. वे. ४, २८, ३;

दूरेवध

दूरे वर्तमानो हन्तीति दूरेवधः । —का. सं. १७, ६, ४;

दूषि

दूषयति विनाशयतीति दूषिः कृत्या । —अ. वे. २, ११, १;

देव

(१) दीव्यन्ति व्यवहरन्तीति देवाः प्राणाः । —का. सं. १३, १;
तै. सं. ४, २, ३, १; ६, १, ४; ६, ३, २; ४, ६, ५, १; ७, २, ३;

(२) दीव्यन्तीति देवा इन्द्रादयः । —अ. वे. १८, ३, ४१;

(३) दीव्यन्ति क्रीडन्तीति देवाः । —अ. वे. १९, ५७, ३;

(४) दीव्यन्ति विहरन्तीति देवाः प्राणाः । —तै. सं. ४, १, १०, ५;
सा. वे. १, ६, ५, ३; २, ८, ३, १, २;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

देवताति

(१) देवास्तन्यन्ते विस्तार्यन्त यत्र.........देवतातौ यज्ञे ।

—का. सं. १०, ३, ६;

(२) देवानर्हन्तीति देवतातयः । —तै. सं. १, ७, ८, २;

(३) देवैस्तोतृभिस्तायते विस्तार्यत इति देवतातिर्यज्ञः ।

—सा. वे. १, ३, २, ७; २, १६, २, ३, १;

देवपान

(१) देवौ अश्विनौ पिबत अत्रेति देवपानः । —ऋ. ७, ७७, ३;

(२) देवा पिबन्ति अनेन अमृतमिति देवपानः । —अ. वे. १८, ३, ५३;

देवयजन

देवा इज्यन्ते यस्मिन् स्थाने तद्देवयजनम् । —का. सं. ४, १, १;

देवयजनी

देवा इज्यन्ते यस्यां पृथिव्यां सा देवयजनी । —का. सं. ३, १, ५;

देवयान

(१) देवा यान्ति गच्छन्ति अस्मिन् मार्गे सोऽयं देवयानः ।

—तै. सं. २, ५, ६, २; ७, ५, १, ५;

(२) दीव्यन्ति व्यवहरन्ति इति देवा वणिजः । ते यत्र यान्ति ते देवयानाः । —अ. वे. ३, १५, २; ११, १, २०;

देवयु

देवैः यौति मिश्रीभवतीति देवयुः । —तै. सं. ४, १, १, ३;

देववन्द

देवान् वन्दन्ते प्रणमन्तीति देववन्दाः । —अ. वे. १८, ३, ४७;

देववाहन

देवान् हवींषि वाहयति प्रापयतीति देववाहनः ।

—सा. वे. २, ५, १, २, २;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

देववीतम

देवान् वेति गच्छतीति देववीरतिशयेन देववी देववीतमः ।

—तै. सं. ४, १, ३, ४;

देववीति

देवा वियन्ति आगच्छन्ति भक्षयन्ति अत्रेति वा देववीतिर्यज्ञः । अथवा देवा युद्धार्थं गच्छन्त्यत्रेति देववीतिर्देवसंग्रामः । —अ. वे. २०, ३७, ४;

देवश्री

देवान् श्रयन्तीति हविर्यजमानेन सेवत इति देवश्रीः ।

—तै. सं. ४, ६, ३, २;

देवश्रुत्

देवैः श्रूयन्त इति देवश्रुतः । —तै. सं. ३, १, ८, १;

देवसदन

देवाः सीदन्ति निवसन्त्यत्रेति देवसदनः । —अ. वे. १६, ३६, ६;

देवहू

देवान् आह्वयतीति देवहूः । —का. सं. १८, ५; तै. सं. १, १, ४, १;

देवायु

देवान् यौति यज्ञादिना मिश्रीकरोतीति देवायुः । यद्वा देवान् कामयत इति । —का. सं. १, ४, २; तै. सं. २, ५, ८, ६;

देवावी

(१) देवानेति कामयत इति देवावीर्देवप्रियः । —का. सं. १२, ३;

(२) देवान् वेति कामयत इति । —तै. सं. ३, ५, ११, २; ४, १, १, ३;

देविका

दीव्यन्ति अपेक्षितं फलविशेषं प्रकाशयन्तीति धात्रादयः पञ्चेष्टयो देविकाः । —तै. सं. ३, ४, ६, १;

द्युक्ष

द्युमन्ति सुवर्णादिद्रव्याणि क्षियन्ति निवसन्ति यस्मिन् पालने तथाविधं दुराधर्षम् । —का. सं. ३, ३, २३;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

द्रप्स

द्रुतं सरति गच्छतीति द्रप्सः। —सा. वे. १, ३, १०, १;

द्रविणोदस्

(१) दीव्यन्ति व्यवहरन्ति इति देवा प्राणास्ते च द्रविणोदा यागद्वारेण द्रविणं धनरूपं फलं प्रयच्छन्ति। —का. सं. १३, १;

(२) द्रविणं.......धनं ददातीति। —अ. वे. १, १५, ८;

द्रापि

द्रापयति कुत्सितां गतिं पापिनां प्रापयतीति।

—का. सं. १७, ८, १; तै. सं. ४, ५, १०, १;

द्वेषस्

द्विषन्तीति द्वेषांसि। —का. सं. ५, ६, १; तै. सं. १, ३, ४, १;

ध

धनजित्

धनं जयति फलरूपेण सम्पादयतीति धनजित्।

—का. सं. १२, १; तै. सं. ४, १, १, ३;

धनञ्जय

धनानि शत्रुसम्बधीनि जयति अपहरतीति धनञ्जयः।

—अ. वे. ३, १४, २;

धनुष्कृत्

धनूंषि चापानि कुर्वन्ति ते धनुष्कृतः। —का. सं. १७, ७, ५;

धन्वायिन्

धन्वना सह धनुषा सह यन्ति गच्छन्ति (इति) धन्वायिनः।

—का. सं. १७, ३, १;

धरुण

धार्यत इति धरुणः। —अ. वे. १८, ३, ३७;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

धर्मधृत्

धर्मशब्देनात्र यागदानादिरुच्यते। तं धारयन्ति अनुतिष्ठन्तीति धर्मधृतः।

—अ. वे. १, २५, १;

धामन्

(१) धीयते स्थाप्यते देवैश्चित्तवृत्तिरत्रेति धामशब्दव्युत्पत्तिः।

—का. सं. १, १०, ४;

(२) गोनां गवां धाम धीयते पीयत इति धाम पयः।

—सा. वे. १, ५, ७, २;

धामच्छत्

धामा ह यत्ते अजरेति याज्यानुवाक्ययो धामशब्दोपेतत्वाद् धामच्छदग्निः। तदर्थस्तु धामादीनि अस्मद्गृहादीनि अन्धकारापादिकया वृष्ट्याऽऽच्छादयतीति धामच्छत्। —तै. सं. २, ४, १०, २;

धास्यु

धा धारणं पोषणं जगतः इच्छतीति क्यात् छन्दसि इति उ-प्रत्ययः। यद्वा। धासिरित्यन्ननाम। तदुपलक्षितं भोग्यजातं आत्मन इच्छतीति धास्युः।

—अ. वे. २, १, ४;

धिषण

धृष्णोति अभिभवतीति धिषणः। त्रसिगृधिधृषिक्षिपेः क्नुः।

—अ. वे. २, १४, १;

धी

धीयतेऽनुष्ठीयत इति धी कर्मनाम। —तै. सं. १, १, १४, २;

ध्रुवक्षित् (उत्तरवेदिस्थपैतुद्रुवृक्षभागः)

ध्रुवे स्थिरे क्षियति निवसतीति ध्रुवक्षित्। —का. सं. ५, ४, ४;

ध्रुवसत्

ध्रुवे स्थिरलक्षणे ग्रहे सीदतीति। —का. सं. १०, १, २;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

न

नकुल

नास्य कुलमस्तीति नकुलः प्राणी। —अ. वे. ६, १३९, ५;

नक्षत्र

(१) नक्षति समन्ताद् गच्छतीति नक्षत्रः। —सा. वे. २, १४, ४, २, ४;

(२) न क्षियन्त इति नक्षत्राणि। —अ. वे. १९, १९, ४;

(३) नक्षात् नाशात् पतनाद् त्रायन्त इति। नक्षत्रशब्देन ग्रहाः परिगृह्यन्ते। —अ. वे. १९, २७, २; २०, १६, ११;

नघारुषा

न हन्तीति नघाः। नघा रुषा रोषोऽस्यां सा नघारुषा।

—अ. वे. ८, २, ६;

नन्दन

नन्दयति सुकृतिन इति नन्दनः स्वर्गः। —सा. वे. २, १०, ७, १, ६;

नदी

नदति ध्वनतीति नदी। —अ. वे. १, ८, १;

नद्यमार

नद्यां भवा नद्याः। नदीशब्देन नदीस्थानि उदकानि लक्ष्यन्ते। उदकदोषोद्भवा रोगा इत्यर्थः। यद्वा नद्या नदनीया शब्दनीया अत्यन्त-दुष्परिहारत्वेन शब्द्यमाना इत्यर्थः। तान् मारयतीति नद्यमारः।

—अ. वे. १९, ३९, २;

नद्यरिष

नद्यां भवाः नद्याः। नदीशब्देन नदीस्थानि उदकानि लक्ष्यन्ते। उदकरोषोद्भवाः रोगाः·········तान् रिष्यतीति नद्यरिषः।

—अ. वे. १९, ३९, २;

नपात्क

न पातयति न विनाशयतीति आहुतिं न स्रावयतीति पुनश्चितिरूपस्याग्नेः नपात्केति नामधेयम्। —त. सं. ४, ७, १३, ५;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

नमुचि

न मुञ्चतीति नमुचिः । —अ. वे. २०, २६, ३;

नवगत्

(१) नवं वरं गच्छतीति नवगत् नूतन—विवाहवती वधूः ।
—तै. सं. ४, ३, ११, १;

(२) नवमभिनवं प्रतिदिवसमुद्यन्तं सूर्यं तदविनाभावेन गच्छतीति नवमभिनवमुत्पद्यमानं प्राणिजातं गच्छति व्याप्नोतीति वा नवगत् यद्वा नवधा विभक्तान् अहर्भागान् प्रातरादीन् गच्छतीति नवगत् । —अ. वे. ३, १०, ४;

नवनीत

यद्यस्मात्कारणात् दध्न उद्ध्रियमाणं सन्नवमैन्नवं नूतनं रूपमभवत्तस्मात् नवं च तन्नीतं चेति उद्धृतस्य सारपिण्डस्य नवनीतनामसंपन्नम् ।
—तै. सं. ३, ३, १०, १;

नवेदस्

प्रकाशस्याऽऽवृतत्वे न विद्यते न ज्ञायते अनेनेति नवेदाः । सूर्योदयो यथा न ज्ञायते तथा मेघसमृद्धिः । —तै. सं. ३, १, ११, ५;

नाक

कं सुखम् । अकं दुःखम् । न विद्यतेऽस्मिन् इति नाकः स्वर्गः ।
—अ. वे. १, ६, २; ३, २६, ३;

नाकसत्

नाकः स्वर्गः सद्यते प्राप्यते यैर्मन्त्रैस्ते नाकसदः । —तै. सं. ४, ४, २, ३;

नाम (आज्य)

नामयति सर्वाणि भूतानि आत्मानं प्रति प्रणतानि करोतीति आज्यस्य नामत्वम् । —का. सं. १, १०, ४;

नामधस्

इन्द्रमित्रादीनि नामानि दधाति विदधाति करोतीति नामधाः । यद्वा इन्द्राग्न्यादिदेवतात्मकः सन् तत्तन्नामानि स्वयमेव धत्त इति नामधाः ।
—ऋ. वे. १, १३४, ४३; अ. वे. २, १, ३;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

नार्षद

नृषदस्य पुत्रेण कण्वेन सह एतत्संज्ञेन ब्राह्मणेन । —ऋ. वे. ४, १६, २;

निःसाला

निःसालयति निर्गमयति अपसारयतीति निःसाला एतन्नामधेया पिशाची। यद्वा सालो वृक्षविशेषः । ततो निर्गता निःसाला । —अ. वे. २, १४, १;

निचेरु

अपहारबुद्ध्या निरन्तरं चरतीति निचेरुः । —का. सं. १७, २, ४;

निधान

लोहमयान्यावरणविशेषानि निधीयन्ते शफेषु इति निधानानि ।
—तै. सं. ४, ६, ७, २;

निधिपति

निधीयन्ते पुरुषार्था येष्विति निधयो वेदा तेषां पाता रक्षिता ।
—अ. वे. ७, १८, ४;

नियान

(१) नियमेन याति गच्छत्यत्र ज्योतिश्चक्रमिति नियानमन्तरिक्षम् ।
—ऋ. वे. ६, २२, २;

(२) नियान्त्यत्रेति नियानं मार्गः । —ऋ. वे. ८, २, १०;

(३) नीचीनं पराङ्मुखं यान्ति अनेन इति नियानं शकटम् ।
—अ. वे. १८, ४, ४४;

नियुत्

नितरां यौति मिश्रीभवतीति व्युत्पत्या तथाविधमर्थमाचष्टे ।
—तै. सं. २, १, १, २;

निर्बाध

सुवर्णफलके निम्नोन्नतभावमापद्य स्पर्शकारिणं पुरुषं निःशेषेण बाधन्त इति निर्बाधाः स्फोटसदृशा अवयवविशेषाः । —तै. सं. ४, १, १०, ४;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

निवीत

यत्रोभावपि बाहू न्यग्भूतौ सन्तौ ब्रह्मसूत्रेण वस्त्रेण वा वीयेते संवृतावाच्छादितौ क्रियेते तन्निवीतम् । —तै. सं. २, ५, ११, १;

निव्याधिन्

नितरां विध्यति हन्ति शत्रूनिति निव्याधी ।

—का. सं. १७, २, ४; तै. सं. ४, ५, ३, १;

निषङ्गधि

निषज्यत इति निषङ्ग खङ्गः स धीयतेऽस्मिन्निति निषङ्गधिः ।

—का. सं. १७, १, १०;

निष्कृति

निर्माणं नितरां यत् यस्मात् नियन्ति निर्गच्छन्ति तस्मात् ।

—अ. वे. ६, ४६, ४;

निष्ट्य

नितरां स्त्यायति संघातरूपेण सह वर्तत इति निष्ट्यः पुत्रादिधनिकस्य स्वामिनो धनगृहादिनिर्वाहकोऽमात्यः । —का. सं. ५, ६, २;

निहार

निहारं मूल्यभूतं हविः । नितरां ह्रियत इति । —का. सं. ३, ६, २;

नीथ

नीयत आहूयत इन्द्रोऽत्रेति नीथो यागप्रदेशः । —तै. सं. १, ४, ४०, १;

नृचक्षस्

(१) नृषु पुरुषेषु वेदपारंगतेषु मध्ये चष्टे मन्त्रान् विस्पष्टं वक्तीति नृचक्षाः । —का. सं. १३, २; तै. सं ४, २, २, १;

(२) नॄन् चष्टे पश्यतीति । —तै. सं. ३, २, ५, १; ४, ३, ९, १;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

(३) नृभिः मनुष्यैः ख्यायते दृश्यते उपास्यत्वेन साक्षात् क्रियत इति ।
—ऋ. वे. १, ७, ५; ८, ३, ८;

नृम्ण

नॄन् शत्रुजनान् प्रति अभिभावुकं मनो यस्य स तादृशः उक्तलक्षणान् नॄन् नमयति इति वा नृम्णं सेनालक्षणं बलम् । —ऋ. वे. २०, ३४, १;

नृषत्

नृषु मनुष्येषु जाठराग्निरूपेण सीदतीति ।
—का. सं. १०, १, २; तै. सं. ४, २, १, ५; ६, १, ३;

प

पञ्चावि

पञ्चभिरवतीति पञ्चाविः । पञ्चवर्षीयः पशुर्वा पञ्चाविः ।
—का. सं. १६, ८;

पतङ्ग

पतति गच्छतीति पतङ्गः सूर्यः । —सा. वे. १, ६, ५, ६;

पद

पदानि पद्यन्ते गम्यन्ते मुमुक्षुभिः प्राप्यन्त इति पदशब्देनांशीभूता विराट्हिरण्यगर्भेश्वरा उच्यन्ते । —ऋ. वे. २, १, २; ७, २७, ७;

पदवी

(१) पदं वेत्ति अवगच्छतीति पदवीः कवीनाम् ।
—तै. सं. ३, ४, ११, १;

(२) स्खलन्ति पदानि साधुत्वेन यो योजयति स पदवीः ।
—सा. वे. २, ५, ६, ४, २;

पर

पारयन्ति अभीष्टसमाप्तिं गमयन्तीति पराः । —तै. सं. ३, ३, ६, १;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

परमज्या

परमान् बलेन प्रकृष्टान् शत्रून् जिनाति हिनस्तीति परमज्या।

—सा. वे. १, ३, ४, ७; २, १४, १, २. १;

परमेष्ठिन्

परमे परे सत्यलोके तिष्ठतीति परमेष्ठी चतुर्मुखः।

—तै. सं. १, ६, ६, २;

पराञ्च

परमुत्तममञ्चन्तीति पराञ्चः। प्रथमं गृहीत्वा ततः परं द्वितीयोऽतिग्राह्यः। द्वितीयं गृहीत्वा ततः परं तृतीयोऽतिग्राह्यः। —तै. सं. ३, ३, ६, २;

परापुर्

परापृणन्ति पिण्डान् ददतीति परापुरः पिण्डदातारः पुत्राः।

—अ. वे. १८, २, २८;

पराशर

परागत्य शृणाति हिनस्ति शत्रूनिति पराशर इन्द्रः।

—अ. वे. ६, ६५, १; ७५, १;

परिचर (रुद्र)

परितः आपणवाटिकादौ हरणेच्छया चरतीति परिचरः।

—का. सं. १७, २, ४;

परिचित्

परितो भोगांश्चिनोति संपादयतीति परिचित्। —तै. सं. ४, २, ४, ४;

परिपति

(१) परितः पालयतीति परिपतिर्मनः। —का. सं. ५, २, १;

(२) परितो नानाविषयेषु पततीति परिपतिर्मनः।

—तै. सं. १, २, १०, २;

परिपाण

परिपातीति परिपाणः। —अ. वे. ८, ५, १६;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

परिभू

परितो भवति व्याप्य वर्तत इति व्युत्पत्त्या परिभूशब्दः दिग्वचनः।

—का. सं. १६, १;

पर्जन्य

काले प्रवर्षणार्थं रसान् प्रार्जयतीति पर्जन्यः। —अ. वे. १, २, १;

पर्णधि

पर्णानि पत्राणि धीयन्तेऽस्मिन्निति पर्णधिः इषुकाण्डः विषमयपत्रयुक्तो वृक्षो वा। —अ. वे. ४, ६, ५;

पर्णशद्

शदनं शदः शातनम्। यद्वा। पर्णानि शीयन्ते पक्वानि पतन्ति यत्र पृचपर्णसदः पतितपर्णस्थितिदेशः। —का. सं. १७, ७, ५;

पलीचक

पल्या पलितेन चकत इति पलीचकः जठरवत् वर्तमानः।

—अ. वे. ८, ६, २;

पशु

पश्यति सर्वं जगत् स्वकिरणैः प्रकाशयतीति पशुश्चन्द्रमाः।

—अ. वे. १८, ३, १८;

पश्चाद्वात

पश्चिमायां दिशि यो वायुर्वाति तस्य पश्चाद्वात इति संज्ञा।

—तै. सं. ४, ३, ३, २;

पाथ

पीयते जलं जीमूतैरत्रेति पाथः समुद्रः।

—का. सं. १४ ६; तै. सं. ४, ३, ३, १;

पावक

पुनातीति पावकः। —सा. वे. २, ११, १, १, १;

पावीरवी

पातृन् वीरांश्च वयति जनयतीति पावीरवी। —तै. सं. ४, १, ११, २;

T　CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

पितृयाण

पितरो यान्ति एभिः पथिभिः पित्र्यं लोकमिति ।

—अ. वे. १८, ४, १; ६२;

पितृषदन

पितरः सीदन्ति येषु लोकेषु ते पितृषदनाः लोकाः ।

—का. सं. ५, ७, २; अ. वे. १८, ४, ६७;

पिनाकावस

पिनाकाख्यं त्वदीयं (रुद्रस्य) धनुरावस्ते सर्वत आच्छादयतीति पिनाकावसः । —का. सं. ३, ३, ८;

पिशिताश

पिशितमश्नातीति पिशिताशः । —अ. वे. १, १६, ३;

पीलुमती

मध्यमा मध्यकक्ष्यां गता द्यौः पीलुमतीति उच्यते । पालयन्तीति पीलवः ग्रहनक्षत्रादयः । ते यस्यां सन्तीति पीलुमती । —अ. वे. १८, २, ४८;

पुच्छधि

पुच्छं धीयत अत्रेति पुच्छधिः । पुच्छशब्देन तद्गतरोमाणि विवक्ष्यन्ते ।

—अ. वे. ७, ५८, ८;

पुत्र

पुन्नामनरकोपलक्षितादशेषाद्ँ दुःखात् त्रायन्त इति पुत्राः ।

—तै. सं. ६, १, ६, १; अ. वे. १, ११, ५;

पुनःसर

पुनः पुनः आभीक्ष्ण्येन बहुतरव्याधिनिवृत्तये सरति प्रवर्तत इति पुनःसरा । —अ. वे. ४, १७, २;

पुनर्वसु

पुनरावर्तते वामं वस्वनयोरिति पुनर्वसू । —तै. सं. १, ५, १, ४;

पुरस्सत्

पूर्वस्यां दिशि सीदन्तीति पुरस्सदः । —का. सं. ११, १, १;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

पुरंधि

(१) पूर्णा धीयते निधीयते संचार्यत इति पुरंधिर्बुद्धिः ।

—अ. वे. १९, १०, २;

(२) पुरु बहुधा धीयते सम्यगवस्थाप्यत इति । —का. सं. १५, १;

पुरीषवाहन

पुरीषशब्देन पांसुरूपा सुरूपा मृदुच्यते । तां वहतीति पुरीषवाहनः ।

—का. सं. १२, ४;

पुरीषिन्

पृणाति पूरयतीति वा पुरीषं प्रजापश्वादिकम् । —अ. वे. ११, १, ३२;

पुरुक्षु

पुरुभिः बहुभिर्मनुष्यैः क्षूयते शब्द्यते प्रशस्यत इति पुरुक्षुः ।

—तै. सं. ४, १, ८, ३; ७, १४, ३;

पुरुतम

पुरून् बहून् शत्रून् तमयति ग्लापयतीति पुरुतमः ।

—सा. वे. २, २, ३, २, २;

पुरुष

पुरि देहे शेत इति पुरुषः । —अ. वे. १९, ६, १;

पुरुहुत

पुरुभिर्बहुभिः हूयत इति पुरुहुतः । —का. सं. २०, ५;

पुरूची

पुरु बहुलं अञ्चन्ति गच्छन्तीति पुरूच्यः । —अ. वे. १८, २, २९;

पुरोग

स्वस्वव्यापारे पुरतो गच्छन्तीति पुरोगाः । —तै. सं. ३, २, ४, ४;

पुरोवातसनि

पुरोवातं सनोति ददातीति पुरोवातसनिः । —तै. सं. ४, ४, ६, १;

पुलस्ति

भक्तानां पुरतस्तिष्ठतीति पुलस्तिः । —तै. सं. ४, ५, ९, १;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

पुष्टिवर्धन

पुष्टिं शरीरधनादिविषयां वर्धयतीति पुष्टिवर्धनस्तादृशं त्र्यम्बकम् ।

—तै. सं. १, ८, ६, २;

पूर्याण

पूर्याणैः यात्यनेनेति यानं वर्त्म । पुमांसो येन वर्त्मना पितृलोकं यान्ति स पूर्याणः । पुंभिरुह्यमानो वा शिबिकादिपूर्याणः । —अ. वे. १८, १, ५४;

पूर्वचिति

पूर्वमेव पुरुषाणां चित्रमभ्युपैतीति पूर्वचितिः । —का. सं. १६, ४;

पूर्वसद्

यज्ञे प्रारम्भाद् पूर्वं सीदन्ति तिष्ठन्तीति । —सा. वे. २, २०, ६, ६, १;

पूर्वहूति

देवानां प्रथमस्तोत्रार्थं यद्वा पूर्वे पूर्वं जाता देवा हूयन्त इज्यन्त आहूयन्त वेति पूर्वहूतिर्यज्ञः ।

—अ. वे. १९, १०, ५;

पूषन्

पुष्णातीति पूषा । —का. सं. १९, ६;

पृतना

व्याप्रियन्त इति पृतनाः । —सा. वे. १, ४, ३, १;

पृतनाषाट्

पृतनां परकीयसेनां……सहते विनाशयतीति पृतनाषाट् ।

—तै. सं. ३, ५, २, ४;

पृतनाषाह्य

पृतनां……सहत अभिभवतीति पृतनासहः । तत्र पृतनासाह्यः ।

—का. सं. २०, ५;

पृदाकु

पर्दयति कुत्सितं शब्दयति स्वेन दष्टान् प्राणिन इति पृदाकुः सर्पविशेषः ।

—अ. वे. ७, ५८, १;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

पृष्ठवाट्

पृष्ठे पृष्ठभागे वहतीति पृष्ठवाट् पञ्चवर्षीयः पशुः ।

—का. सं. १५, ३; १६, ८;

प्रखिद

प्रकर्षेण खेदयति पापिन इति प्रखिदन् । —का. सं. १७, ७, ५;

प्रघास

प्रकर्षेण घस्यते भक्ष्यत इति हविर्विशेषः प्रघासः । —का. सं. ३, ५, १;

प्रघास्य

वरुणपाशरूपं कर्म घ्नन्तीति वरुणप्रघासाः तानर्हन्तीति वरुणप्रघास्याः ।

—तै. सं. १, ८, ३, १;

प्रचेतस्

प्रकर्षेण चेतते कर्मानुष्ठातारं जानातीति प्रचेताः ।

—तै. सं. ३, ५, ५, ३;

प्रजा

प्रकर्षेण जायत इति प्रजा ।

—अ. वे. १, ८, १; २, ७, ४; ४, ४, २; १७, १, ३;

प्रतान

प्रतायन्ते विस्तार्यन्त इति प्रतानाः शाखाः । —अ. वे. ६, १३९, १;

प्रतिधि

प्रतिधीयतेऽस्मिन्निति प्रतिधिरन्नम् । —का सं. १६, २;

प्रतिधुक्

यस्मादिन्द्रं प्रति दुग्धवन्तः तस्मात् प्रतिधुषः प्रतिदिनं दुह्यमानस्य क्षीरस्य प्रतिधुगिति नाम संपन्नम् । —तै. सं. २, ५, ३, ३;

प्रतिपद्

(१) येन जीवनं प्रतिपद्यत इति प्रतिपदन्नम् । —का. सं. १६, २;

(२) प्रतिपद्यते उपक्रम्यत अनयेति ।

—तै. सं. १, ८, २१, २; ५, ४, १२, १;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

(३) प्रारभ्यन्त आज्यस्तोत्राणि याभिः ऋग्भिस्ताः प्रतिपदः ।

—तै. सं. ३, १, ७, २;

प्रतिमा

प्रतिनिधित्वेन निर्मीयत इति प्रतिमा । —अ. वे. ३, १०, ३;

प्रतिमान

प्रतिमीयत इति प्रतिमानं प्रतिनिधिः । —अ. वे. २०, ३४, ६;

प्रतिवेश

प्रतिस्विकत्वेन पत्नीं विशतीति प्रतिवेशः पत्न्यर्थमोदनः ।

—तै. सं. १, ८, ४, १;

प्रतिष्ठा

प्रतितिष्ठन्त्यस्यामिति प्रतिष्ठा पादयोराधारभूता भूमिः ।

—अ. वे. ११, ४, १८;

प्रतिसर

हन्तुमभिमुखा कृत्यादयः प्रतिसार्यन्ते प्रतिमुखं निवर्त्यन्त अनेनेति प्रतिसरोऽभिमंत्रितं रक्षासूत्रम् । —अ. वे. २, ११, २; ४, ४०, १;

प्रतीवर्त

प्रतिकूलं प्रतिमुखं वर्तयत्यनेनेति प्रतीवर्तः । —अ. वे. ८, ५, ४;

प्रथमजा

प्रथमं जायत इति प्रथमजा । —अ. वे २, १, ४;

प्रदातृ

प्रदात्रे प्रदापयित्रे । वाक्यस्यान्ते प्रदापयन्तीति श्रवणात् ।

—तै. सं. १, ७, १३, २;

प्रदिक्

प्रदिशि प्रकर्षेण दिशतीति प्रदिक् । — तै. सं. ३, ३, ११, ४;

प्रधि

(१) प्रधीयत इति प्रधिः रथचक्रस्य नेमिः । —अ. वे. ६, ७०, ३;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

(२) प्रकर्षेण धीयते धार्यते मध्यफलकमाभ्यां इति प्रधी ।

—तै. सं. ७, ४, ११, २;

प्रलयन

प्रकर्षेण लीयते संश्लिष्यत अनेनेति प्रलयनमुत्पत्तिस्थानम् ।

—अ. वे. १, २३, ३;

प्रवा

(१) प्रवाप्यत इति प्रवाऽन्नम् । —का. सं. १६, २;

(२) जगत्प्रवासकत्वरूपेण प्रकर्षेण वाति गच्छति प्रवर्तत इति प्रवा: ।

—तै. सं. ३, ५, २, ३;

(३) प्रथयं वाति गच्छति·······प्रवोषः कालः । —तै. सं. ४, ४, १, १;

प्रवीर

प्रकर्षेण वीरः शूरः । यद्वा प्रगतान् परागतबलानपि वीरयतीति प्रवीरः । —अ. वे. १९, १३, ५;

प्रवृत्

प्रकर्षेण प्रवर्तत इति प्रवृत् । —का. सं. १६, २;

प्रव्याध

प्रकर्षेण बलाधिक्येन विध्यन्ते मुच्यन्ते बाणा यावत्परिमाणेषु देशविशेषेषु तावत्परिमाणाः देशाः प्रव्याधाः । —तै. सं. १, ७, ८, १;

प्रशोचन

प्रकर्षेण शोचयतीति प्रशोचनः । —अ. वे. ७, १००, १;

प्रस्तुत

प्रस्तोत्रा गीयमानो प्रस्तावाख्यो भागः । प्रस्तूयते स्तुतेः प्रारम्भः क्रियतेऽनेनेति प्रस्तुतम् । —अ. वे. ११, ९, ५;

प्राची

प्रकर्षेणाञ्चतीति सायंसंध्याद्यनुष्ठानाय प्रवर्तत इति पश्चिमदिशः प्राचीति नामधेयम् । —तै. सं. ५, ५, १०, १;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

प्राजापत्य

प्रजापतिर्यज्ञानसृजतेत्युक्तत्वात् प्राजापत्यो यज्ञः ।
—तै. सं. १, ६, १०, ६;

प्राण

(१) प्रकर्षेण अनिति मुखे सर्वदा चेष्टत इति श्वासरूपो प्राणवायुः ।
—का. सं. १, ७, ४;

(२) प्राक् ऊर्ध्वमुखमनिति । —अ. वे. २, १६, १;

(३) सर्वप्राणिशरीरं व्याप्य चेष्टत इति प्राणः समष्टिशरीराभिमानी ……हिरण्यगर्भः । —अ. वे. ११, ६, १;

प्राणदा

यजमानाय प्राणं ददातीति प्राणदा इत्यग्निरभिधीयते ।
—का. सं. १८, १; तै. सं. ४, ६, १, ५;

प्राणधृक्

प्राणं दृंहति दृढीकरोतीति प्राणधृक् । —तै. सं. ७, ५, १९, २;

प्राणभृत्

प्राणशब्दोपेतान् मंत्रानुपधानकाले बिभ्रतीति । —तै. सं. ४, ३, ६, २;

प्रातर्जित्

प्रातःकाले जयति स्वाभिमतं साधयतीति प्रातर्जित् ।
—अ. वे. ३, १६, २;

प्रायण

प्रयन्ति प्रारभतेऽनेन देवतारूपेणेति प्रायणम् । —तै. सं. ६, १, ५, १;

प्रेति

प्रकर्षेण देहमेति गच्छतीति प्रेतिरन्नम् । —का. सं. १६, २;

फ

फलग्रहि

फलानि बहूनि गृह्णातीति फलग्रहिः । —तै. सं. ४, १, १, ४;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

फलिग

फलमस्यास्तीति फली यजमानस्तं गच्छति प्राप्नोतीति फलिगस्तादृशं बलम् । —तै. सं. २, ३, १४, ४;

ब

बन्धन

बध्यतेऽस्मिन्निति बन्धनं तीरवृक्षादिकं बध्नात्यनेन नावमिति बन्धन रज्जुः । —अ. वे. ३, ६, ७;

बभ्लुश

कपिलवर्णः । यद्वा बिभर्ति रुद्रमिति वसुर्वृषभः तस्मिन् शेते स बभ्लुशः ।
—का. सं. १७, २, २;

बर्हिषत्

बर्हिषि यज्ञे सीदन्तीति ।
—तै. सं. १, ८, ५, १; २, ६, १२, ३; ४, ६, १, ४;

बलगहा

पलायमानैः राक्षसैरिन्द्रादिवधार्थमभिचाररूपेण भूमौ निखाता अस्थिकेशनखादिपदार्थाः बलगा इत्युच्यन्ते............तान् बलगान् हन्ति विनाशयतीति बलगहा वाक् । —का. सं. ५, ६, १;

बलविज्ञाय

(१) बलं परकीयसामर्थ्यं विजानातीति । —तै. सं. ४, ६, ४, २;

(२) अयं मम बलमिति सर्वैर्बलत्वेन विज्ञायत इति बलविज्ञायः ।
—अ. वे. १९, १३, ५;

बलास

बलमस्यति क्षिपतीति । —का. सं. १३, ६;

बिसल्पक

विविधं सर्पति नाडीमुखेन शरीरस्यान्तः व्याप्नोतीति विसर्पकः ।
—अ. वे. ६, १२७, १;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

बिलधावन

बिलं योनिं प्रति धावति सहसा प्रविशतीति बिलधावनः ।

—तै. सं. ७, ४, १६, २;

बृहद्‌गावन्

बृहतो महतो दुष्प्रधर्षानि पुरुषान् गाते गच्छति इति बृहद्‌गावा । बृहदधिकं इच्छति सर्वं व्याप्नोति इति । —अ. वे. १६, ५६, ३;

बेकुरि

चन्द्रमो नामकः कश्चिद्‌गन्धर्वस्तस्य नक्षत्रसदृशानि शरीराणि भार्यास्ताश्च बेकुरिनामका । चित्तविकारहेतुत्वाद् बेकुरय इत्युच्यन्ते ।

—तै. सं. ३, ४, ७, १;

ब्रध्न

(१) बध्नाति महिम्ना सर्वं जगत् सृजतीति ब्रध्नः सूर्यमण्डलमध्यवर्ती ईश्वरः । —अ. वे. ११, ५, १;

(२) ब्रध्नाति नियमयति‥‥ ब्रध्नः सूर्यः । —अ. वे. २०, २६, ४;

ब्रह्मकृत्

इष्टिरूपं परिवृढं कर्म कुर्वन्तीति ब्रह्मकृतः । —तै. सं. २, २, २, २;

ब्रह्मक्षत्र

ब्राह्मणजातिर्ब्राह्मण्यं च । क्षतात् त्रायत इति क्षत्रम् ।

—का. सं २०, २;

ब्रह्मचारिवासिन्

ब्रह्मचर्येण वेदाभ्यासेन ब्रह्मचारित्वेन गुरुगृहे वसतीति ब्रह्मचारिवासी ।

—तै. सं. ६, ३, १०, ५;

ब्रह्मवनि

(१) ब्रह्मणा ब्राह्मणेन वन्यते पुरोडाशनिष्पत्यर्थं सम्यक् क्रियत इति ब्रह्मवनिः । —का. सं. १, ६, २;

(२) ब्राह्मणजातिं वनस्पतिं संभजत इति ब्रह्मवनिः ।

—का. सं. ५, ७, ३; तै. सं. १, ३, १, २;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

ब्रह्मवाहस्

ब्रह्मणा मंत्रेण स्तोत्ररूपेण प्राप्यत इति ब्रह्मवाहाः।

—ऋ. वे. २०, २३, ३;

ब्रह्महा

प्रोषिते भर्तरि जारजन्यो गर्भो भर्तारं प्रति अविज्ञातस्तेन गर्भेणोत्पन्नं ब्रह्म जहाति परित्यजतीति ब्रह्महा। —तै. सं. ६, ५, १०, ३;

भ

भद्रकृत्

भद्रं कल्याणं यजमानाय करोतीति भद्रकृत्। —तै. सं. ३, ४, ७, २;

भर

बिभ्रति जयलक्ष्मीमनेन योद्धार इति भरः संग्रामः।

—सा. वे. १, ३, १०, ७;

भरूची

भ्रियते पोष्यत इति भरुः शरीरम्। तदपहतुं अञ्चति गच्छतीति भरूची। —ऋ. वे. २, २४, ८;

भव

भवन्ति उत्पद्यन्ते जन्तवोऽस्मादिति। —का. सं. १७, ४, २;

भवाशर्वौ

भवति उत्पद्यत अस्मात् सर्वं जगदिति भवः। शृणाति हिनस्ति सर्वमन्तःकाल इति शर्वः। — ऋ. वे. ४, २८, १; ११, २, १;

भारभारितम

वोढव्यो द्रव्यविशेषो भारस्तं भरति धारयति इति भारभारि। अतिशयेन भारभारी भारभारितमः। —तै. सं. ४, १, ४, २;

भिन्दु

भिद्यन्त इति भिन्दवो जलकणाः। —तै. सं. ६, ६, ३, ५;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

भिषज्

भिषज्यन्ति चिकित्सां कुर्वन्तीति भिषजो वैद्याः। —अ. वे. २, ९, ३;

भीम

बिभेति अस्मादिति भीमः। —अ. वे. ११, २, १८;

भीरु

मृत्युनामक कश्चिद्गन्धर्वस्तस्य प्रजाभिमानिदेवता भार्यास्ताश्च बिभ्यति मृत्योरिति भीरुव इत्युच्यन्ते। —तै. सं. ३, ४, ७, ३;

भुज्यु

भुनक्ति पालयति विश्वमिति भुज्युः। —तै. सं. ४, ३, ७, १;

भुव

भवत्यस्माज्जगदिति भुवः। भुवः शब्दः प्रजापतिमाचष्टे।
—तै. सं. ४, ३, २, १;

भुवन

भवन्त्यस्माद् भूतानि इति भुवनम्। —तै. सं. १, १, १२, १;

भुवनेष्ठा

परमात्मा भुवनेष्ठा। माया तत्कार्यात्मके भुवने भूतजाते तिष्ठति उपहितः सन् वर्तत इति भुवनेष्ठा। —अ. वे. २, १, ४;

भुवन्ति

भुवं तनोतीति भुवन्तिः भूमण्डलविस्तारकः।
—का. सं. १७, २, ३; तै. सं. ४, ५, २, २;

भू

मृत्युनामको कश्चिद्गन्धर्वस्तस्य विश्वाभिमानिन्यो देवता भार्यास्ताश्च भवन्ति सर्वदा वर्तन्त इति भुव इत्युच्यन्ते। —तै. सं. ३, ४, ७, २;

भूयस्कृत्

इष्टके त्वं भूयो बाहुल्यं करोतीति भूयस्कृत्। —तै. सं. ४, ४, ७, १;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

भूरिदात्र

दात्यनेन खण्डयति शत्रूनिति दात्रमायुधम् । प्रभूतायुध इत्यर्थः । यद्वा दीयत इति दात्रं धनम् । —अ. वे. २०, ११, २;

भूरिधायस्

भूरि बहुलं दधाति प्रवर्षणेन कृत्स्नं जगत् पोषयतीति भूरिधायाः । यद्वा । भूरीणि स्थावरजङ्गमात्मकानि वस्तूनि यथोचितकाले वृष्टिप्रदानेन दधाति धारयतीति भूरिधायाः । —अ. वे. १, २, १;

भौवन

त्रयोदशसंख्याकाः भौवनाः । भवन्ति सत्तां लभन्त अस्मिन् भूतजातानि इति भुवनः सम्वत्सरः·······तत्सम्बन्धिनश्चैत्राद्या मासा भौवनाः । —अ. वे. ३, २१, ५;

भ्राज

भ्राजते दीप्यत इति भ्राजः । —अ. वे. १७, २०, १;

भ्राट्

भ्राजतीति भ्राट्·······सूर्याय । —का. सं. ८, १६, १;

म

मखघ्नि

नमस्काराभावे मखं यज्ञं हन्तीति, मखहा तस्मै मखघ्नेऽग्नये । —तै. सं. ३, २, ४, १;

मति

मन्यते कृत्स्नं जगत् जानातीति मतिः प्रजापतिः । —का. सं. १४, ७; तै. सं. ४, ३, २, ३;

मतिवित्

श्रद्धायुक्तानां यजमानानां मतिं वेत्तीति मतिवित् । —तै. सं. ३, २, ५, २;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

मद

माद्यन्त्यनेनेति मदः सोमः । —सा. वे. १, २, ४, ६;

मद्र्यक्

मामञ्चतीति । —अ. वे. २०, २३, १;

मधुश्चुत्

मधुररसं श्चोतन्ति सारयन्तीति मधुश्चुतः । —तै. सं. ५, ६, १, १;

मध्यमशी

(१) मध्यमेन स्वकीयपरकीयपक्षपातरहितेन शास्त्रीयमार्गेण शेते वर्तत इति । —तै. सं. ४, २, ६, ४;

(२) मध्यमेऽन्तरिक्षस्थाने शेते सञ्चरतीति मध्यमशीः वायुः ।

—अ. वे. ४, ९, ४;

मनःसत्

मनसि सीदतीति । —का. सं. १०, १, २;

मंथिपा

मंथिगृहं पिबन्तीति मंथिपाः देवाः । —का. सं. ७, ७, ४, ५;

मन्यु

मन्यते सर्वं जानातीति मन्युः निरावरणज्ञानः ईश्वरः ।

—अ. वे. ११, १०, १;

मयन्द

मयः सुखं ददातीति मयन्दं तादृशं छन्दः । —का. सं. १५, ३;

मयस्कर

मयो मोक्षं सुखं करोतीति मयस्करः । —का. सं. १७, ६, ५;

मयोभु-भू

मयः सुखं भावयतीति मयोभुः ।

—तै. सं. ४, ५, ८, १; ७, १२, ३; का. सं. ३, ५, ४; २०, ३;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

मरुत्

म्रियन्ते प्राणिन एभिरिति मरुतः। ·······अथवा म्रियन्त इति मरुतः।

—अ. वे. २०, १, २;

मर्मन्

येषु स्थानेषु विद्धः सद्यो म्रियते तानि मर्माणि।

—सा. वे. २, २१, १, ८, १;

मलिम्लुक्

मलं वा धीर्येषां अस्तीति मलिनः। तथाविधा भूत्वा म्लायन्ति चौर्यं कुर्वन्तीति मलिम्लुचः। —का. सं. १२, ७;

महिष

माहात्म्यं यागकर्तृस्वरूपं मनोति ददातीति महिषोऽग्निः।

—का. सं. ३, १, ७;

मातरिश्वन्

(१) मातर्यन्तरिक्षे श्वसिति निश्वासवच्चेष्टां करोतीति मान्तरिश्वा वायुः। —का. सं. १, २, १; अ. वे. ८, १, ५; ११, ६, १५;

(२) मातर्यन्तरिक्षे सर्वप्राणिनां नियन्तरि परिच्छेदकारिणि शेते तिष्ठतीति। —का. सं. १२, ४; तै. सं. ४, १, ४, १;

मांपश्य

पश्यतीति पश्यः। —अ. वे. ७, ३९, १;

मांस्पचनी

मांसं पच्यते यस्यामुखायां सा मांस्पचनी। —तै. सं. ४, ६, ९, १;

मास्

मास्यते परिमीयते इति माश्चन्द्रः। —अ. वे. १८, १, ३५;

मितद्रु

महान्तमपि पन्थानं मितमल्पमिव द्रवन्ति गच्छन्तीति मितद्रुव.।

—तै. सं. १, ७, ८, २;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

मित्र

मीतेर्मरणात् त्रायत इति मित्रः । —अ. वे. ३, ८, १;

मित्रभृत्

जगन्मित्रभूता ओषधीर्बिभ्रति पोषयन्तीति मित्रभृतः ।
—तै. सं. २, ४, ७, २;

मीढ्वन्

मेहति सिवन्तीति मीढ्वान् । —का. सं. १७, ८, ४;

मुग्ध

मुह्यतीति मुग्धः । —का. सं. १०, ४, १;

मुद्

सर्वं मोदत इति मुदः । —का. सं. २०, २;

मुद्र

मोदकं हर्षजनकम् । मुद् हर्षे यद्वा मुदं हर्षं राति ददातीति मुद्रम् ।
—अ. वे. १८, ३, १९;

मुष्काबर्ह

मुष्कमाबृहति मूलमुन्मूलयतीति मुष्काबर्हः । —अ. वे. ३, ९, २;

मूरदेव

मूलेन विषौषध्या दीव्यन्तीति मूरदेवाः । —अ. वे. ८, ४, २४; ३, २;

मृत्खन

मृद्यस्मिन् प्रदेशे खन्यते स प्रदेशो मृत्खनः । —तै. सं. ४, १, ३, १;

मृत्यु

मारयति प्राणांस्त्याजयतीति मृत्युः । —अ. वे. ६, ९३, १;

मेधसाति

मेध्यो यज्ञः । स यत्र सीयते सीव्यत इति मेधसातिर्यज्ञशाला ।
—का. सं. १०, ३, १०;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

मेनि

वज्रनामैतत् । मीनाति हिनस्तीति मेनिः मर्मभेदिमंत्रात्मकं वाग्वज्रम् ।

—ऋ. वे. २, ११, १;

मेहन

मिह्यति सिञ्चति अनेनेति मेहनं मूत्रनालः ।　　—ऋ. वे. १, ३, ७;

म्रोक

म्रोचति धनादिकमपहृत्य छन्नः सन् गच्छतीति म्रोकः ।

—ऋ. वे. २, २४, ३;

य

यजुष्

(१) फलेन युज्यत इति व्युत्पत्त्या यजुः शब्दो यागवाची ।

—का. सं. १, १०, ३;

(२) युज्यत इति यजुः ।　　—ऋ. वे. १८, १, ३२;

यज्ञ

सूयतेऽभिषिच्यतेऽत्रेति अभिषेकयुक्तो यज्ञः सवः ।

—तै. सं. ७, ३, ११, ३;

यज्ञवाहस्

यज्ञं वहन्तीति यज्ञवाहसः ।　　—तै. सं. १, ८, ३, १;

यत्

यतन्त इति यतः तेषाम् ।　　—तै. सं. ६, २, ४, १;

यम

यमयति नियमयति पापानुसारेण प्राणिनो निगृह्णातीति यमः ।

—ऋ. वे. ६, ९३, १;

यमन

यमयतीति यमनः ।　　—का. सं. १९, ९;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

यव्युध

यौति मिश्रीभवतीति विरोधं करोतीति युः शत्रुः । युभिः शत्रुभिः सह युध्यन्तीति यव्युधः । —तै. सं. ४, ५, ११, १;

यातुधान

(१) यातूनि रक्षांसि विद्यन्तेऽस्मिन्निति यातुमान् राक्षसाधिपतिः । यद्वा यातवो यातना । ताऽस्मिन् विद्यन्त इति यातुमान् तादृशः निखिलः सर्वः यातुधानः । —अ. वे. १, ७, ४;

(२) यातना पीडाविशेषाः धीयन्ते विधीयन्ते क्रियन्त एभिरिति यातुधानाः । —अ. वे. १, २८, १; ८, ३, २;

यातुधानी

यातना पीडास्ता प्राणिभ्यो धीयन्ते क्रियन्त आभिरिति यातुधान्यः……… पिशाच्यः । —अ. वे. २, १४, ३; १९, ३९, १;

याव

युतो मिश्रीभवतः शुक्लकृष्णपक्षावत्र इति यावाः मासाः ।
—तै. सं. ४, ३, ९, २;

युक्

युज्यत इति युक् । —अ. वे. २०, ३, ३;

यूपव्रस्क

ये यूपव्रस्का यज्ञार्थं यूपं वृश्चन्ति । —तै. सं. ४, ६, ८, २;

योग

युज्यतेऽनुष्ठीयते इति योगः कर्म ।
—का. सं. १२, २; तै. सं. ४, १, २, १; ५, २, १, १;

र

रक्षस्

रक्षत्यस्मादिति । —अ. वे. २, ३, ६;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

रक्षःसमद्

रक्षोजात्या सह मदनम्। यद्वा समानं माद्यन्ति अस्मिन्निति समत् संग्रामः। —अ. वे. ११, १, ३२;

रक्षोहरण

रक्षांसि घ्नन्तीति रक्षोहरणः। —तै. सं. १, ३, २, १;

रघुष्यत्

रघु लघु शीघ्रं स्यन्दते गच्छतीति। —अ. वे. ३, ७, १;

रजनी

रञ्जयति स्वसंसृष्टं वस्त्रादिकमर्थमिति। —अ. वे. १, २३, १;

रजाशया

रजते शेत इति रजाशया। —तै. सं. १, २, ११, २;

रत्नधा

रत्नानि दधातीति रत्नधाः। —तै. सं. १, २, ६, १;

रदावसु

रदति ददाति वसूनिति रदद्वसुः। —सा. वे. २, २०, ३, ३, १;

रथकार

रथं कुर्वन्तीति रथकाराः सूत्रधारविशेषाः : —का. सं. १७, ४, १;

रन्तृ

सर्वं रमयतीति रन्ता। —का. सं. ९, ६, २;

रयिस्थान

तिष्ठन्त्यस्मिन् धनानि इति। —अ. वे. ७, ८१, १;

रराणा

राति ददाति अभिमतफलं इति रराणा अथवा मा भैषीरिति शब्दायमाना। —अ. वे. १, १८, २;

रसा

रसोऽस्यामस्तीति रसा नदी। ....रसते शब्दायत इति वा रसा। —अ. वे. ४, २, ५;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

राजसू

राज्ञः सूयन्ते जनयन्तीति राजस्वः। —का. सं. ११, २, १;

राजसूय

राजा सूयत अनुज्ञायते जगद्रक्षणविधौ येन कर्मणा तद् राजसूयमभिषेकाख्यमिदं कर्म। —अ. वे. ४, ८, १;

राथन्तर

पृष्ठस्तोत्रनिष्पादकं रथन्तरं वेत्तीति राथन्तरः। —तै. सं. २, ३, ७, २;

राधोगूर्ता

राधो धनम्। उद्गिरन्तीति राधोगूर्ता धनाभिवर्षिण्यः।

—का. सं. ६, ८, ५;

रामा

व्याधितो जनः अनया ओषध्या रमते इति रामा भृङ्गराजाख्या ओषधिः। —अ. वे. १, २३, १;

रामायणी

रमते आसु प्राणवायुरिति रामा नाड्यः ताः अयनं प्रधावनमार्गो यस्या सा रामायणी नाडी। —अ. वे. ६, ८३, ३;

राय

रान्ति प्रयच्छन्ति क्षीरादिकमिति रायो गावः।

—सा. वे. २, ७, ६, २, १;

राष्ट्रभृत्

(१) राष्ट्रं राज्यं बिभर्ति पोषयतीति राष्ट्रभृत्। —अ. वे. ६, ११८, २;

(२) राष्ट्रशब्दोपेतान् मंत्रान् बिभ्रति तैरुपधीयन्त इति राष्ट्रभृतः। एतदुपधानेन निष्पन्ना या चितिः सैषाऽग्नेः संबंधिनी राष्ट्रभृदित्युच्यते। —तै. सं. ५, ७, ४, ४;

राष्ट्रभृत्व

राष्ट्रं भ्रियते स्वीक्रियत एभिरिति राष्ट्रभृत्वम्। —तै. सं. ३, ४, ६, २;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

रिशादस

(१) रिशन्ति हिंसन्तीति रिशास्तान् अदन्ति भक्षयन्ति विनाशयन्तीति रिशादसः। —तै. सं. ४, ३, १३, ४; अ. वे. ७, ८२, १;

(२) रिशां वैरिकृतां हिंसां दस्यन्ति उपक्षपयन्ति इति रिशादस । —का. सं. ३, ५, १;

रुद्र

(१) रोदयति विरोधिनां शतमिति रुद्रः। —का. सं. ३, ८, १; अ. वे. १, १९, ३; ११, २, ३;

(२) रुत् ज्ञानम्। राति ददातीति रुद्रः। —का. सं. १७, १, १;

(३) रुत् दुःखं द्रावयतीति रुद्रः। —का. सं. १७, १, १; तै. सं. ४, ५, १, १;

(४) सर्वे प्राणिनो मामनिष्ट्वा नश्यन्तीति स्वयं रौतीति रुद्रः। —अ. वे. १८, १, ४०;

(५) रौति शब्दायते तारकं ब्रह्म उपदिशतीति रुद्रः। —अ. वे. २, २७, ६;

रुप

रुप्यति मुह्यतीति रुपो मृतो पुरुषः। —अ. वे. १८, ३, १०;

रूप

रूप्यन्ते मणिमुक्तादिभिर्बहुभिर्प्रकारैः निरूप्यन्त इति रूपाणि बहूनीत्यर्थः। —तै. सं. ३, ५, १, १;

रेष्मिय

रिष्यन्ति विनश्यन्ति भूतान्यत्रेति रेष्मः प्रलयकालस्तत्र भवः शर्करापाषाणादिसहितो वृष्टिजलविशेषो रेष्मियः। —तै. सं. ४, ५, ७, २;

रेष्म्य

रिष्यन्ति नश्यन्ति भूतान्यत्रेति.......रेष्म्यः। —का. सं. १७, ६, २;

रोग

रुज्यते भज्यते पुरुषोऽनेनेति रोगः ज्वरातीसारादिरूपः। —अ. वे. १, २, ४;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

रोदसी

रोदस्यो द्यावापृथिव्यौ। यस्मादनयोर्मध्ये वर्तमानः प्रजापतिररोदीत् तस्मात् रोदित्यनयोरिति व्युत्पत्या रोदसी इति द्यावापृथिव्योर्नाम संपन्नम्।

—अ. वे. ४, २, ३;

रोह

रोह्यन्ते प्राप्यन्त इति रोहा स्वर्गादिलोकाः। —अ. वे. ४, १४, १;

ल

लय

लयत इति लयः। —का. सं. १९, ३;

लोक

(१) लोक्यते भुज्यत इति लोकः।

—का. सं. २०, ४; तै. सं. ४, १, १०, ४; अ. वे. ६, ११७, ३;

(२) लोक्यत अनुभूयते जन्मान्तरकृतधर्माधर्मफलं सुखदुःखात्मकं अस्मिन्निति लोकः भूलोकः। —अ. वे. १८, ३, २;

लोककृत्

लोककृतः संस्क्रियमाणस्य प्रेतस्य लोकं स्वर्गं कुर्वन्तीति लोककृतः।

—अ. वे. १८, ४, १६;

लोकंपृण

लोकमिष्टकानाक्रान्तमवशिष्टं देशं पूरयन्तीति लोकंपृणाः।

—तै. सं. ४, २, ४, ४;

लोप्य

लुप्यते नश्यति गमनादिर्यत्रेति लोपोऽगम्यप्रदेशस्तत्र भवो लोप्यः।

—का. सं. १७, ७, ४;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

व

वंसग

वंसानि वनानि गच्छतीति वंसगः। दावाग्निरूपो भूत्वा वनेषु तिष्ठतीति। —तै. सं. २, ६, ११, ४;

वक्षण

रुध्यते पुरुषो वैरीति। —ऋ. वे. ७, ११६, १;

वग्ना

वदन्त्यनयेति वग्ना वाक्। —तै. सं. १, ३, १४, ७;

वधात्मन्

हन्यन्त अनेन जना इति अशनिर्वधः। वधात्मना अशनिरूपेण।

—अ. वे. ६, ६, ३;

वधापति

अवघ्नन्ति अवबाधन्त इति। वधाः पतङ्गादयः। —अ. वे. ६, ५०, ३;

वनसत्

वने सीदतीति वनसत्। —तै. सं. ४, ६, १, ४;

वपाश्रपणी

वपाख्यो यो मांसविशेषः तां श्रपयतीति वपाश्रपणी।

—का. सं. ६, ३, ७;

वयस्

(१) विज्यते प्राणिभिरश्यत इति वयोऽन्नम्। —का. सं. १३, ७;

(२) वीयते प्राणिभिरश्यत इति। —तै. सं. ४, २, ७, २;

(३) वियन्ति गच्छन्त्यस्मिन्निति वयोऽन्तरिक्षम्। —अ. वे. १८, ३, ७३;

वयस्कृत्

वयोऽन्नं करोतीति वयस्कृत्। —का. सं. ३, ३, ६;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

वयोधस्

(१) वयः शरीरावस्थान् मेधते पोषयतीति वयोधोऽन्नम् ।

—का. सं. १६, २;

(२) वयः पक्षी तद्वत् धावतीति वयोधाः । —तै. सं. ४, ४, १, ३;

(३) वय आयुष्यम् । तस्मिन्नतीते सति मृतान् पुरुषान् यमलोके दधाति स्थापयतीति वयोधाः । वयसोऽन्ते दधातीति ।

—तै. सं. ४, ४, १२, १;

वरसत्

वरे श्रेष्ठे राजादिगृहे सीदतीति । —तै. सं. १, ८, १५, १;

वरुण

वृणोति सर्वं जगत् निग्रहीतुम् । पाशजालेन व्याप्नोतीति वरुणो रात्र्यभिमानी देवता । —अ. वे. १, ६, १;

वरिवस्कृत्

वरिबोधनं करोतीति वरिवस्कृत् । —का. सं. १७, २, ३;

वर्ण

वर्ण्यत इति वर्णो देहः । —तै. सं. १, २, ७, १;

वर्त

वर्तते प्रवहति जलमत्रेति वर्तो मार्गः । —अ. वे. १, ३, ७;

वलगहन

जीर्णकटपटादिखण्डबद्धा अस्थिनखरोमपादपांसुप्रभृतयो विरोधिनां मारणार्थं ये भूमौ निखन्यन्ते ते वलगास्तान् घ्नन्तीति वलगहनः ।

—तै. सं. १, ३, २, १;

वसु

स्वस्योपरि यजमानं वासयतीति वसुः । —तै. सं. १, ८, १५, २;

वसुधान

वसूनि धनानि धीयन्ते धार्यन्त अस्मिन्निति वसुधानः ।

—अ. वे. ६, ८२, ३; ११, २, ११;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

वसुवित्

वसुनो धनस्य सारत्वं वेत्तीति वसुवित् । —का. सं. ३, ३, २१;

वसुश्रवस्

वसुर्वसुमानयमग्निर्वसुरुद्रादिदेवैरादरेणैव श्रूयत इति वसुश्रवा ।
—तै. सं. १, ५, ६, ३; ४, ४, ४, ८;

वसोर्धारा

वासयतीति व्युत्पत्त्या वसुरग्निस्तस्येयमाज्यधारा वसोर्धारा ।
—तै. सं. ५, ७, ३, २;

वस्ति

वसत्यस्मिन् अशितपीतान्नोदकमिति वस्तिः मूत्राशयः ।
—अ. वे. ११, ३, १२; ४, १२;

वह

वहत्यनेनेति वहः । —अ. वे. ४, ११, ७;

वह्नि

मनोनामककश्चिद्गन्धर्वस्तस्य च ऋक्सामदेवता भार्यास्ताश्च सौन्दर्यं वहन्तीति वह्नय इत्युच्यन्ते । —तै. सं. ३, ४, ७, २;

वह्यशीवरी

वहत्यनेनेति वहनसाधनमान्दोलनकादि वह्यम्……तत्र शयनस्वभावा …… स्त्रियः । —अ. वे. ४, ५, ३;

वाज

वजन्ति गच्छन्ति क्रमेण प्रवर्तन्त इति चैत्रादिमासाः वाजाः ।
—तै. सं. २, ५, ७, ४;

वाजजित्

वाजमन्नं जयतीति वाजजित् । —का. सं. २, २, १;

वातव्रज

वातवत् शीघ्रं व्रजति गच्छतीति वातव्रजा । —अ. वे. १, १२, १;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

वातप्रमीय

वातेन या प्रमीयन्ते विनश्यन्ति ता वातप्रमीयाः । —का. सं १९, १, ८;

वातापिन्

वातं वायुमाप्नुवन्तीति वातापिनो वाय्वाहाराः । —तै. सं. ३, ५, ८, १;

वात्सबन्ध

यथा वत्सः एकैकेन पाशेन प्रबध्यते तथा विश्वेदेवस्येत्यादिषु द्वादशसु पदेषु एकैकेन पदेन यज्ञो बध्यते अतस्तानि पदानि वात्सबंधानि ।

—तै. सं. ६, १, २, ५;

वायु

वान्ति गच्छन्तीति वायवो गन्तारः ।

—ऋ. वे. १, १, १; तै. सं. १, १, १, २;

वारुण

बन्धनस्य वरुणपाशरूपत्वात् तद्युक्तः सोमो वारुणः ।

—तै. सं. ६, १, ११, १;

वार्त्रघ्न

वृत्रो येन हन्यत इति वृत्रघनस्तद् हनुः । —का. सं. ११, ४;

वासव

वासयन्ति रथस्योपर्यादित्यं इति वासवा आदित्यस्याश्वाः ।

—तै. सं. १, ६, १२, २;

वाह्य

वाह्यन्त इति वाह्याः । —ऋ. वे. ३, १७, ५;

विकिरिद

कीर्यन्ते भक्तानां संनिधौ बहुधा प्रक्षिप्यन्त इति किरयो धनानि तानि ददातीति किरिदः । —तै. सं. ४, ५, १०, ५;

विकिरिद्र

विकिरति प्रक्षिपति शरानिति विकिरिः । विकिरिः सन् बाणान् मुञ्चन् द्रावयति शत्रूनिति । —का. सं. १७, ८, ६;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

विकिरिश

विविधं किरं घाताद्युपद्रवं द्रापयति नाशयतीति विकिरिशः।

—का. सं. १७, ८, ६;

विक्षिणत्क

विविधं क्षिण्यन्ति हिंसन्ति पापमिति विक्षिणत्कः। —का. सं. १७, ७, ५;

विचिन्वत्क

(१) विचिन्वन्ति पृथक् कुर्वन्ति धर्मिष्ठं चेति विचिन्वत्कः।

—का. सं. १७, ७, ५;

(२) विचिन्वन्ति अपेक्षितमर्थं सम्पादयतीति। —तै. सं. ४, ५, ६, २;

विजामन्

विशेषेण जायत अपत्यमत्रेति विजामा गुह्यप्रदेशः। —अ. वे. ७, ८०, २;

वित्तायनी

धनरहितस्य वित्तार्थं तं पुरुषं प्राप्नोतीति वित्तायनी।

—का. सं. ५, ३, १;

विदथ

विदन्ति प्राप्नुवन्त्यनेन फलमिति विदथो यज्ञः। ········विद्यन्ते ज्ञायन्ते नक्षत्राणि अस्मिन्निति विदथमन्तरिक्षम्। —अ. वे. १, १३, ३;

विधथ

विविधं जगत् दधति पोषयन्तीति ब्रह्मादयः। —का. सं. १५, १;

विधमा

विकृतं धमति शब्दायत इति विधमा। —अ. वे. १, १८, ४;

विधर्ता

धारयतीति धर्ता। विशेषेण धर्ता विधर्ता। विविधं धारयतीति।

—का. सं. १८, ७;

विबाध

बाधयतीति बाधः विशेषेण शत्रुरोगादेर्बाधकः। —अ. वे. १६, ३४, ७;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

विभात्

विशेषेण कर्मभूमित्वेन भातीति विभात् अयं भूलोकः ।

—तै. सं. १, ७, ५, २;

वियुक्

विशेषेण युज्यन्ते रथ इति वियुजो वडवा । —अ. वे. ७, ४, १;

विराट्

विश्वेषु राजत इति । —तै. सं. १, ३, २, १;

विवस्वत्

विवासयति अपगमयति तम इति विवस्वान् । —अ. वे. १६, ६, ७;

विवृत्

विशेषेण वर्तत इति विवृदन्नम् । —का. सं. १६, २;

विव्याधिन्

विशेषेण विध्यतीति विव्याधी । —तै. सं. ४, ५, २, १;

विश्वजित्

विश्वं कृत्स्नं जगत् जयति वशीकरोतीति विश्वजित् ।

—अ. वे. ६, १०७, १;

विश्वधायस्

विश्वान् सर्वान् दधाति पुष्णातीति विश्वधायाः यद्वा विश्वान् सर्वान् इन्द्रादीन् हव्यं क्षीररूपं धापयति पाययति इति विश्वधायाः ।

—का. सं. १, २, ४; सा. वे. १, ४, १०, ६; अ. वे. ३, २२, २;

विश्वनाम्नी

विश्वं जगत् नमयन्ति स्वात्माभिमुखं कुर्वन्तीति विश्वनाम्न्यः ।

—अ. वे. ७, ७६, २;

विश्वप्स्नी

विश्वैः प्स्यायते भक्ष्यते पीयत इति विश्वप्स्नी । —का. सं. १३, १, ३;

विश्वभरा

विश्वं कृत्स्नमुखारूपं बिभर्तीति विश्वभराः । —तै. सं. ४, १, ३, २;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

विश्वभृत्

विश्वं बिभ्रतीति विश्वभृतो आपः ।　—का. सं. ११, २, ३;

विश्वभोजस्

विश्वं भुनक्ति पालयतीति विश्वभोजाः ।　—अ. वे. ४, ३५, ३;

विश्वम्भर

विश्वं सर्वं प्राणिजातं बिभर्ति अनुप्रविश्य अशितपीतादिपचनेन पोषयतीति विश्वम्भरो जाठराग्निः ।　—अ. वे. २, १६, ५;

विश्वम्भरा

विश्वं कृत्स्नमुखारूपं बिभर्तीति ।　—का. सं. १२, ३;

विश्वमिन्व

विश्वमिन्वति प्रीणयतीति विश्वमिन्वः ।　—तै. सं. ३, १, ११, ७;

विश्वरूप

विश्वं रूप्यते येन स विश्वस्रष्टा ।　—अ. वे. १८, १, ५;

विश्ववनि

सोमो विश्वं वनते भजत इति विश्ववनिः ।　—तै. सं. २, ४, ५, २;

विश्ववारा

विश्वान् सर्वान् राक्षसकृतान् विघ्नान् वारयतीति विश्ववाराः ।
—तै. सं. २, ५, ८, ६;

विश्ववेदस्

विश्वं वेत्ति वेदयतीति वा विश्ववेदाः ।
—का. सं. ३, ४, ५; तै. सं. १, २, १४, १३;

विश्वव्यचस्

(१) विश्वं व्यचति····व्याप्नोतीति विश्वव्यचाः ।　—का. सं. १६, ४;

(२) विश्वं सर्वं यज्ञं च्यवतीति गच्छतीति विश्वव्यचाः ।
—का. सं. ५, ८, ३;

(३) विश्वं विशेषेणाञ्चति गच्छतीति ।　—तै. सं. ३, ४, ७, २;

T　CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

विश्वशम्भू

विश्वस्य शं सुखमस्मात् भवतीति विश्वशंभू. । —का. सं. ८, २०, १;

विश्वात्

विश्वं सर्वमत्तीति भक्षयतीति विश्वात् ।

—अ. वे. ३, २१, ४; १८, ३, ५५;

विश्वाषाट्

विश्वं सहते तत्पालनप्रयासमङ्गीकरोतीति विश्वाषाट् ।

—तै. सं. ४, ४, ८, १;

विषधान

विषं धीयत अस्मिन्निति विषधानः विषस्थानम् । —अ. वे. २, ३२, ६;

विषात्

विषमत्तीति विषात् । —तै. सं. १, १, ६, १;

विषातकी

विषमातङ्क्यति संयोजयतीति विषातकी । —अ. वे. ७, ११८, २;

विष्कलि

विष्क इत्यनुकरणशब्दः। तां लाति आदत्ते करोतीति विष्कलिः सूतिमारुतः। यद्वा विट् व्याप्ता सती कलयति प्रेरयति इति विष्कला। विट् चासौ कला चेति विष्कला । —अ. वे. १, ११, ३;

विष्टम्भ

कृत्स्नं शरीरं विष्टभ्नोति स्थिरीकरोतीति विष्टम्भः प्रजापतिः ।

—का. सं. १५, ३;

विष्टि

विशन्ति प्रविशन्तीति विष्टयः किरणाः । —सा. वे. २, १६, ५, १, ३;

विष्ठा

विविधं तिष्ठतीति । — अ. वे. ७, ३, १;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

विष्णु

यज्ञप्रयोगं कृत्स्नं व्याप्नोतीति विष्णुर्यजमानः।

—का. सं. १३, १; तै. सं. ४, २, १, १;

विसृप्

विविधं सर्पन्ति योधाऽस्मिन्निति विसृप् संग्रामः। —का. सं. १, ६, ६;

विहव्य

हूयतेऽत्रेति हवा यज्ञा विविधाश्च ते हवा विहवाः। विहवानर्हतीति विहव्यः। —तै. सं. ४, १, ७, २; अ. वे. २, ६, ४;

विहायस्

विशेषेण जहाति परित्यजतीति विहायाः संहर्तेत्यर्थः।

—तै. सं. ४, ६, २, १; का. सं. १८, २;

वीध्र

विविधमिन्धते दीप्यते अस्मिन् ग्रहनक्षत्रादीनि। —अ. वे. ४, २०, ७;

वीर

विविधमीरयन्ति शत्रूनिति वीरा भृत्याः।

—अ. वे. ३, १०, ५; ८, ५, १; १८, १, २;

वीरवित्

विविधमीर्यन्ते तत्कर्मणि प्रेष्यन्त इति वीराः.........तेषां पत्न्यादयः।

—अ. वे. ११, १, १५;

वीरुध्

(१) विरुन्धन्ति विनाशयन्ति रोगानिति वीरुधः औषधानि।

—अ. वे. २, ६, ३;

(२) विरोहन्तीति लतारूपा ओषधयः। —अ. वे. ३, ८, १;

वृक्ष

वृश्च्यत इति वृक्षः। —अ. वे. १, २, ३;

वृत्

वृणोत्यक्षैः संरुणद्धि इति प्रतिकितवः। —अ. वे. ७, ५२, ४;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

वृत्रखाद

वृत्रं खादति हिनस्तीति । —सा. वे. २, १९, १, ३, २;

वृत्रतूर्य

वृत्रस्तूर्यते हिंस्यतेऽस्मिन्निति वृत्रतूर्यं युद्धम् । —तै. सं. १, १, ५, १;

वृत्रहन्

वृत्रं शत्रुं हन्तीति वृत्रहा । —का. सं ७, २०, १;

वृष्टि

वर्षतीति वृष्टिः पर्जन्यः । —तै. सं. १, १, ९, १;

वृष्ण्य

वर्षतीति वृषा······वृष्णि भवं वृष्ण्यम् । —अ. वे. १, ३, १;

वेद

(१) इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेदः । —तैत्तिरीयसंहिताभाष्यारम्भे

(२) विदन्त्यनेन प्रत्यक्षाद्यविषयमुपायमिति वेदः । —अ. वे. १९, ७२, १;

(३) वित्तं पूर्वलब्धं धनं वेद्यमितः परं लब्धव्यं तदुभयमसुरसम्बन्धि यत्र क्वापि निक्षिप्तं तदुभयं देवा कदाचिद्वेदैनं भूमिं संमृजन्तोऽलभन्त । ततो विद्यते वित्तमनेनेति व्युत्पत्त्या वेदत्वं निष्पन्नम् । —तै. सं. १, ७, ५, ६;

वेदि

यस्माद्देवैर्लब्धव्यमसुराणां तद्वेदिरूपं वित्तं देवा अविन्दन्तालभन्त तस्मात् विद्यते लभ्यत इति व्युत्पत्त्या वेदेर्वेदिनाम संपन्नम् । —तै. सं. ६, २, ४, ४;

वेदिषद्

वेद्यां सीदन्तीति वेदिषदः । —का. सं. २, ७, १; तै. सं. १, ८, १५, २;

वेशन्ती

विशन्ति तिष्ठन्ति अस्मिन्नापः इति वेशन्तः पल्वलम् । —अ. वे. १, ३, ७;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

वेषश्रि

वेषो व्याप्तं धनं श्रयते सेवत इति वेषश्रिः। प्राप्तस्याभिवृद्धिकारीत्यर्थः।

—तै. सं. ४, ४, १, ३;

वैनंशिन

विनाशसंयुक्तेषु वसतीति वैनंशिनः। —का. सं. १०, ४, १;

वैबाध

विविधं बाधते कण्टकैरिति विबाधः खादिरः। तत्रोत्पन्नो वैबाधः।

—अ. वे. ३, ६, २;

वैश्वानर

विश्वान् नरानैहिकामुष्मिकलक्षणं तत्तत् कर्मफलं नयतीति वा विश्वैर्नरैस्तत्तद्यागादिसिद्धये नीयते प्रणीयत इति……यद्वा विश्वान् जन्तून् प्रतिगतः प्रविष्टः इति विश्वानरः। सामर्थ्यात् प्राणाख्यो वायुः……तेन जन्यमानत्वात् अयमग्निर्वैश्वानरः। विश्वे नरा यस्य पोष्यत्वेन स विश्वानरः। —अ. वे. २, १६, ४;

व्यधिषद्

विशेषेणाधिक्येन सीदतीति व्यधिषत्। —का. सं. ६, १, २;

व्यवच्छन्द

विचतिर्व्याप्तिकर्मा विवति व्याप्नोति सर्वं जगदिति व्यवोऽसौ आदित्यः।

—का. सं. १६, १;

व्याघ्र

(१) व्याजिघ्रति विशिष्टाघ्राणमात्रेण प्राणिनो हन्तीति व्याघ्रः।

—अ. वे. ४, ३, १;

(२) व्यादाय हन्तीति व्याघ्रः श्वापदविशेषः। —अ. वे. १९, ३९, ४;

व्यान

व्यानिति व्याप्य चेष्टत इति शरीरव्यापको वायुः बलहेतुर्व्यानः।

—का. सं. १, ७, ४;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

व्याम्य

विगमनेन विविधं वा आमयति पुरुषोऽनेनेति व्याम्यो पाशः।
—अ. वे. ४, १६, ८;

व्यायाम

व्याङ् पूर्वाद् यमेर्भात्रे घञ्। ···यद्वा व्यायच्छन्ति सञ्चरन्त्यस्मिन्निति।
—अ. वे. २, ४, ४;

व्युष्टि

विशेषेणोच्छति तमो विनाशयतीति। —तै. सं. ४, ३, ११, ५;

व्योमन्

विशेषेण अवतीति व्योम। —अ. वे. १७, १, ६;

व्योमसत्

व्योमन्याकाशे सूर्यरूपेण सीदतीति व्योमसत्। —तै. सं. ४, २, १, ५;

व्योषा

विविधमोषति दहतीति व्योषा। —अ. वे. ३, २५, ३;

व्रज

व्रजन्ति गच्छन्ति गावोऽवस्थातुं यस्मिन् देशे स········व्रजः।
—का. सं. १, ६, ३;

व्रजक्षित्

व्रजे क्षियन्ति निवसन्तीति व्रजक्षितः कूपस्था आपः।
—का. सं. ११, २, ३;

व्रजन

व्रजति गच्छत्यनेन इति व्रजनं कृष्णं भवति। —का. सं. १६, ७;

व्रतचारिन्

व्रतं नियमविशेषं चरन्ति अनुतिष्ठन्ति इति व्रतचारिणः।
—अ. वे. ४, १५, १३;

व्रा

व्रियन्त इति व्राः। —अ. वे. २, १, १;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

व्रातसाह

व्रातं परकीयभटानां संघातं सहन्ते अभिभवन्तीति व्रातसाहाः ।

—तै. सं. ४, ६, ६, ३;

श

शंकर

शं लौकिकं सुखं करोतीति शंकरः । —का. सं. १७, ६, ५;

शंग

शं सुखं गमयति प्रापयतीति शंगः । —तै. सं. ४, ५, ८, १;

शंगु

शं सुखं गमयति प्रापयति शंगुः । —का. सं. १७, ६, ४;

शतविचक्षण

शतं विचक्ष्यते प्राप्यत इति शतविचक्षणा । —का. सं. १३, ६;

शतवार

शतवारा मूलानि……यस्य शतवारः । यद्वा शतसंख्याकान् रोगान् निवारयतीति शतवारः……शतसंख्याकरोगवारणश्रवणाद् ओषधिविशेषः ।

—अ. वे. १९, ३६, १;

शफारुक्

शफवत् शफाः । नखा इत्यर्थः । अथवा पशुरूपधारिणां शफा अपि संभवन्ति । तैरारुजन्तीति शफारुजः । —अ. वे. ८, ३, २१;

शमी

अग्निदाहशमनहेतुर्वृक्षः शमी । —अ. वे. ६, ११, १;

शम्भु

(१) शम् भावयतीति शम्भुः । —का. सं. २०, २; तै. सं. ४, ५, ८, १;

(२) शं सुखं भवतीति……यद्वा शं सुखरूपं भवनं आविर्भवनम् ।

—का. सं. १७, ६, ५;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

शर

शृणन्ति हिंसन्तीति शरास्तृणविशेषाः। —तै. सं. २, १, ५, ७;

शरत्

शीर्यन्ते पच्यन्तेऽस्यामोषधयः इति शरदर्तुः। —अ. वे. १९, ६, १०;

शर्करा

शरैः क्रियन्ते निष्पाद्यन्त इति व्युत्पत्त्या शर्करेति नाम संपन्नम्।
--तै. सं. ४, २, ७, ४;

शर्कु

शर् शरिति कौति शब्दायत इति शर्कुः। —अ. वे. ८, ६, २;

शर्दि

छर्दिः गृहम्। ………यद्वा शर्दतिर्बलकर्मा। शर्दयति बलयतीति शर्दिः।
—अ. वे. १८, ३, १६;

शर्व

शृणाति हिनस्ति पापमिति शर्वः।
—का. सं. १७, ४, २; तै. सं. ४, ५, ५, १; अ. वे. ६, ९३, १;

शाक्वर

शक्वरः शक्तिमान् पुरुषः तस्य संबंधि शाक्वरं शक्तिस्वरूपम्।
—तै. सं. १, २, १०, २;

शाचिपूजन

पूज्यतेऽनेनेति पूजनं स्तोत्रादि। —सा. वे. २, २, २, १, २;

शारद

शरदा ऋतुना सह वर्तन्त इति शारदाः सम्वत्सराः।
—अ. वे. ४, १०, ७;

शीभ

शीभते कथ्यत इति शीभः आत्मश्लाघी। —का. सं. १७, ४, ५;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

शीर्षक्ति

शीर्षं शिरः अञ्चति गच्छति व्याप्य बाधत इति शीर्षक्तिः शिरोरोगः ।
—अ. वे. १, १२, ३;

शुक्र

शोचत इति शुक्रः दीप्तिमान् । —का. सं. १८, ७;

शुक्रपावन्

शुक्रं दीप्तं सोमं पिबन्तीति शुक्रपाः । —का. सं. ६, ७, ५;

शुचिबन्धु

बध्नन्ति शत्रूनिति बन्धूनि तेजांसि बलानि वा ।
—सा. वे. २, ८, १, १, १;

शुचिषत्

शुचौ यजने सीदतीति । —तै. सं. ४, २, १, ५;

शुद्धायु

शुद्धिमस्मदीयामिच्छन्तीति शुद्धायुवः । —तै. सं. १, ३, ८, २;

शुरुध्

शुचं रुन्धन्तीति शुरुधः । —अ. वे. २०, १२, २;

शूरवीर

शूरान् वीरयति संग्राम इति वा शूरश्चासौ वीरः । —अ. वे. ८, ५, १;

शृंगवृट्

शृणन्ति हिंसन्तीति शृङ्गाणि रश्मयः । तैर्वर्षतीति शृङ्गवृट् आदित्यः ।
—सा. वे. २, २, २, १, ३;

शोचि

शोचयन्तीति शोचयः । —अ. वे. १८ २, ६;

श्मशा

अश्नुते क्षेत्रमिति श्मशा कुल्या । —सा. वे. १, २, १२, ६;

श्रव

श्रूयत इति श्रवः शब्दः । —तै. सं. ४, ५, ६, १;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

श्रान्तसद्

तपसा कृच्छ्रचान्द्रायणादिना श्रान्ताः सन्तः सीदन्ति निवसन्ति-सुखोपभोगार्थमिति श्रान्तसदः। —अ. वे. १, ३२, २;

श्राव

श्रावयति प्रख्यापयतीति श्रावः। —का. सं. १६, २;

श्रीमन

श्रयते सेवत इति श्रीर्यजमानस्तस्मिन्ननुग्रहरूपं मनो यस्यासौ श्रीमणाः।
—का. सं. १८, ५; तै. सं. ४, ६, ३, २;

श्रुतसद्

श्रुतं श्रोत्रेन्द्रियं तत्र सीदतीति श्रुतसत् श्रोत्रमश्विनमिति श्रुत्यन्तरात्।
—तै. सं. ३, २, १०, १;

श्लोक

श्लोकः श्रुतिः। यद्वा श्लोक्यत इति श्लोकः कीर्तिः। —का. सं. १७, २;

श्वकिष्किन्

किष् किषिति शब्दं कुर्वन्तस्तान्। —अ. वे. ८, ६, ६;

श्वघ्नी

स्वमात्मानं स्वकीयं धनं च हन्ति इति कितवः स्वघ्नी।
—अ. वे. ४, १६, ५;

श्वात्रभाक्

श्वात्रमिति धननाम। आश्वतनीयं शीघ्रं प्राप्तव्यं शोभनं धनं संभजते।
—सा. वे. १, ३, ५, ५;

स

संक्रम

देहस्य सर्वावयेषु संक्रमत इति संक्रमोऽन्नम्। —का. सं. १६, २;

संगव

सङ्गवकाले सगच्छन्ते गावो दोहभूमिं यस्मिन् काले स सङ्गवः।
—सा. वे. २, १६, ४, ३, ३;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

संघात

सम्यगसुरा हन्यन्ते यत्रेति संघातो युद्धम् । —का. सं. १, ५, ५;

संज्ञानी

सम्यग् ज्ञायतेऽभ्यनुज्ञायते ययेष्ट्या संज्ञानी । —तै. सं. २, १, ११, २;

संयत्

संयच्छति एताभिरिति व्युत्पत्त्या संयन्नाम संपन्नम् ।
—तै. सं. ४, ३, ३, २;

संयानी

यानीशब्दोपेतैः मंत्रैरुपधेया इष्टका संयान्यः । ताभिर्देवा इमान् लोकान् सम्यक् प्राप्ता । ततः सम्यग् यान्ति लोकान् आभिरिति संयानीशब्दो व्युत्पन्नः । —तै. सं. ४, ४, ६, २;

संरराण

सम्यक् रान्ति ते संरराणाः । सम्यक् दातारः । —का. सं. १८, १;

संवत्

(१) संवन्यते सम्यग् भज्यते मृद्ग्रहणार्थं सेव्यत इति खननयोग्या भूमिः संवत् । —का. सं. १२, २; तै. सं. ४, १, २, १;

(२) सम्यग्वनुते देवान् यजते यस्यां क्रियायां सा क्रिया संवत् ।
—का. सं. १२, ७; तै. सं. २, ६, ११, ४; ४, १, ६, २;

संवत्सर

संवसन्त्यस्मिन्निति सम्वत्सरः । —अ. वे. ३, १०, १०; ११, ७, २०;

संवरण

संव्रियतेऽस्मिन् अग्निरिति संवरणमरणिकाष्ठमुच्यते ।
—का. सं. १६, ७;

संसद्

सम्यग् यज्ञेषु कर्मकरणार्थं सीदन्तीति संसदो होत्रकाः ।
—सा. वे. २, २, १, ४, २;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

संसर्प

सम्यक् सर्पयति बलेन प्रवर्तयति मां चयनधनप्रस्वीकरणाय (इति) संसर्पो दृष्टिः। —तै. सं. ४, ४, १, ३;

संसिक्

संसिञ्चन्ति इति। —अ. वे. ११, १०, १३;

संसृप्

सम्यक् सृप्यते प्राप्यते वीर्यमाभिरग्न्यादिभिर्देवताभिरिति संसृपो देवतास्तासां हवींष्यपि तन्नामकानि। —तै. सं. १, ८, १७, १;

संसृष्टजित्

संसृष्टास्तान् सर्वान् जयतीति। —का. सं. १८, ४;

संस्कृतत्र

संस्कृतं विशसितं त्रायते पालयतीति संस्कृतत्रो मांसपाचकः।

—अ. वे. ४, २१, ४;

संस्रव

आज्यं सम्यक् स्रवतीति व्युत्पत्त्या संस्रवः उच्यते। —का. सं. २, ४, ६;

संदृक्

सम्यगर्थान् पश्यतीति संदृक् संद्रष्टा। —अ. वे. ११, २, ५;

संहित

संधीयते सर्वमनुसंधीयतेऽनेनेति संहितः। —तै. सं. ३, ४, ७, १;

सखिवित्

स्वनिष्पादकं यजमानं वेत्तीति सखिवित्।

—का. सं. १२, १; तै. सं. ४, १, १, ३;

सत्यजित्

सत्येन याथार्थ्येन अभिचारादिदोषं जयति निवर्तयतीति सत्यजित्।

—अ. वे. ४, १७, २;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

सत्यवाक्

सत्यं वक्तीति सत्यवाक् तस्मै । —तै. सं. १, ८, १९, १;

स

सीदन्ति एषु बहवो यजमाना कर्तृत्वेनेति बहुकर्तृका सोमयागा सत्राण्युच्यन्ते । —अ. वे. ११, ६, ८;

सत्राजित्

(१) सत्राणि द्वादशाहादीनि यजति वशीकरोतीति सत्राजित् ।
—का. सं. १२, १;

(२) सत्राणि……जयति वशीकरोतीति । —तै. सं. ४, १, १, ३;

सत्रासाह

सह त्रायते स्वामिनमिति सत्रा सेना । शत्रुसेनाया अभिभवितारम् ।
—अ. वे. २०, ११, ८;

सदन/सदस्

(१) सीदन्त्यत्रेति सदः सदनं स्थानं वेदिलक्षणं कृतं संपन्नम् ।
—अ. वे. १९, ४७, १;

(२) सीदन्त्यस्मिन्निति सदनम् । —सा. वे. २, २, ३, ४, २;

सद्यस्क्री

सद्यस्तदानीमेव क्रीयते सोमोऽस्मिन्निति । —अ. वे. ११, १, १०;

सधमाद

सह माद्यन्ति हृष्यन्ति एषु इति सधमादाः ।
—अ. वे. ६, ६२, २; ७, ७७, १;

सधस्थ

(१) अद्भिः सह विद्युदादयो यत्र मेघे तिष्ठन्ति सोऽयं मेघः सधस्थः ।
—का. सं. १४, ६;

(२) खनितुं योग्या कृत्स्नाऽपि मृत्तिका सह तिष्ठति मिलित्वा वर्ततेऽत्रेति । —तै. सं. ४, १, २, २;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

सधिस्

जलेन सह धीयतेऽवस्थाप्यत इति सधिर्वर्षोपलादिः । —का. सं. १४, ६;

सध्रीची

सह अञ्चन्तीति सध्रीच्यः । —अ. वे. ६, ८८, ३;

सध्रीचीन

सह अञ्चन्तीति । —अ. वे. ३, ३०, ५;

सपत्नसाह

सपत्नान् सहन्तेऽभिभवन्तीति । —तै. सं. ५, १, १०, २;

सबाध्

धकारान्तो बाधशब्दोऽभिषवकृतमुपद्रवं ब्रूते तेनोपद्रवेण सह वर्तत इति । —तै. सं. २, २, १२, ४;

सभरा

(१) सह बिभर्तीति सभराः । —का. सं. १८, ७;

(२) सह भरेणादरेण सह वर्तत इति । —का सं. १८, ७;

समद्

(१) मात्सर्येण माद्यन्तीति समदः शत्रवः । —तै. सं. ४, ६, ६, १;

(२) समानं माद्यन्त्यत्रेति·······संग्रामः । —सा. वे. २, २०, ४, १, १;

समसनात्

समसनं समस्तमपि अत्तीति । —तै. सं. ३, ३, ८, २;

समाम्य

समानमामयति व्याधितो भवति (पुरुषोऽनेनेति) समाम्यः । ईदृशो य वरुणः । लुप्ततद्धितोऽयं निर्देशः । वारुणः पाशः । —अ. वे. ४, १६, ८;

समित्

समिध्यतेऽस्यामादित्य इति समित् प्राची ।

—तै. सं. १, ८, १३, १; ४, १, ८, १;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

समिति

संयन्ति संगच्छन्ते युद्धाय अत्रेति समितिः संग्रामः। —अ. वे. ७, १३, १;

समिधाहुति

सम्यगिध्यतेऽनयाऽऽज्याहुत्येति समिदाहुतिः। —तै. सं. १, ३, १३, १;

समीची

सम्यगञ्चतीति प्रातःकालमनुष्ठानार्थं प्रवर्तत इति व्युत्पत्तेः।
—तै. सं. ५, ५, १०, १;

समुद्र

(१) सर्वे देवा सम्यगुत्कर्षेण द्रवन्त्यत्रेति समुद्रः। —का. सं. ५, ८, ३;

(२) सम्मोदन्तेऽस्मात् यजमानाः इति वा समुद्रोऽग्निः पार्थिवः। अथवा समुद्द्रवन्ति आप अस्मादिति व्युत्पत्त्या देवो वैद्युतोऽग्निः। —का. सं. १९, १, ३; १४, ३; १६, १;

(३) समुनत्ति स्वकीयेन जलेन कृत्स्नं जगत् क्लेदयतीति समुद्रः।
—अ. वे. १, ३, ८;

समूह

प्राप्तं धनं समूहयति अभिवर्धयतीति समूहकरणसमर्थो देवः समूहः।
—अ. वे. ३, २४, ७;

सम्भार

संभ्रियन्त इति सम्भाराः। —अ. वे. ११, १०, ३;

सम्भार्या

सम्यक् भ्रियन्ते धीयन्ते पोष्यन्ते वा तृचा याभिराद्याभिर्ऋग्भिस्तास्तृचा-
·······ऋचः सम्भार्याः। —तै. सं. १, ८, २१, २;

सम्राट्

सम्यग् राजते दीप्यत इति सम्राट्। —का. सं. ३, ४, ५;

सयुक्

(१) सहायभूतो वर्तत इति। —का. सं. १२, १,

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

(२) इन्द्रेण सयुजः परमैश्वर्ययोगादाहवनीयः इन्द्रस्तेन सह युज्यन्ते युक्ता भवन्तीति सयुजः। —तै. सं. ३, ५, ३, २; ४, १, २, २;

(३) सह योजयतीति। —तै. सं. ४, ४, ५, १;

सर्ग

सृज्यन्त इति सर्गाः धाराः। —सा. वे. २, १, १, ३, १;

सर्प

सर्पति कुटिलं गच्छतीति सर्प एतत्संज्ञो यातुधानाधिपतिः। —अ. वे. २, २४, ४;

सर्पिस्

यद्यस्मात् कारणात् अग्निसम्पर्के सति पिण्डो विलीयमानोऽसर्पत् प्रसृतोऽभूत्तस्मात् सर्पिरिति नाम। —तै. सं. २, ३, १०, १;

सर्पिरासुति

सर्पिः घृतमासुतिः अवस्थानं यस्येति वा सर्पिरेव आहारत्वेन सूयते प्रक्षिप्यते यस्मिन्निति सा सर्पिरासुतिः। —का. सं. १२, ७; तै. सं. ४, १, ६, २;

सर्वराट्

सर्वेषु राजत इति। —का. सं. ५, ६, ३;

सर्वहुत्

आश्वमेधिकोऽश्वः सर्वहुतः। पुरुषस्य अश्वमेधत्वमुक्तम्। यद्वा सर्वः सर्वाङ्गः सन् पशुर्हूयते स सर्वहुत्। —अ. वे. १६, ६, १३;

सव

सूयते प्रेर्यत इति। —अ. वे. ७, ७७, ७;

सवन

सूयतेऽभिषूयत इति सवनः। —सा. वे. २, ६, ३, ४, ३;

सवृत्

समेन वर्तत इति सवृत्। —का. सं. १६, २;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

सहजा

आभूतिः अभिभवः। तया सह जायते प्रादुर्भवतीति सहजा।

—अ. वे. ४, ३१, ६;

सहदानु

सहस्य बलस्य च दातारं स एकीभूय युद्धं ददातीति सहदानुः।

—का. सं. २०, ५;

सहस्रघ्न्य

सहस्रसंख्याकान् एकयत्नेन हन्ति हिनस्तीति सहस्रघ्न्यम् यद्वा सहस्रं हन्यन्ते ताड्यन्ते अनेनेति सहस्रघ्न्यम्। —अ. वे. ११, २, १२;

सहस्रम्भर

सहस्रसंख्याकानि हवींषि पोषयतीति सहस्रम्भरः। —का. सं. १२, ३;

सहस्रसा

(१) सहस्रसंख्याकानि कर्माणि क्षीरदध्याज्यरूपहविःप्रदानेन स्यति समापयतीति। —का. सं. ३, ३, ६;

(२) सहस्रसंख्याकं धनं सनोति ददातीति सहस्रसाः।

—तै. सं. १, ५, ११, ४;

सहस्रसातमा

सहस्रसंख्याकं धनं सनोति प्रयच्छतीति सहस्रसाः। —अ. वे. ३, २८, ४;

सहस्कृत्

सहो बलं करोतीति। —का. सं. ३, ३, ६;

सांहित

अहोरात्रे संदधातीति सांहितः। —का. सं. २०, २;

सातघ्न

सातं लाभः। सातं लाभं घ्नन्तीति सातघ्नः। —अ. वे. ३, १५, ५;

साध्य

सृष्टिसाधनयोग्याः·······साधयन्तीति साध्याः। —अ. वे. १९, ६, ११;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

सान्तपना

सम्यक् तप्यन्ते शत्रव एभिरिति सांतपनाः । —तै. सं. ४, ३, ३, ४;

साह्न

अह्ना सह वर्तत इति साह्न एकाहो ज्योतिष्टोमः ।

—तै. सं. ६, २, ५, १; ६, ६, ११, ४;

साहन्त्य

सहन्तिः सोढाऽभिभविता । तत्र भवः साहन्त्यः । —अ. वे. ६, ७, २;

सिन्धु

स्यन्दति नदीशरीरं व्याप्नोतीति सिन्धुः प्राणो वायुः ।

—का. सं. १६, १;

सुकृत्

सुष्ठु कर्म करोतीति । —का. सं. ६, ६, २; तै. सं. १, ४, ४०, १;

सुकृतिन्

ये शोभनं शास्त्रविहितं पुण्यं कर्म कुर्वन्ति ते सुकृतिनः ।

—तै. सं. ४, ४, १०, ३;

सुक्षिति

क्षियन्ति निवसन्तीति क्षितयः प्रजाः ।

—सा. वे. १, २, ४, १०; २, १५, २, २, ३;

सुतपस्

सुष्ठु तपतीति । —अ. वे. १६, ४६, ७;

सुतावत्

सूयते अभिषूयत इति सोम सुतः । तद्वत् । —अ. वे. २०, ४, १;

सुदुघा

सुष्ठु दुग्धे इति सुदुघा । —अ. वे. २, ७, ५;

सुपू

सुष्ठु पुनातीति सुपूः । —का. सं. १, २, ३;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

सुभू

सुष्ठु भवति उदेतीति सुभूः । —तै. सं. १, ६, ६, १;

सुमित्रधस्

शोभनं मित्रं सोमरूपं यस्य यजमानस्य स यजमानः सुमित्रस्तं दधाति पोषयतीति सुमित्रधाः । —तै. सं. १, २, ७, १;

सुव

सौति सर्वं जगत् प्रेरयतीति सुवशब्दः प्रजापतिवाची ।
—तै. सं. ४, ३, २, २;

सुर्वाजत्

सुवः स्वर्गं जयति फलरूपेण संपादयतीति सुर्वजित् ।
—तै. सं. ४, १, १, ३;

सुवर्भानु

सुवर्भानुरित्यासुरस्य कस्यचिन्नामधेयं स्वर्गलोकगतां प्रभां नुदतीति सुवर्भानुः । —तै. सं. २, १, २, २;

सुर्वावत्

(१) यजमानाय दातव्यत्वेन स्वर्गं वेत्तीति । —तै. सं. १, ४, ६, १;

(२) स्वर्गस्थमादित्यं विन्दते लभत इति । —तै. सं. ४, ४, १२, १;

सुवर्षा

सुवः स्वर्गलोके स्यति सर्वदा तिष्ठतीति सुवर्षाः ।
—तै. सं. २, ६, २, २; ४, ४, १, १;

सुविदत्र

विद्यते लभ्यत इति विदत्रं धनम् । —ऋ. वे. १, ३१, ४;

सुशमिन्

पापं सुष्ठु शमयतीति सुशमी । —तै. सं. ४, ४, ४, ४;

सुषत्

सुखेन सीदन्ति निवसन्ति गावोऽत्रेति । —ऋ. वे. ३, १४, १; २२, ६;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

सुषदा

सुष्ठु सीदन्ति देवा अस्यामिति । —का. सं. १, ९, ५;

सुषुमत्

ओषध्यात्मना स्थितोंऽशुः सुष्ठु सूयत इति सुसोमः । तेन तद्वान् ।
—सा. वे. २, १५, २, १, १;

सुहार्त

हार्दं आनुकूल्यं करोति हार्दयति । —अ. वे. २, ७, ५;

सूक्तवाक

सूक्तं वक्तीति सूक्तवाकः । —अ. वे. ७, १०२, ६;

सूददोहस्

सूदशब्देन दोहनीयक्षीरादिरस उपलक्ष्यते । सूदं दोहन्तीति सूददोहसस्ता इष्टकाः । —तै. सं. ५, ५, ६, २;

सूपस्थ

दण्डरूपो वनस्पतिकार्यो देव सूपस्थाः । सुष्ठु उपस्थीयतेऽवष्टभ्यते मैत्रावरुणेन प्रैषकाल इति । —तै. सं. १, २, २, ३;

सूर्य

सरति गच्छतीति वा सुवति प्रेरयति तत्तद् व्यापारेषु कृत्स्नं जगदिति वा सूर्यः । यद्वा सुष्ठु ईयते प्रकाशप्रवर्षणादिव्यापारेषु जगद्विधात्रा परमेश्वरेण प्रेर्यत इति सूर्यः । —अ. वे. १, ३, ५;

सूर्याचन्द्रमस्

चन्द्रमाह्लादकरममृतं मिमीते सर्वस्य जगतो निर्मिमीत इति चन्द्रमाः ।
—अ. वे. ११, ३, २;

सूर्यामास्

मस्यते परिमीयते स्वकलावृद्धिहानिभ्यामिति माश्चन्द्रमाः । मातीति वा माश्चंद्रः । —अ. वे. २०, १६, १०;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

सूषस्

सूः सवनमुत्पत्तिः। सुवं सनोति प्रयच्छतीति सूषाः।

—ऋ. वे. १, ११, ३;

सूषणि

सुवं सनोति प्रयच्छतीति सूषणिः सुखप्रसवकारिणी देवता।

—ऋ. वे. १, ११, ३;

सृकायिन्

सृकेन वज्रेण सह यन्ति गच्छन्तीत्येवंशीलाः सृकायिनः।

—का. सं. १७, २, ५;

सृकाविन्

सृक्शब्दो वज्रवाची। तेन स्वशरीरमवन्ति रक्षन्तीति सृकाविनः।

—तै. सं. ४, ५, ३, १;

सेदि

(१) सीदन्त्यत्रेति सेदिर्भूमिः। —तै. सं. ४, २, ७, २;

(२) सादयति नाशयतीति सेदिर्निरृतिः। —ऋ. वे. २, १४, ३;

सेनजित्

सेनां जयतीति सेनजित्। —का. सं. १६, ४; १८, ७;

सेनानी

सेनां नयतीति सेनानी। —का. सं. १६, ४;

सोभ्य

सोभं गन्धर्वनगरं तत्र भवः सोभ्यः। यद्वा उभाभ्यां पुण्यपापाभ्यां सहितः सोभो मनुष्यलोकः। —का. सं. १७, ५, २; तै. सं. ४, ५, ६, १;

सोम

उमया सह वर्तत इति सोमः। —तै. सं. ४, ५, ८, १;

सोमक्रयण

सोमः क्रीयते यैर्गवादिभिस्ते सोमक्रयणाः। —तै. सं. १, २, ७, १;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

सोमधान

सोमो धीयते निधीयतेऽत्रेति सोमधानः । —अ. वे. ७, ११६, १;

सोमप/पावन्

सोमं पिबतीति सोमपा यजमानः ।

—का. सं. १३, ५; अ. वे. २, १२, ३; १८, ३, ६४;

सोमभृत्

सोमं बिभर्ति पोषयतीति सोमभृत् श्येननामकोऽन्यः ।

—तै. सं. १, २, १०, १;

सौत्रामणि

सुष्ठु त्रायत इति सुत्रामा इन्द्रः । तद् देवत्यया क्रियया......सौत्रामण्या एतन्नामकेन हविर्यज्ञेन । —अ. वे. ३, ३, २; तै. सं. ५, ६, ३, ४;

सौश्रवस

श्रूयते सर्वेरपि जनैः प्रीतिपूर्वकमिति श्रवोऽन्नं सुष्ठु श्रवः सुश्रवस्तस्य भावः सौश्रवसस्तस्मै । —तै. सं. ४, ६, ८, २;

स्तवा

यज्ञनामक कश्चिद्गन्धर्वस्तस्य च दक्षिणारूपा देवता भार्यास्ताश्च सूयन्त इति व्युत्पत्त्या स्तवा इत्युच्यन्ते । —तै. सं. ३, ४, ७, १;

स्ति

स्तीन् स्त्यायन्ति समर्धयन्ति कुलमिति स्तयः पुत्राद्याः ।

—अ. वे. २०, ३७, ११;

स्तेग

स्त्यायति संघातेन बाहुल्येन शब्दं करोति वर्षास्विति स्तेगो मण्डूकः ।

—अ. वे. १८, १, ३९;

स्तोमभाग

स्तोमा बहिष्पवनादीनि स्तोत्राणि तान् सोमान् भजन्त इति स्तोमभागाः । एतान् हि मंत्रान् उच्चार्य ब्रह्मा स्तोत्राण्यभ्यनुजानाति तस्मादेते स्तोमभागा इत्युच्यन्ते । —तै. सं. ३, ५, २, १;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

स्त्रीषंसाद

स्त्रियः सम्यक् सीदन्ति विश्रम्भेणोपविशन्ति यस्यां सभायामिति स्त्रीसभाविशेषः स्त्रीषंसादः । —तै. सं. २, ५, १, ५;

स्थामन्

तिष्ठत्यस्मिन् गृहं सर्वमिति स्थामा स्थूणा ।

—अ. वे. ६, ७७, १; ७, १०१, १;

स्नीहिति

स्निह्यन्ते प्रजा आभिरिति । —सा. वे. २, २, १, १, २;

स्पश्

स्पशयन्ति बध्नन्तीति स्पशः । —का. सं. १४, १;

स्पृध्

स्पर्धन्त इति स्पृधः । —अ. वे. २०, २६, ३;

स्यू

सीव्यतेऽनया रज्वेति स्यूः । —तै. सं. १, २, १३, ३;

स्व

सौति सर्वं जगत् प्रेरयतीति स्वशब्दः प्रजापतिवाची । —का. सं. १४, ७;

स्वगाकार

स्वमात्मानमागच्छन्तीति स्वगाः । ताः करोति कारयतीति च स्वगाकारः । —का. सं. १६, ७;

स्वज

स्वस्मिन् जायत इति स्वजः स्वाधीनबलः सर्पः ।

—तै. सं. ५, ५, १०, २;

स्वधा

(१) स्वं लोकं दधाति पुष्णातीति स्वधा । —सा. वे. २, ४, २, ३, २;

(२) स्वेभ्यो धीयत स्वस्मिन् वा धीयत इति स्वधा ।

—अ. वे. २, २६, ७; १८, २, २०;

T　　CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

स्वयम्भू

स्वयमात्मना भवतीति स्वयम्भूः। —अ. वे. १९, ५३, १०;

स्वराट्

स्वयमेव राजत इति। —का. सं. १४, २; तै. सं. १, ३, २, १;

स्वर्क

सुष्ठु अर्च्यते देव अनेनेति स्वर्कम्। —अ. वे. २०, २, १;

स्वर्ग

स्वर्गच्छतीति स्वर्गः। —अ. वे. १९, ३, ३;

स्वर्जित्

स्वः स्वर्गं जयति फलत्वेन संपादयतीति स्वर्जित्। —का. सं. १२, १;

स्वर्वित्

(१) स्वर्गं वेत्तीति स्वर्गवित् —का. सं. ७, ६, १;

(२) अप्सु वडवानलरूपेण स्वर्गं विन्दते लभत इति।
—का. सं. १८, १; अ. वे. २, १, १;

स्वसर

स्वयं सरन्तीति वा स्वः आदित्यः स एनानि सारयतीति वा स्वसराण्यहानि। —अ. वे. २०, ९, १;

स्वसिक्

स्वमात्मीयं यजमानं क्षेत्रं सिञ्चन्तीति स्वसिचः।
—का. सं. ११, ६; तै. सं. १, ८, १४, २;

स्वसृ

सुष्ठु कर्मसु प्रेर्यन्त ऋत्विग्भिरिति। —सा. वे. २, ५, २, २, १;

स्वस्ति

सु अस्तीति स्वस्तिः। —अ. वे. ८, १, २; २०, ३७, ११;

स्वापि

आप्नोतीति आपिः। सुशोभनमाप्नोतीति। —का. सं. १०, ४, १;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

स्वार्थेत्

स्वार्थं यन्ति गच्छन्तीति स्वार्थेतस्तेषाम् । —तै. सं. ६, २, ४, १;

स्विष्टकृत्

सुष्ठु इष्टं करोतीति स्विष्टकृत् । —का. सं. २, २, ५;

स्वौपश

उपनतं कुरुते यैरवयवविशेषैस्ते सर्वेऽपि उपशाः । तेषां समूहः औपशः ।

—का. सं. १२, ५;

ह

हंस

हन्ति पृथिवीमिति हंसो रथः । —तै. सं. १, ८, ५, २; ४, २, १, ५;

हर

हरतीति हरः संहरणसामर्थ्यः । —अ. वे. २, १६, २;

हराशया

हिरण्ये शेत इति हराशया । —का. सं. १८, ५; अ. वे. १६, ६५, १;

हरिकेश

दारिद्र्यं हरतीति हरिर्हिरण्यं हिरण्यवर्णाः केशस्थानीया शिखा यस्यासौ हरिकेशोऽग्निः । —तै. सं. ४, ६, ३, ३;

हव

हूयतेऽस्मिन्निति हवो यज्ञः । —तै. सं. ४, ७, १४, ३;

हविरद्

हवींषि चरुपुरोडाशादीनि अदन्ति भक्षयन्तीति हविरदः ।

—अ. वे. १८, ३, ४८;

हविर्धान

हविर्धीयतेऽत्रेति हविर्धानं भूलोकः । —अ. वे. ७, ११४, ३;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

हविर्धानी

हवींषि सोमग्रहरूपाणि धीयन्त आसाद्यन्ते यस्मिन् मण्डपे तदिह हविर्धानम् । तदस्यास्तीति हविर्धानी सोमयाजी । —तै. सं. २, ५, ६, ३;

हविष्पा

हविः सोमरसं पिबन्तीति हविष्पाः । —अ. वे. १८, ३, ४८;

हव्यदाति

हव्यानि हवींषि दीयन्तेऽस्यामिति हव्यदातिः । —अ. वे. ६, १२५, ३;

हव्यवाट्

हव्यं वहतीति हव्यवाट् ।

—का. सं. १४, १; तै. सं. ३, ४, ११, १; ४, १, ११, ४;

हव्यवाह

हव्यं दैवं वहतीति हव्यवाहः । अत्र हविषः अग्निदेवत्यत्वात् हव्यमित्युक्तम् । तद् वहतीति हव्यवाहः । —अ. वे. १८, ४, १;

हव्या

सर्वैराहूयत इति हव्या । —का. सं. ९, ६, २;

हस्ताग्राभ्

हस्तं गृह्णातीति हस्तग्राभः । पाणिग्रहणकर्ता । —अ. वे. १८, ३, २;

हायन

जहाति जिहते वा भावान् इति हायनाः । —अ. वे. ३, १०, ९;

हारियोजन

(१) हारी इन्द्राश्वौ तौ येन प्रयुज्येत इति हारियोजनः इन्द्रः ।

—का. सं. ८, ७, १;

(२) हारितमश्वं युनक्ति इति हारियोजन इन्द्रः तस्य सम्बन्धि हारियोजनः । इन्द्रदेवताक इत्यर्थः । —तै. सं. १, ४, २८, १;

हिरण्यवर्तनि

वर्ततेऽनेनेति व्युत्पत्त्या वर्तनिशब्देन रथ उच्यते ।

—सा. वे. २, १९, २, ४, २;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

हृत्

हेऽग्ने हृदिति यत्ते परमुत्कृष्टं नामानिष्टं पापं हरतीति हृत् ।
—तै. सं. ४, ४, ७, १;

हृद्द्योत

हृदयं द्योतयति दीपयति संतापयतीति हृद्द्योतः हृद्रोगः ।
—अ. वे. १, २२, १;

हेति

हन्यतेऽनयेति हेतिरायुधम् । —तै. सं. ४, ५, १०, ४; अ. वे. १, १३, ३;

ह्वार

ह्वर्यते कौटिल्येन प्राप्यत इति ह्वारः । —अ. वे. ४, १, २;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

सायणीयनिरुक्तिकोशः

(सायणीयवेदभाष्योपलब्धनिर्वचनसंग्रहः)

ऋक्संहितेयद्वितीयभागः

अ

अकामकर्शन

कामान् कर्शयति नाशयतीति कामकर्शनः। न कामकर्शनोऽकामकर्शनः।
—ऋ. १, ५३, २;

अक्तु

(१) अज्यते सिच्यते नीहारेण जगदस्यामिति (रात्रिः)।
—ऋ. ३, ७, ६;

(२) यद्यप्यक्तुरिति रात्रेर्नाम तथाप्यत्राज्यन्ते व्यज्यते रूपादीन्यस्मिन्नित्यह्नो नाम।
—ऋ. ७, ११, ३;

अक्षेत्रवित्

क्षीयते गम्यतेऽनेनेति क्षेत्रं पन्थाः। पन्थानमजानन् पुरुषः।
—ऋ. १०, ३२, ७;

अगोरुध

गाः स्तुती रुणध्दीति गोरुधः। न गोरुधोऽगोरुधः। —ऋ. ८, २४, २०;

अग्नि

(१) अग्निशब्दो हि अकारगकारनिशब्दानपेक्षमाणः एतिधातोरुत्पन्नात् अयनशब्दात् अकारमादत्ते। अनक्तिधातुगतस्य ककारस्य

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

गकारादेशं कृत्वा तमादत्ते। यद्वा। दहतिधातुजन्यात् दग्धशब्दात् गकारमादत्ते। नीः इति नयति धातुः। स च ह्रस्वो भूत्वा परो भवति। ततो धातुत्रयं मिलित्वा अग्निशब्दो भवति। —ऋ. १, १, १;

(२) अङ्गति स्वर्गं गच्छति हविर्नेतुमित्यग्निः। —द्र. १, १, १;

अग्निजिह्व

अग्निना हवींषि लिहन्त्यास्वादयन्तीति तन्मुखाः। —ऋ. १०, ६५, ७;

अङ्गिरस्

अङ्गन्ति गच्छन्तीति अङ्गिरसो गन्तारः।

—ऋ. १, १००, ४; द्र. ४, ३, १५; ८, ८४, ४;

अघशंसहन्

अघान् शंसन्तीत्यघशंसा। तेषां हन्ता। —ऋ. ६, २६, ६;

अज

(१) अजति गच्छतीत्यजः सूर्यः। यद्वा। न जायते इत्यजः।

—ऋ. १, ६७, ५-६;

(२) न जायते इत्यजः। —ऋ. २, ३१, ६;

अज्मन्

अजन्ति क्षिपन्त्यस्मिन्बाणानिति। —ऋ. १, ११२, १७;

अज्रि

अजन्ति गच्छन्तीति अज्रयो जनाः। —ऋ. १०, ६६, ६;

अञ्जस्प

अञ्जसा पान्ति रक्षन्तीत्यञ्जस्पाः। —ऋ. १०, ९४, १३;

अञ्जि

अभिव्यज्यते प्रकाश्यते अनेन इत्यञ्जि आभरणम्। —ऋ. ८, २९, १;

अतिथि

यजमानानां गृहान् प्रति तिथिष्वभ्येतीति अतिथिः। —ऋ. ५, १८, १;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अतिथिग्व

पूज्यातिथीन् गच्छतीति अतिथिग्वः। —ऋ. ७, १९, ८;

अत्यवि

अत्राविशब्देन तल्लोमान्युच्यन्ते। अविलोमभिर्निष्पादितं दशापवित्रमित्यर्थः। तदतिक्रम्य गच्छतीत्यविः। —ऋ. ९, १३, १;

अत्र

अदतस्त्रायन्ते इति अत्राः। —ऋ. १, ३६, १४;

अत्रि

अत्ति तृणमित्यत्रिः पशुः। —ऋ. ५, ७, ८;

अदुर्मङ्गली

या मङ्गलाचारान् दूषयति सा दुर्मङ्गली। ततोऽन्या अदुर्मङ्गली।
—ऋ. १०, ८५, ४३;

अद्मसत्

(१) अद्यते इति अद्म अन्नम्। तस्य पाकाय गृहे सीदतीति अद्मसत्।
—ऋ. १, १२४, ४;

(२) अद्मन्यन्ने हवींषि सीदन्तीति अद्मसद् ऋत्विजः।
—ऋ. ४, ८३, ७;

अद्रि

(१) अत्ति भक्षयति वैरिणमिति अद्रिर्वज्रः। —ऋ. १, ५१, ३;

(२) आदृणात्यनेनेति अद्रिर्वज्रः। —ऋ. १, १२१, १०; ६, ४५, ९;

(३) आदृणाति शत्रूनिति अद्रिरिन्द्रः। —ऋ. ४, २१, ६;

(४) अद्यतेऽस्मिन् पटलादिकमिति। —ऋ. १, ६२, ४;

(५) अदन्ति पशवस्तृणादिकमत्र इति अद्रिः। —ऋ. १, ७, ३;

(६) आद्रियते सर्वैरित्यद्रिः स्तोता। —ऋ. ३, ५८, ३;

अद्रिवन्

अत्ति भक्षयति शत्रूनिति अद्रिर्वज्रः। तद्वन्। —ऋ. ३, ३७, ११;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अधराचीन

अधः प्रदेशमञ्चति गच्छतीत्यधराचीनम् । —ऋ. २, १७, ५;

अध्वर

न विद्यते ध्वरोऽस्येति । —ऋ. १, १, ४;

अध्वरश्री

अध्वरं श्रयते इति अध्वरश्रीः । —ऋ. १, ४४, ३; द्र. १, ४७, ८;

अननुद

अनु पश्चात् द्यति खण्डयतीति अनुदः । —ऋ. १, ५३, ८;

अनर्विट्

अनसा विशति प्राप्नोतीति अनर्विट् । यद्वा । अरं गन्तव्यं प्रति विशति प्राप्नोतीति अर्विट् । न अर्विट् अनर्विट् । —ऋ. १, १२१, ७;

अनानुद

अनु पश्चाद्ददातीत्यनुदः । ………स नास्ति यस्य स तथोक्तः ।
—ऋ. २, २१, ४;

अनामृण

मृणन्ति हिंसन्तीति मृणाः । न सन्ति अमृणा यस्य । —ऋ. १, ३३, १;

अनूक्य

अनूच्यते समवेयत इत्यस्थ्नः सन्धिरनूक्यः । —ऋ. १०, १६३, २;

अनृक्षर

ऋषन्ति अन्तर्गच्छन्ति इति ऋक्षराः कण्टकाः । ………न विद्यन्ते ऋक्षरा अस्मिन्निति । —ऋ. १, ४१, ४;

अनृक्षरा

गच्छति अन्तः इति ऋक्षरः कण्टकः । ………नञा बहुब्रीहिः ।
—ऋ. १, २२, १५;

अन्तरिक्ष

(१) अन्तरा क्षान्तं भवति जगदित्यन्तरिक्षम् । —ऋ. ४, ५३, ५;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

(२) द्यावापृथिव्योरन्तरा मध्ये क्षियन्ति निवसन्तीत्यन्तरिक्षाणि ।
—ऋ. १०, ६५, ४;

अन्तरिक्षप्रा

अन्तरिक्षं द्युलोकं स्वतेजसा प्राति पूरयतीति अन्तरिक्षप्राः ।
—ऋ. १, ५१, २;

अन्तर्वा

अन्तर्वान्ति गच्छन्तीति अन्तर्वाः पुत्रपश्वादयः । —ऋ. १, ४०, ७;

अन्धस्

अद्यते इति अन्धः । —ऋ. १, ५२, २; द्र. ३, ३५, २;

अपत्यसाच्

अपत्यैः सह सचते संगच्छते इति अपत्यसाच् । —ऋ. १, ११७, २३;

अपिधान

अपिधीयते आच्छाद्यते एभिरिति अपिधानानि । —ऋ. १, ५१, ४;

अप्रजाः

प्रजायन्ते इति प्रजाः। ·······न प्रजाः अप्रजाः । —ऋ. १, २१, ५;

अप्रतिष्कुत

प्रतिकूलं कूयते शब्द्यते इति प्रतिष्कुतः । नञ्समासे······ ।
—ऋ. १, ८४, ७;

अप्सुक्षित्

अप्सु अन्तरिक्षे क्षियन्ति निवसन्तीति अप्सुक्षितः ।
—ऋ. १, १४०, ११;

अभिभूति

अभिभूयतेऽनेनेति अभिभूतिः । —ऋ. १, ५२, ७; द्र. १, ११८, ९;

अभिमाति

अभिमन्यत इति अभिमातिः शत्रुः । —ऋ. ८, ३, २;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अभिमातिषाह्

अभितो हिंसन्तीत्यभिमातयः शत्रवः। तेषामभिभविता।

—ऋ. १०, ८३, ४;

अभिशस्ति

अभिशस्यते हिंस्यतेऽनयेत्यभिशस्तिः। —ऋ. १, ७१, १०;

अभिशस्तिपावन्

अभिशस्तेर्हिंसायाः। ……अभिशस्तेः पातीति अभिशस्तिपावा।

—ऋ. १, ७६, ३;

अभिश्राव

आभिमुख्येन श्रूयत इत्यभिश्राव आह्वानम्। —ऋ. १०, १२, १;

अभिष्टि

आभिमुख्येनेष्यन्ते इति अभिष्टयः फलानि। — ऋ. १, ४७, ५;

अभीवर्त

अभिगच्छत्यनेनेति अभीवर्तः। —ऋ. १०, १७४, १;

अभ्व

आसमन्ताद् भवन्ति सद्भावं प्राप्नुवन्तीति अभ्वा महान्तः।

—ऋ. १, ६३, १;

अभोग्घन

भोजयन्तीति भोजः। न भोजः अभोजः। तेषां हन्तारः।

—ऋ. १, ६४, ३;

अभ्रिय

न भ्राजन्तेऽपो बिभ्रतीति वाभ्राणि मेघाः। तेषां संघोऽभ्रियः।

—ऋ. १०, ६६, ८;

अम

अमति रुजति शत्रूननेनेत्यमो बलम्। —ऋ. ८, १२, २४;

अमत्र

अमा सहादन्त्यत्र होत्रादय इत्यमत्राणि चमसाः। —ऋ. २, १४, १;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अमन्यमान

मन्यन्ते जानन्तीति मन्यमानाः । —ऋ. १, ३३, ९;

अमवन्तः

अमति शत्रून् रुजतीति अमो बलम् । तदेषामस्ति इति अमवन्तः ।

—ऋ. १, ३६, २०;

अमीवहा

'अम रोगे' इत्येतस्मात् वन्प्रत्ययेन अमीवशब्दः निपातितः । तं हन्तीति । —ऋ. १, १८, १;

अमृध

मर्धति उदकेन उनत्तीति मृध्रः·········नञ् समासः । —ऋ. १, ३७, ११;

अय

अयन्ति कर्मकरणार्थं गच्छन्तीत्यया ऋत्विजः । —ऋ. १०, ११६, ९;

अयोदंष्ट्रा

दशतीति दंष्ट्रा चक्रधारा । अयोमयीभिः चक्रधाराभिर्युक्तान् ।

—ऋ. १, ८८, ५;

अरंकृत्

अलंकुर्वन्तीत्यरंकृतः । —ऋ. १, १४, ५;

अरणी

आभ्याम् गच्छत्यग्निरिति अरणी । —ऋ. ५, ९, ३;

अरन्धनाय

रन्धनं वशीकरणं करोति रन्धनयति । —ऋ. १, ५३, १०;

अररिन्द

ररिर्दाता । नास्त्यन्यो ररिरस्य पिपासोपशमनस्य तादृशं पिपासोपशमनं ददतीत्यररिन्दानि । यद्वा । अररिः इतश्चेतश्च गमनम् । ·········तद्ददतीत्यररिन्दानि उदकानि । यद्वा । ररिर्दानम् । न विद्यते तादृशं दानमितरभूतेषु तदररिः । तद्ददतीत्यररिन्दानि । —ऋ. १, १३९, १०;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अरि

(१) इर्यति गच्छति अनुष्ठेयं कर्म प्राप्नोति इति अरिर्यजमानः। —ऋ. १, ६, १०;

(२) इरयति स्तुतीः प्रेरयतीत्यरिः स्तोता। —ऋ. ७, ६०, ११;

अरुणप्सव

प्सान्ति भक्षयन्ति स्तनं पिबन्तीति प्सवो वत्साः। अरुणाः प्सवो यासाम्। —ऋ. १, ४९, १;

अर्क

(१) अर्चन्त्येभिरिति अर्काः मंत्राः। —ऋ. १, १०, १;

(२) ऋच्यते स्तूयतेऽनेनेति अर्को मंत्रः। —ऋ. १, ६१, ५;

अर्कसाति

अर्कोऽन्नं प्राप्यतेऽस्मिन्नित्यर्कसातिर्युद्धम्। —ऋ. ६, २०, ४;

अर्किन्

अर्काः स्तुतिसाधनभूता मंत्रा एषां सन्तीति अर्किणः। —ऋ. १, ७, १;

अर्ण

(१) अर्त्ति इत्यर्णः। —ऋ. १, ३, १२;

(२) अर्यते प्रार्थ्यते तत्पिपासुभिरित्यर्णः। —ऋ. ३, २२, ३;

अर्थ

अर्यते प्राप्यत इत्यर्थः प्रयोजनम्। —ऋ. ३, ५३, ५; द्र. ३, ६१, ३;

अर्बुद

अम्बूनि ददातीत्यर्बुदो मेघः। —ऋ. २, ११, २०;

अर्भग

अर्भमल्पं गायति शब्दयतीत्यर्भगः। —ऋ. १, ११६, १;

अर्यमन्

(१) अर्यान् मिमीते इत्यर्यमा। —ऋ. १, ३६, ४;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

(२) अरीन् मन्देहादीनसुरान् यच्छति नियच्छतीति अर्यमा सूर्यः ।
—ऋ. १, ८६, ३;

(३) ऋच्छति सर्वदा गच्छतीति अर्यमा सूर्यः । —ऋ. ३, ५४, १८;

(४) अर्तेरिदं रूपम् । ·······अथवा ईरणात् मननाच्च शास्तीत्यर्यमा गुरुः । —ऋ. ५, ८५, ७;

अर्वन्

अर्वति गच्छतीति अर्वा । —ऋ. १, ८, २;

अर्हरिष्वणि

गच्छन्तो हरन्तीति अर्हरयः शत्रवः । तेषां व्यथोत्पादनेन स्तनयिता इंद्रः । —ऋ. १, ५६, ४;

अलातृण

बहूदकतया अलमत्यर्थमातृद्यते हिंस्यत इत्यलातृणः ।
—ऋ. ३, ३०, १०;

अव

अवति गच्छतीति अवस्तरङ्गजालम् । —ऋ. ८, १६, २;

अवस्यव

अवन्तीत्यवा देवाः । तानतिशयेनेच्छन्ति । —ऋ. १, १४, ५;

अवात

वान्ति प्रातिकूल्येन गच्छन्तीति वाताः । तद्रहिताः । —ऋ. १, ५२, ४;

अवीरहा

वीर्याज्जायन्ते इति वीराः पुत्राः । तेषामहन्ता । —ऋ. १, ९१, १९;

अव्यती

सपत्नीभिः सह पर्यायेण पतिमागच्छति सा व्यती । न तादृशी अव्यती ।
—ऋ. १०, ९५, ३;

अव्यनत्

विविधमनिति श्वसितीति व्यनत् प्राणवज्जङ्गमं तद्विलक्षणमव्यनत् स्थावरम् । —ऋ १०, १२०, ३;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अशस

शंसन्ति स्तुवन्तीति शसः स्तोतारः। ते न भवन्तीत्यशसो नृशंसाः।

—ऋ. ४, ४, १५;

अश्न

अश्नाति भक्षयति प्राणिजातमिति। यद्वा अश्नुते स्वतेजसा सर्वं व्याप्नोतीति अश्नः कश्चिदसुरः। —ऋ. २, १४, ५; द्र. २, २०, ६;

अश्मन्

अश्नुते व्याप्नोत्यन्तरिक्षमित्यश्मा मेघः। —ऋ. २, १२, ३;

अश्व

अश्नुतेऽध्वानमित्यश्वः। —ऋ. १, २९, १;

अश्वमिष्टि

आशु क्रियमाणं कर्माश्वम्। तदिच्छतीत्यश्वमिष्टिः।

—ऋ. २, ६, २;

अश्वराधस्

अश्नुते व्याप्नोत्यध्वानमित्यश्वः। राध्नुवन्ति साधयन्त्यनेन धर्मादीनि इति राधो धनम्। —ऋ. ५, १०, ४;

अश्वाजनी

अश्वा व्यापनशीला मेघाः। तानजति गच्छतीत्यश्वाजनी विद्युत्।

—ऋ. ५, ६२, ७;

असन

इषवोऽस्यन्तेऽस्मिन्निति असनः संग्रामः। —ऋ. १, ११२, २१;

असुनीति

असुः प्रज्ञा। तया नीयत इत्यसुनीतिः स्तुतिः। —ऋ. १०, १२, ४;

असुर

अस्यति शत्रूनिति……यद्वा असून् प्राणान् राति ददातीत्यसुरः।

—ऋ. १, ३५, ७; ५४, ३;

द्र. ३, ३८, ४; ५५, १; ५६, ८; ८, २०, १७; १०, १३२, ४;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

असुर्य

असुमुदकं ददातीति असुरो मेघः । तत्र भवं मेघान्तर्वर्तमानमुदकम् ।

—ऋ. २, २७, ४;

अस्त

अस्यतेऽस्मिन् सर्वमित्यस्तं गृहम् ।

—ऋ. १, ६६, ९-१०; द्र. १, ११६, ५; ३, ५३, ४; ८, ३, २३;

अस्मध्रुक्

अस्मभ्यं द्रुह्यति तम् । —ऋ. १, १७६, ३;

अह

आहरति पुरुषोऽस्मिन् कर्माणीति । —ऋ. ७, ६, १;

अहर्दृक्

अहःशब्देन तदुत्पादक आदित्योऽभिधेयो भवति । तं पश्यन्तीत्यहर्दृशः ।

—ऋ. ८, ६६, १०;

अहि

आगत्य हन्तीति अहिः । —ऋ. ९, ८८, ४;

अहिगोपा

गोपायतीति गोपाः·······अहिर्गोपा यासाम् । —ऋ. १, ३२, ११;

अह्रय

जिह्रेतीति ह्रयः । न ह्रयः अह्रयः । —ऋ. १, ७४, ८;

आ

आकर

आकीर्यते युद्धार्थं धनमत्रेत्याकरो युद्धम् । —ऋ. ३, ५१, ३;

आकेनिपास्

आकेऽन्तिके निपतन्तीत्याकेनिपा रश्मयः । —ऋ. ४, ४५, ६;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

आच्छद्विधान

आच्छादयन्ति विधानानि येषां विद्यन्ते त आच्छद्विधानाः ।

—ऋ. १०, ८५, ४;

आजि

(१) अजन्ति गच्छन्त्यस्मिन्नित्याजिर्युद्धम् ।

—ऋ. ३, ३२, ६; द्र. ८, ६६, १४;

(२) अजन्ति गच्छन्ति ऋत्विजोऽत्रेत्याजिर्यज्ञः ।

—ऋ. ६, ६६, ८; ६१, १;

आता

आभिमुख्येन गम्यन्ते प्राणिभिः तत्कार्यं प्रति इत्याताः दिशः ।

—ऋ. ३, ४३, ६;

आदार

आदारयतीति आदारः सोमः । —ऋ. १, ४६, ५;

आदिक्

आदिशति नयति सर्वत्रानयेत्यादिग्बलम् । —ऋ. ८, ९३, ११;

आधि

(१) आधीयन्त आभरणान्यत्रेत्याधिः शरीरम् । —ऋ. १०, १०६, ३;

(२) आधीयते मनसि स्थाप्यते इति आधिः । —ऋ. १, १०५, ७;

आध्र

आधार्यतेऽसाविति आध्रो दुर्बलः । —ऋ. १०, ११७, २;

आन

अन्यते अनेनेति आनं घ्राणम् । —ऋ. १, ५२, १५;

आनुषक् (बर्हि)

आसमन्तात् अनुषजति इति आनुषक् । —ऋ. १, १३, ५; ३, ११, १;

आप्

आप्नोति सर्वं जगत् इत्यापः अन्तरिक्षम् । —ऋ. ३, ५६, ७;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

आभू

आभवन्तीत्याभुवः ऋत्विजः। —ऋ. १, ६४, ६; ९, ६५, २७;

आभ्व

आभवतीति आभ्वः शत्रुः। ऋ. १, ३९, ८;

आयुध

आयुध्यति संप्रहरति शत्रूननेनेत्यायुधं पिनाकः। —ऋ. ८, २९ ५;

आरम्भण

आरभ्यतेऽनेनेत्यारम्भणमुपादानकारणम्। ऋ. १०, ८१, २;

आर्तना

आर्तान् करोत्यार्तयति। आर्तयन्तीत्यार्तनाः पृतनाः।

—ऋ. १, १२७, ६;

आवृत

आव्रियते इति आवृतः। —ऋ. १, ५१, २;

आशुशुक्षणि

आशु शुचं शोकं सनोति शत्रुभ्यो दाहादिना इत्याशुशुक्षणिः।

—ऋ. २, १, १;

आशुहेमन्

आशु शीघ्रं हिन्वन्ति गच्छन्तीति आशुहेमानः। —ऋ. १, ११६, २;

आश्रुत्कर्ण (इंद्र)

आसमन्तात् श्रुणुत इति आश्रुत्। —ऋ. १, १०, ९;

आष्ट्री

अश्नन्त्यस्मिन्निति आष्ट्री पचनशाला। —ऋ. १०, १६५, ३;

आस्थान

आस्थीयते अस्मिन् इति आस्थानो भूप्रदेशः। —ऋ. १, ११६, ५;

आस्य

आस्यते क्षिप्यतेऽस्मिन्निति आस्यम्। —ऋ. १, ३८, १४;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

आहव

आहूयतेऽत्रेति आहवो युद्धम् । —ऋ. २, २३, ११;

आहाव

आहूयन्तेऽस्मिन्नाहुतयः इत्याहावः । —ऋ. ६, ७, २;

आहावा

आहूयन्ते पानार्थं गावोऽत्रेत्याहावा निपानानि । अत्रौचित्यादग्निचयन प्रदेशकर्षणार्थगोपानसाधनद्रुममयपानपात्राण्युच्यन्ते । —ऋ. १०, १०१, ५;

आहूत

आहूयतेऽस्मिन्निति आहूतः । —ऋ. १, ४४, ४;

इ

इन्दु

उन्दन्ति पात्राणीति । —ऋ. १, १४, ४;

इन्द्र

(१) इरां हविर्लक्षणान्नं द्रावयतीतीन्द्रो यजमानः । —ऋ. १, १५६, ५;

(२) इंदौ स्रवति सोमरसे रमते क्रीडतीति इंद्रः । यद्वा इदं सर्वं जगत् साक्षाद्दर्शयति । —ऋ. ३, ४०, १;

इष

(१) इष्यन्ति गच्छन्तीति इषो रश्मयः । —ऋ. १, ३६, ११;

(२) इष्यते सर्वैः प्राणिभिरिति इषमन्नम् । —ऋ १, १२०, ५;

इषि

इष्यत इतीषिः पुत्रादिः । —ऋ. ६, ५२, १५;

इषु

इष्यति गच्छतीति इषुः । —ऋ. १, ३६, १०;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

इषुधि

इषव एषु धीयन्ते इति इषुधयः ।

—ऋ. १, ३३, २; द्र. १, १२२, १; १०, ९५, १;

ई

ईध्म

इध्यतेऽनेनाग्निरितीध्मः काष्ठविशेषः । —ऋ. ३, १८, ३;

ईळा

ईड्यन्ते स्तूयन्तेऽस्यां यजमानैर्देवा इतीळा भूमिः । —ऋ. ३, २७, १०;

ईशानकृत्

स्तोतॄन् ईशानान् समर्थान् करोतीति ईशानकृत् । —ऋ. ६, १८, ६;

उ

उग्र

उद्गच्छतीति उग्रः । —ऋ. ३, २६, ५;

उत्तानपद्

उत्तानमूर्ध्वतानं पद्यन्त इत्युत्तानपदो वृक्षाः । —ऋ. १०, ७२, ३;

उत्स

(१) उत्सवन्त्यस्माद् आप इत्युत्सो मेघः । —ऋ. १, ६४, ६;

(२) उनत्तीति उत्सः । —ऋ. ३, २६, ९;

(३) उत्सरन्त्यस्मात् कामा इत्युत्सः सोमः । —ऋ. ९, ८९, ६;

उत्सधि

उत्सो जलप्रवाहोऽस्मिन् धीयते इत्युत्सधिः कूपः । —ऋ. १, ८८, ४;

उदमेघ

उदकैर्मिह्यते सिच्यते इति उदमेघः समुद्रः । —ऋ. १, ११६, ३;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

उदवाह (मरुत्)

उदकानि वहतीति उदवाहः । —ऋ. १, ३८, ६;

उपजिह्विका

उपजिघ्रतीत्युपजिह्विका । —ऋ. ८, १०२, २१;

उपम

उपमीयन्ते एभिरित्युपमाः । —ऋ. १, ३३, २; ६१, ३; द्र. ८, २६, ६;

उपमाति

उपास्मत्समीपे माति नो धनमित्युपमातिः । —ऋ. ८, ६०, ११;

उपमात्

उपमीयते प्रक्षिप्यते इति उपमात् स्थूणा । —ऋ. ६, ६७, ६;

उपमित्

उप समीपे मीयते इत्युपमिदुदकम् । —ऋ. ४, ५, १;

उपर

(१) उपरमन्ते एष्वग्नयः इत्युपरा धिष्ण्या यजमानगृहा वा ।
—ऋ. १, १२८, ३;

(२) उपरमन्तेऽस्मिन् उपरताः प्राणिनः अत्रेति वा उपरः संवत्सरः तस्मिन् । —ऋ. १, १६४, १२;

उपरताति

उपरै उपलैः पाषाणसदृशैरायुधैः तायते विस्तार्यंत इति उपरतातिः युद्धम् । —ऋ. ७, ४८, ३;

उपरा

उप देवयजनसमीपे रमन्ते इत्युपराः । —ऋ. ४, ३७, ३;

उपलप्रक्षिणी

उपलेषु वालुकासु प्रक्षिणोति यवान् हिनस्ति भृज्जतीति । यद्वा । दृषदादिषूपलेषु भृष्टान् यवान् हिनस्ति चूर्णयतीति । —ऋ. ९, ११२, ३;

उपशाक

उपशक्तं कुर्वन्तीति उपशाकाः । —ऋ. १, ३३, ४;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

उपश्रुत्

श्रूयत इति श्रुत् स्तुतिः । उपगता श्रुद्यस्मिन् तस्मिन् यज्ञे ।
—ऋ. ८, ८, ५;

उपस्थ

उपतिष्ठन्त्यापोऽत्र इत्युपस्थः । —ऋ. १, ९५, ४;

उपस्पृक्

त्वामुपगम्य स्पृशन्तीत्युपस्पृशः स्तुतयः । —ऋ. १०, २२, १३;

उपह्वर

उपह्वरन्ति गच्छन्त्यस्मिन् नद्य इत्युपह्वरो भूप्रदेशः ।
—ऋ. १, ६२, ६; ८७, २;

उपारण

ब्राह्मणा उपेत्य यस्मिन् देशे न रमन्ते स उपारणः । —ऋ. ८, ३२, २१;

उरुक्रम

उरु विस्तीर्णं क्रामति पादौ विक्षिपतीति उरुक्रमः । —ऋ. १, ९०, ९;

उरुव्यचस्

उरु विचति व्याप्नोतीति उरुव्यचाः । —ऋ. १, ४, ८;

उरूची

(१) उरून् बहून् यजमानान् गच्छन्ती । —ऋ. १, २, ३;

(२) उरु प्रभूतमग्निहोत्रादिकर्म अञ्चति हविः प्रदातुं प्राप्नोतीत्युरूची । —ऋ. ३, ११, ११;

उर्वरास्

उर्वरा सर्वसस्याढ्या भूः । तां सनोतीति उर्वरासाः पुत्रः ।
—ऋ. ४, ३८, १;

उलूकयातु

उलूकैः परिकरभूतैः सह यातयति हिनस्तीति याति गच्छतीति वोलूकयातुः । —ऋ. ७, १०४, २२;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

उशिक्

वष्टि हविः कामयते उश्यते काम्यते कर्मार्थिभिः इति वा उशिक् अग्निः ।
—ऋ. ३, २७, १०;

उषर्बुध्

उषर्बुध्यन्ते इति उषर्बुधः । —ऋ. १, १४, ६;

उषर्भुत्

उषसि बुध्यते इति उषर्भुत् अग्निः । —ऋ. १, ६५, ९-१०;

उस्र

वसति नभसीत्युस्रः सूर्यः । —ऋ. ३, ५८, ४;

उस्रिय

ऊर्ध्वं वसत्यासु क्षीरादिरूपं हविरित्युस्रिया गावः । यद्वा ऊर्ध्वं क्षीरदधिनवनीतादि क्रमेणासु वसतीति । —ऋ. ३, ३१, ११; द्र. १, ६, ५;

ऊ

ऊति

अवन्ति रक्षन्ति सर्वमित्यूतयो मरुतः । —ऋ. ३, ३६, १; ८, ९५, ८;

ऊमन्

अवन्ति रक्षन्तीत्यूमाः प्राणिनः । —ऋ. १०, १२०, १;

ऊर्क्

ऊर्जयति शरीरमित्यूर्क् । —ऋ. ३, २७, १२;

ऊर्ध्वसान

ऊर्ध्वं उच्छ्रितः शौर्यादिभिर्गुणैरधिकः सन् स्यति शत्रूणामन्तं करोतीत्यूर्ध्वसः । स इव आचरन् । —ऋ. १०, ९९, ६;

ऊर्मि

ऋच्छन्ति गच्छन्तीति ऊर्मयः । — ऋ. १, ५२, ७; द्र. ३, ३३, १३;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

ऊर्व

ऊर्वति क्षुधं हिनस्तीत्यूर्वमन्नम् । —ऋ. १, ७२, ८;

ऋ

ऋक्ष

ऋन् मनुष्यान् क्षरणोति । —ऋ. ८, २४, २७;

ऋग्मिय

(१) ऋचो मिमीते इति ऋग्मीः तमृग्मियम् । —ऋ. १, ६, ६;

(२) ऋग्मं स्तुतिमर्हतीति ऋग्मियः । —ऋ. १, ६२, १;

ऋग्मी

ऋग्भिर्मीयते शब्द्यते इति ऋग्मीः । —ऋ. १, ५१, १;

ऋघायमाण

न्ऋन् हन्तीति ऋघा । —ऋ. १, १०, ८;

ऋजिप्य

ऋज्वाप्नोति गच्छतीति ऋजिप्यः । —ऋ. ४, ३८, २;

ऋजिश्वन्

ऋजु अश्नुते प्राप्नोतीति ऋजिश्वा । —ऋ. १, ५१, ५;

ऋजीति

ऋजु गच्छतीति ऋजीतिः इषुः । —ऋ. ६, ७५, १२;

ऋजीष

अर्ज्यत इत्यृजीषम् । —ऋ. ३, ३२, १;

ऋजूयवा

ऋजुतामात्मन इच्छन्तः छलरहिताः । —ऋ. १, २०, ४;

ऋज्वञ्च्

ऋजु अकुटिलं अञ्चन्ति गच्छन्तीति ऋज्वञ्चः । —ऋ. ४, ६, ६;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

ऋणचित्

स्तोतृकामृणमिव चिनोतीति ऋणचित् । —ऋ. २, २३, १७;

ऋतजात

ऋते जन्यते इति ऋतजातः । —ऋ. १, ३६, १९;

ऋतपा

ऋतं पाति रक्षतीति ऋतपाः । —ऋ. १, ११३, १२;

ऋतस्तुप्

ऋतं सत्यं स्तोभत्युच्चारयतीति ऋतस्तुप् । —ऋ. १, ११२, २०;

ऋतावृध्

ऋतं वर्धयन्तीति । —ऋ. १, १३, ६;

ऋतुपा

(१) ऋतून् पातीति । —ऋ. ३, २०, ४;

(२) ऋतुषु सोमं पिबतीति वा । —ऋ. ३, ४७, ३;

ऋतेजा

ऋते निमित्तभूते जायते इति ऋतेजाः । —ऋ. १, ११३, १२;

ऋभु

(१) उरु विस्तीर्णं भाति । यद्वा । ऋतेन यज्ञेन भाति भवतीति वा ऋभुः । —ऋ. १, ६३, ३;

(२) उरु भान्तीति । —ऋ. १, ५१, २; ३, ५४, १२;

(३) ऋतेन सत्येन भान्तीति ऋभवः । —ऋ. १०, ६५, १०;

(४) ऋतेन भवन्ति अनृतेन भान्तीति वा । —ऋ. ३, ५४, १७;

ऋभुक्षण

उरुभासमाने स्थाने क्षियति निवसतीति ऋभुक्षाः । —ऋ. १, १११, ४;

ए

एकपात्

एक एव पद्यते गच्छतीत्येकपात् । —ऋ. २, ३१, ६; द्र. १०, ६४, ४;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

एकवीर

वीरयत्यमित्रानिति वीरः। एकश्चासौ वीरश्च। —ऋ. १०, १०३, १;

एतश

एति गच्छतीति एतशः। —ऋ. १, ५४, ६;

एम

एत्यनेनेति एम मार्गः। —ऋ. १, ५८, ४;

एवयावन्

(१) एवैर्गन्तृभिरश्वैर्याति गच्छतीति एवयावा मरुद्गणः।
—ऋ. १, ९०, ५;

(२) एवाः प्राप्तव्याः कामाः। तान् यापयति प्रापयति स्तोतॄनृ-नित्येवयावा। —ऋ. ७, १००, २;

ओ

ओक्य

उच्यते समवेयते प्राप्यते इति ओक्यं गृहम्। —ऋ. १, ९१, १३;

ओदती

उनत्ति सर्वं नीहारेण इति ओदती उषाः। —ऋ. १, ४८, ६;

ओपश

(१) ईषदुपशेते इत्योपशं शृङ्गं तद्वृषभ इव। यद्वा। परस्परं समीपे वर्तमानं क्षित्यन्तरिक्षाख्यं लोकद्वयं ओपशम्।
—ऋ. १, १७३, ६;

(२) येनोपशेरते स ओपशः। —ऋ. १०, ८५, ८;

ओमन्

अवति रक्षतीति ओमा रक्षकमन्नम्। —ऋ. ६, ५०, ७;

ओषधि

(१) ओषः पाकः आसु धीयते इति ओषधयः।
—ऋ. १, ९०, ६; द्र. १, ५९, ३; ६, १२, ३;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

(२) ओषति माद्यन्त्यनेनेत्योषः सोमः। स धीयते निधीयते येष्वित्योषधयो ग्रावाणः। —ऋ. ८, २७, २;

क

ककुप्

कं स्कुभ्नन्ति विस्तारयन्तीति ककुभो दिशः। —ऋ. ३, ५४, १४;

कक्ष्यप्रौ (इंद्रस्य हरी)

कक्षयोर्भवं कक्ष्यं सूत्रम्। तत् प्रातः पूरयतः पुष्टत्वादिति कक्ष्यप्रौ। —ऋ. १, १०, ३;

कण्वासः

कणन्ति ध्वनन्ति स्तोत्रादिपाठेनेति कण्वा ऋत्विजः। —ऋ. १, १४, ५;

कधप्रिय

कथा स्तुतिः। तया प्रीणन्तीति कधप्रियः। —ऋ. १, ३८, १;

कर्ण

स्तोत्राणि कृणोति करोतीति कर्णः स्तोता यजमानो वा। —ऋ. ५, ३६, ६;

कल्मलीकिन्

कलयति अपगमयति मलमिति कल्मलीकं तेजः। तद्वन्तं रुद्रम्। —ऋ. २, ३३, ८;

कवन्ध

कवनमुदकम्। तत् धीयतेऽत्रेति कवन्धो मेघः। —ऋ. ५, ८५, ३;

कशोजू

कशांस्युदकानि जवतीति कशोजूः। —ऋ. १, ११२, १४;

काम

काम्यते इति कामः। —ऋ. ३, ४६, १;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

कार

(१) क्रियतेऽनेनेति कारः। —ऋ. १, ११२, १;

(२) कीर्यन्त आयुधान्यत्रेति कारो युद्धम्। —ऋ. ८, २१, १२;

कितव

किं तवास्ति सर्वं मया जितमिति वदतीति कितवः। —ऋ. ५, ८५, ८;

किरण

कीर्यन्ते विक्षिप्यन्ते इति किरणाः। —ऋ. १, ६३, १;

कीरिन्

कीर्यते विक्षिप्यते इति कीरि स्तोत्रम्। —ऋ. ५, ४०, ८;

कीलालप

सौत्रामण्यां सुरां पिबते। 'कीलालम्' इत्युदकनामसु पाठात्। उदकं पिबते। —ऋ. १०, ९१, १४;

कुण्डपाय्य

कुण्डैः पीयतेऽस्मिन् सोम इति कुण्डपाय्यः क्रतुविशेषः।

—ऋ. ८, १७, १३;

कुरुङ्ग

कुरून्जेतुं गच्छति कुलं गच्छतीति वा। —ऋ. ८, ४, १९;

कुवित्स

कुविद्बहुशः स्यति हिनस्तीति कुवित्सो नाम कश्चित्।

—ऋ. ६, ४५, २४;

कुषुम्भक

कुं पृथ्वीं सुम्भति विलिखतीति सर्पाणां कुत्सितं सुम्भयिता निग्रहीता कुषुम्भको नकुलः। —ऋ. १, १९१, १५;

कृकदाशु

कृको हिंसा तां दाशति प्रयच्छतीति कृकदाशुः। —ऋ. १, २९, ७;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

कृष्टि

आकर्षन्ति वशीकुर्वन्ति कर्मणा सर्वान् इति कृष्टयो मनुष्याः ।

—ऋ. ३, ४३, ७; द्र. १, ७, ८;

कृष्णजंहस्

कृष्णमार्गस्य......पुनः पुनर्गम्यते इति जंहा मार्गः । —ऋ. १, १४१, ७;

केत

चिकेतति प्रतिकूलं जानन्तीति केताः । यद्वा प्रतिकूलतया ज्ञायन्ते इति केताः ।

—ऋ. १, ५५, ७;

कः

कायतीति कः । —ऋ. १, ८८, २;

क्षाति

क्षीयन्ते दह्यन्तेऽस्यामोषधिवनस्पतय इति क्षायतेरधिकरणे क्तिन् ।

—ऋ. ६, ६, ५;

क्षत्रश्री (वरुण)

क्षत्राणि श्रयतीति क्षत्रश्रीः । —ऋ. १, २५, ५;

क्षय

क्षियन्ति निवसन्त्यस्मिन्निति क्षयो निवासस्थानम् ।

—ऋ. १, ३६, ८; द्र. २, ११, १४; ३, ४०, ४; ५, ६, २;

क्षा

(१) क्षायन्ति निवसन्त्यस्यामिति क्षाः । —ऋ. १, १३३, ६;

(२) क्षियन्ति निवसन्त्यस्यां प्राणिनः इति क्षा भूमिः ।

—ऋ. ३, ३२, ११;

क्षिति

क्षियन्ति गच्छन्तीति क्षितयो मनुष्याः ।

—ऋ. १, ३३, ५; द्र. १, ७२, ७; १७६, ३;

क्षिप्

क्षिप्यन्ते कर्मकरणार्थमिति क्षिपोऽङ्गुलयः । —ऋ. ३, २३, ३;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

क्षेत्रसाधस्

क्षियन्ति निवसन्ति कर्मकरणार्थमत्रेति क्षेत्रो यज्ञः । तस्य साधकम् ।
—ऋ. ८, ३१, १४;

क्षेत्रस्

क्षेत्राणि सर्वा भूमीः सनोतिति क्षेत्रसा अश्वः । —ऋ. ४, ३८, १;

क्षेम

क्षियति निवसत्यनेनेति क्षेमः । —ऋ. १, ६६, ३-४;

क्षमा

क्षमते प्राणिजातकृतमुपद्रवमिति क्षमा । —ऋ. १, ५५, ६;

ख

खजंकर

खजति मथ्नाति पुरुषानिति खजः संग्रामः । तस्य कर्ता ।
—ऋ. १, १०२, ६;

ग

गन्धर्व

(१) गामुदकं धारयतीति गन्धर्वो मेघः । —ऋ. ८, ७७, ५;

(२) गाः शब्दान् धारयतीति गन्धर्वः प्राणवायुः ।
—ऋ. १०, १७७, २;

गभस्ती

(१) बप्सत्यदन्त्याभ्यामन्नमिति गृह्णन्ति पदार्थानाभ्यामिति वा गभस्ती बाहू । —ऋ. ३, ६०, ५;

(२) बभसति दीपयन्ति निर्मथनन्त्याभ्यामिति गभस्ती ।
—ऋ. ६, ६५, ६;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

गय

(१) गम्यते निवासायेति गयं गृहं गीयते स्तूयत इति वा धनम् ।
—ऋ. ५, १०, ३;

(२) गायते शब्द्यतेऽत्रेति वा गयं गृहम् । —ऋ. १०, ६६, ३;

गर्भ

गिरति गीर्यते वा गर्भः । —ऋ. ३, २७, ९;

गर्भधि

गर्भोऽस्यां धीयते इति गर्भधिः । —ऋ. १, ३०, ४;

गविष्टि

गावो बाणा इष्यन्ति गच्छन्तीति गविष्टिः संग्रामः । —ऋ. ६, ३१, ३;

गव्यूती

गावोऽत्र यूयन्ते इति । —ऋ. १, २५, १६; द्र. ७, ६२, ५; ८, ५, ६;

गातु

(१) गच्छन्त्यनेनेति गातुर्मार्गः । —ऋ. ३, ३१, ९;

(२) गायन्ति स्तुवन्तीन्द्रादीनत्रेति गातुर्गृहम् । —ऋ. ३, ५४, १८;

(३) गीयते उच्चार्यते इति गातुः स्तोत्रम् । —ऋ. ४, ४, ६;

गातुवित्

(गातुं) तं वेदयति लम्भयतीति । —ऋ. १, ५१, ३;

गाथिन्

गाथा एषां सन्तीति गाथिनः । —ऋ. १, ७, १;

गायत्र

प्रथमसृष्टत्वात् गायति त्रायते च इति व्युत्पत्त्या च प्रजापतेर्मुखात् गायत्र्या सह उत्पन्नत्वात् भक्त्या अग्निरपि गायत्रः ।
—ऋ. १, १६४, २३; द्र. १, ३८, १४;

गिर्

गृणातीति गीः स्तोता । —ऋ. २, ३५, १; द्र. ७, ४५, ४;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

गिर्वण

गृणन्तीति गिरः स्तुतयः। गीर्भिर्वन्यते सेव्यते इति गिर्वणः।

—ऋ. १, ५, ७; १०, १२; ६२, १;

गिर्वाहस्

गिरो मंत्ररूपा वहन्तीति गिर्वाहसः ऋत्विजः। —ऋ. १, १२७, ८;

गी

गृणातीति गीः स्तोता। —ऋ. ६, ६३, १०;

गूर्ति

गृणन्ति स्तुवन्तीति गूर्तयः। —ऋ. १, ५६, २;

गृत्स

अभिकांक्ष्यते सर्वैर्देवैः शत्रुहननार्थमिति गृत्सः इंद्रः। —ऋ. ३, ४८, ३;

गोओपश

उपशेरते इत्योपशाः। गाव ओपशा यस्यास्तादृशी। —ऋ. ६, ५३, ६;

गोत्र

गा उदकानि त्रायन्ते रक्षन्तीति गोत्रा मेघाः।

—ऋ. २, १७, १; द्र. ३, ४३, ७;

गोत्रभिद्

गा उदकानि त्रायन्त इति गोत्राः मेघाः। यद्वा गौर्भूमिः। तां त्रायन्त इति गोत्राः पर्वताः। तेषां भेत्तारम्। —ऋ. १०, १०३, ६;

गोदा

गां ददातीति गोदाः। —ऋ. १, ४, २;

गोधा

गमयति वर्णानिति गौर्वाक् तत्र निधीयमानत्वात् गायत्री गोधा।

—ऋ. १०, २८, १०;

गोधुक्

गां दोग्धीति। —ऋ. १, ४, १;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

गोषुयुत्

गोष्वप्सु निमित्तभूतासु मेघैः सह युध्यत इति गोषुयुदिन्द्रः ।
—ऋ. १०, ३०, १०; द्र. १, ११२, २२;

गौ

गच्छतीति गौरादित्यः । —ऋ. ६, ५६, ३;

ग्ना

गम्यन्त इति ग्नाः । —ऋ. १, २२, १०;

ग्राम

ग्रसन्तेऽत्रेति ग्रामाः जनपदाः । —ऋ. २, १२, ७;

ग्रावग्राभ

ग्राव्णः स्तुत्या गृह्णातीति ग्रावस्तुत् । —ऋ. १, १६२, ५;

ग्रीवा

गिरन्त्यन्तरवस्थापयन्ति बध्नन्तीति ग्रीवा दामानि । —ऋ. ६, ४८, १७;

घ

घृतपू

घृतमुदकम् । तेनान्यान् पुनन्तीति । यद्वा घृतं गव्यम् । तेन पुनन्ति···
घृतप्वः । —ऋ. १०, १७, १०;

घृतप्रुट्

घृतेनोदकेन प्रुष्णाति पूरयतीति घृतप्रुट् । —ऋ. १, ४५, १;

घृतस्नू

घृतं स्नुवन्तीति घृतस्नुवः । —ऋ. १, १६, २;

घृताची

घृतमुदकमञ्चति भूमिं प्रापयति या धीर्वर्षणकर्म ताम् घृताचीम् ।
—ऋ. १, २, ७; द्र. ३, २७, १; ३०, ७; ७, १, ६;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

घृतासुती (मित्रावरुण)

घृतमासूयते आदीयते याभ्यां तौ तादृशौ। यद्वा घृतमुदकं वृष्टिलक्षणं प्रसूयते सर्वत्रानुज्ञायते याभ्यां तौ। —ऋ. १, १३६, १; १५६, १;

घृताहवन

घृतेनाहूयतेऽस्मिन्निति घृताहवनः। —ऋ. १, ४५, ५; द्र. १, १२, ५;

घ्रंस

गृह्यन्तेऽस्मिन् रसा इति घ्रंसः। —ऋ. ५, ३४, ३;

च

चतुर्युग

युज्यन्त इति युगानि ग्रावाणः। चत्वारि युगानि यस्य सः। —ऋ. १०, १८, १;

चंद्रमस्

चंद्रमाह्लादनं मिमीते निर्मिमीते इति चंद्रमाः। —ऋ. १, ८४, १५; द्र. १, १०५, १;

चमस

चम्यन्ते भक्ष्यन्ते इति चमसाः सोमाः। —ऋ. १, ५४, ९;

चमू

(१) चमन्ति यजन्त्यत्रेति चम्वो ग्रहाः। —ऋ. ८, ८२, ७;

(२) चम्यते भक्ष्यतेऽत्रेति चमूः। —ऋ. १, २८, ९; द्र. ३, ५५, २०; ९, २४, ३;

चमूषद्

चम्यते भक्ष्यते येषु चमसेषु ते चम्वः। तत्र सीदन्तीति चमूषदः। —ऋ. १, १४, ४; ५४, ९; द्र. ९, ९६, १९;

चम्रीष

चम्वामिष्यति गच्छतीति चम्रीषः। —ऋ. १, १००, १२;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

चरण

चरत्यत्रेति चरणमन्तरिक्षम् ।　　—ऋ. ३, ५, ५;

चर्मम्न

चर्ममयस्य कवचादेर्धारणे कृताभ्यासाः। यद्वा। चर्माणि चरण-साधनानि अश्वादीनि वाहनानि तेषु मनन्त्यभ्यस्यन्तीति चर्मम्नाः।

—ऋ. ८, ५, ३८;

चर्षणि

आकृषन्ति सर्वमनेन इति चर्षणिर्बलम् ।　　—ऋ. ३, ३७, ४;

चर्षणिधृत्

आकृषन्त्यनेन सर्वमिति चर्षणि बलं तद्धारकम् ।　　—ऋ. ३, ५१, १;

चित्रश्रवस्

श्रूयते इति श्रवः कीर्तिः। अतिशयेन विविधकीर्तियुक्तः।

—ऋ. १, १, ५;

चेतन

चेतन्ति जानन्त्यनेन स्वर्गादिकमिति चेतनः।　　—ऋ. ८, ९२, २१;

छ

छर्दि

दीप्यतेऽनेनेति छर्दिस्तेजः। यद्वा। छर्दन्ति दीव्यन्ते अत्रेति छर्दिर्गृहम्।

—ऋ. ८, २७, २०; द्र. १, ११४, ५;

ज

जठर

जग्धमन्नमस्मिंस्तिष्ठतीति जठरमुदरम् ।　　—ऋ. ३, ४७, १;

जन

जन्यन्ते इति जनाः ।　　—ऋ. १, ७, १०;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

जनपान

अस्मिन् जना उदकं पिबन्ति । —ऋ. ९, ११०, ५;

जनश्री

जनं स्तोतृसंघं श्रयति गच्छतीति जनश्रीः । —ऋ. ६, ५५, ६;

जनाषाट्

जनान् सहते इति जनाषाट् । —ऋ. १, ५४, ११;

जनि

जन्यन्ते आसु इति जनयः स्त्रियः । —ऋ. १, ६६, ७-८; द्र. १, ८५, १;

जन्तु

जायन्त इति जन्तवः । —ऋ. ५, १९, ३;

जन्म

जायन्ते इति जन्मानो मनुष्याः । —ऋ. १, ७१, ३; ३, १, २०;

जम्भ

(१) जम्भ्यन्ते शत्रव एभिरिति जम्भानि आयुधानि ।
—ऋ. १, ३६, १६;

(२) जम्भ्यते भक्ष्यतेऽनेनेति जम्भमास्यम् । —ऋ. १, ३७, ६;

जराबोध (अग्नि)

जरया (स्तुत्या) बोध्यते इति जराबोधः । —ऋ. १, २७, १०;

जलाषभेषज

जायन्ते इति जाः । ·······जानां लाषो यस्मिन् तज्जलाषं सुखम् । जलाषरूपं भेषजं यस्मिन् रुद्रे स जलाषभेषजः रुद्रः । —ऋ. १, ४३, ४;

जा

उपर्युपरि जायन्ते इति जाः । —ऋ. १, १४३, ८; ४, ३, ९;

जागृवि

जागर्तीति जागृविः । —ऋ. ३, २४, ३;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

जातवेदस्

जातानि वेत्तीति जातवेदा: । —ऋ. १, ५०, १; ३, ११, ८;

जातूभर्म

जान् तूर्वतीति जातू: । भ्रियते इति भर्म । जातू: भर्म यस्य ।
—ऋ. १, १०३, ३;

जान

जन्यतेऽस्मिन्निति जानमन्तरिक्षम् । —ऋ. १, ३७, ९;

जामातृ

जायत इति जा अपत्यम् । तस्य निर्माता दुहितु: पति: ।
—ऋ. ८, २, २०;

जामि

(१) जमन्त्येकस्मिन् पात्रे सह भुञ्जते इति जामयो ज्ञातय: ।
—ऋ. १, ७१, ७;

(२) जनयन्ति उत्पादयन्ति अस्यामपत्यं अन्ये इति जामि: । यद्वा । जमति गच्छति स्वोत्पत्तिस्थानादन्यत्रेति । —ऋ. १, १२३, ५;

(३) जमन्ति वर्षाकाले प्रादुर्भवन्तीति जामय ओषधय: । यद्वा । जमन्ति सर्वत्र प्रसरन्तीति जामय: सूर्यदीप्तय: ।
—ऋ. ३, ५७, ३;

जार

जरयतीति जार: आदित्य: । —ऋ. १, ४६, ४; ६६, ७; ८;

जिघ्न

हन्तीति जिघ्न: । —ऋ. ३, ३०, ४;

जिह्मशी

जिह्मं शेते इति जिह्मशी: । —ऋ, १, ११३, ५;

जिह्वा

लिहन्त्याभि: रसानिति । —ऋ. ३, २०, २;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

जीरि

जीर्यन्ते इति जीरयो मनुष्याः। —ऋ. ३, ५१, ५;

जीवयाज

जीवाः ऋत्विजः इज्यन्ते दक्षिणाभिः पूज्यन्ते अत्रेति। यद्वा जीवैः पशुभिः याजनं जीवयाजः। —ऋ. १, ३१, १५;

जुहू

हूयतेऽनयेति जुहूः।

—ऋ. १, १२, ६; द्र. १, ५८, ४; १४५, ३; २, १०, ६;

ज्मा

जमन्ति गच्छन्त्यस्यामिति ज्मा पृथिवी। —ऋ. ८, १, १८;

ज्योतिष्कृत्

ज्योतिः करोतीति। —ऋ. १, ५०, ४;

ज्ञास्

सुखदुःखादिकं साम्येन जानन्तीति ज्ञासो ज्ञातयः। —ऋ. १, १०९, १;

त

तक्वन्

तकति गच्छतीति तक्वा। —ऋ. १, ६६, १-२;

तत

तन्यतेऽस्मादिति ततः पिता। तन्यतेऽसाविति वा ततः पुत्र।

—ऋ. ९, ११२, ३;

ततनुष्टि

ततं धर्मसंततिं नुदति वष्टि कामयते कामानिति ततनुष्टिः।

—ऋ. ५, ३४, ३;

तन

(१) तनोतीति तनः। —ऋ. १, ३९, ७;

(२) तनोति विस्तारयति कुलमिति तनः पुत्रः। —ऋ. २, ९, २;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

तनय

तनोति विस्तारयति पुत्रमिति तनयः पौत्रः। —ऋ. ८, २३, १२;

तना

तनोति देवतामाहात्म्यं विस्तारयतीति तना। —ऋ. १, ३८, १३;

तनु

तायत एभिः कुलमिति तन्वः पुत्राः। —ऋ. २, २१, ६;

तनू

तायत इति तनूर्यज्ञः। —ऋ. १०, ११२, ३;

तनूनपात्

यष्टॄणां तनूः शरीराणि न पातयति न दहतीति व्युत्पत्तेः।

—ऋ. ३, २९, ११;

तन्यतु

तनोति विस्तारयतीति तन्यतुर्मेघः। —ऋ. ७, १००, ३;

तपुस्

तपत्यस्मिन् सूर्यः इति तपुः दिवसः। —ऋ. ३, ३९, ३;

तरणि

(१) तरन्ति यजमानाः पापमनेनेति तरणिरग्निः।

—ऋ. ३, २९, १३;

(२) शत्रूनुत्तीर्य वर्तते इति तरणिः। —ऋ. ३, ४९, ३;

तरुत्र

तरन्त्यनेन शत्रून्देवा इति तरुत्रः इंद्रः। —ऋ. ३, ३०, ३;

तविष

तवन्ति संचरन्त्याकाशे इति तविषा वायवः। —ऋ. ३, २६, ४;

तितउ

परिपूयतेऽनेनेति। यद्वा। तता विस्तृता भृष्टयवा अत्रेति तितउः।

—ऋ. १०, ७१, २;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

तुक्

तोजयति हिनस्ति पितुर्दुःखादिकमिति तुक् पुत्रः । —ऋ. ८, २७, १४;

तुर

तुर्वतीति तुरः । —ऋ. १, ६१, १;

तुरण्यसत्

त्वरया सीदतीति । —ऋ. ४, ४०, २;

तुर्वीति

शत्रूस्तुर्वतीति । —ऋ. १, ११२, २३;

तूर्णि

त्वरन्ते इति तूर्णयः । —ऋ. १, ३, ८;

तोकसाति

तोक इत्यपत्यनाम । दीयतेऽस्मिन्नपत्यमिति तोकसातिः संग्रामविशेषणम् ।
—ऋ. १०, २५, ९;

तोद

तुद्यते तपसा पीड्यते इति तोदो यजमानः । —ऋ. ६, १२, १;

त्यजस्

(१) त्यज्यते परित्यज्यते सर्वैरिति त्यजः क्रोधः । —ऋ. ४, ४३, ४;

(२) त्यज्यते परस्मै प्रदीयत इति त्यजसं दुहितृभगिन्यादिस्त्रीजातम् ।
—ऋ. १०, १०, ३;

त्रययाय्य

विद्यातपःकर्मलक्षणं त्रयं यातीति त्रययाय्यः । —ऋ. ६, २, ७;

त्र्यवि

सार्धसंवत्सरवयस्को वत्सस्त्र्यविरित्युच्यते । तत्प्रमाणमादित्यम् । त्रीन् लोकान् अवति स्वतेजसा व्याप्नोतीति त्र्यविरिति । —ऋ. ३, ५५, १४;

त्रिधातु

त्रेधा धीयते निधीयते इति त्रिधातु । —ऋ. १, ३४, ७;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

त्रिबन्धुर

बध्नन्तीति बंधुराः। त्रयो बन्धुराः यस्यासौ। —ऋ. १, ४७, २;

त्रिविष्टधातु

त्रिधा प्रकारेण विष्ट्या प्रवेशनेन विधीयते क्रियते इति त्रिविष्टिधातुः त्रिगुणिता रज्जुः। —ऋ. १, १०२, ८;

त्रिवृत्

त्रिषु लोकेषु वर्तते इति त्रिवृत्। —ऋ. १, ४७, २;

त्रिषधस्थ

(१) त्रिषु स्थानेषु सह तिष्ठतीति त्रिषधस्थ बर्हिः। —ऋ. १, ४७, ४;

(२) आहवनीयादिलक्षणेन त्रिप्रकारेणानेन सह तिष्ठतीति त्रिषधस्थः। —ऋ. ५, ११, २;

त्रिष्ठ

त्रिषु चक्रेषु तिष्ठतीति त्रिष्ठः। —ऋ. १, ३४, ५;

द

दक्ष

(१) दक्ष्यतेऽनेनेति दक्षो बलम्। —ऋ. १, ६१, २; द्र. १, १५, ६;

(२) दक्ष्यन्ते हिंस्यन्तेऽनेन शत्रव इति दक्षं बलम्। —ऋ. ५, १०, २;

(३) दक्षति उदकं प्रयच्छतीति दक्षो वर्षणसमर्थो मेघः। —ऋ. १०, १३९, ६;

दक्षिणा

दक्षमुत्साहनं करोतीति दक्षिणा। —ऋ. २, ११, २१;

दधिक्रा

दधदन्यं धारयन् क्रामतीति दधिक्राः। —ऋ. ४, ३८, २;

दध्यङ्

दधि अञ्चतीति दध्यङ्। —ऋ. १, ८४, १३;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

दध्याशिर

दधाति पुष्णातीति दधिः। ......शृणाति हिनस्ति सोमेऽवनीयमानं यत् सोमस्य स्वाभाविकं रसं ऋजीषत्वप्रयुक्तं नीरसं दोषं वा इत्याशीः। दध्येव आशीर्येषां सोमानां ते दध्याशिरः। —ऋ. १, ५, ५;

दमूनस्

दमयति राक्षसादिकमिति दमूना:। —ऋ. १, ६०, ४; द्र. ३, ३१, १६;

दर्मन्

तव (इंद्रस्य) पूर्वोक्तो वज्रः विश्वतः सर्वान् शत्रून् सर्वैरुपायैर्वा दर्षीष्ट दारयति। यद्वा दर्मा शत्रूणां दारकः इंद्रः दर्षीष्ट कात्स्न्येन दारयति शत्रून्। —ऋ. १, १३२, ६;

दशग्व

ये (आंगिरसाः) दशभिर्मासैः (सत्रयागम्) समाप्य जग्मुस्ते दशग्वाः। —ऋ. १, ६२, ४; द्र. ८, १२, २;

दशारित्र

अरिभ्यः पापेभ्यस्त्रायन्त इति अरित्रा ग्रहाः। दशसंख्याका ग्रहा यस्य सः। —ऋ. २, १८, १;

दशावनि

कर्माण्यवन्ति गच्छन्तीत्यवनयः। दशावनयोऽङ्गुलयः। —ऋ. १०, ९४, ७;

दान

उषलूयन्ते सस्यान्यत्रेति दानं क्षेत्रम्। —ऋ. २, १३, ७;

दास

दासयतीति दासः वृत्रः। —ऋ. १, ३२, ११;

दासपत्नी

दासयन्ति उपक्षपयन्ति इति दासाः उपक्षपयितारः शत्रवः। ते पेतयः पालकाः यासां ता दासपत्नीः। —ऋ. ३, १२, ६;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

दासप्रवर्ग

दासयत्युषक्षपयति शत्रूनिति दासो भृत्यः। —ऋ. १, ९२, ८;

दिवक्षस्

(१) दिवं वक्षन्ति व्याप्नुवन्तीति। —ऋ. ३, ७, २;

(२) दिवं व्याप्नोतीति दिवक्षाः। —ऋ. ३, ३०, २१;

दिविस्पृक्

दिवि स्पृशतः इति दिविस्पृशौ। —ऋ. १, २२, २;

दीति

दीयते विनाश्यते आभिस्तम इति। —ऋ. ३, १७, ४;

दीर्घप्रसद्मन्

प्रसीदन्ति एषु देवा इति प्रसद्मानो यज्ञगृहाः। दीर्घा आयता प्रसद्मानो यस्मिन् तस्मिन् लोके। —ऋ. ८, १०, १;

दुध्र

(१) दुष्टान् ध्रियतेऽवस्थापयतीति दुध्रः। —ऋ. १, ५६, ३;

(२) दुष्टान् धारयतीति दुध्रः। —ऋ. १, ६४, ११;

दुर्ग

दुःखेन गच्छन्त्यत्रेति दुर्गाणि। —ऋ. १, ४१, ३;

दुर्मायु

दुष्टमायुधानि मिन्वन्ति प्रक्षिपन्तीति दुर्मायवः। —ऋ. ३, ३०, १५;

दुवन्यसत्

दुवः परिचरणमिच्छन्तो दुवन्याः। तेषु सीदतीति। —ऋ. ४, ४०, २;

दुःधि

दुष्टं ध्यायन्तीति दुर्धियः। —ऋ. १, ९४, ८;

दुःशेव

दुःखेन सेव्यते इति। —ऋ. १, ४२, २;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

दूळभ

दुःखेन दह्यते इति दुर्दहम् । —ऋ. १, १५, ६;

दभीक

सर्वान् विदारयति भियं करोतीति दभीको नामासुरः ।

—ऋ. २, १४, ३;

देव

दीव्यन्तीति देवा ऋत्विजः ।

—ऋ. १, ६६, १-२; द्र. १, ७१, ७; ११३, १६; ६, ७, ४; ७, ६१, १;

देवकाम

देवाः काम्यन्ते येन । —ऋ. २, ३, ६;

देवताति

देवास्तायन्ते विस्तीर्यन्ते अत्रेति देवतातिर्यज्ञः । —ऋ. ४, ६, १;

देवद्र्यङ्

देवानञ्चतीति देवद्र्यङ् । —ऋ. १, ६३, ८;

देवप्सरस्

देवान् स्पृणोति प्रीणयतीति देवप्सराः । —ऋ. १, ७५, १;

देवमार्ग

देवा अनेन मार्गेण गच्छन्तीति देवयानो देवमार्गः । —ऋ. १०, १८, १;

देववाहन

देवान् हवींषि वाहयति प्रापयतीति देववाहनः । —ऋ. ३, २७, १४;

देववीतम

देवान् वेति गच्छति इति देववीः । अतिशयेन देववीर्देववीतमः ।

—ऋ. १, ३६, ६;

देववीति

(१) देवैर्वीयते काम्यते इति देववीतिर्यज्ञः । —ऋ. १, ११३, १२;

(२) देवा विजिगीषवो यस्मिन् वियन्ति गच्छन्तीति संग्रामो देववीतिः ।

—ऋ. ७, १६, ४;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

देवश्रवस्

देवैः श्रूयते प्रख्याप्यतेऽसाविति देवश्रवा ऋषिः। —ऋ. ३, २३, २;

देवश्रुत्

देवा एनं शृण्वन्तीति देवश्रुत्। —ऋ. १०, ६८, ८;

देष्ण

अत्यर्थं ददातीति देष्णः। —ऋ. ३, ३०, १९;

देवहूति

(१) देवा हूयन्ते एष्विति देवहूतयः यज्ञाः। —ऋ. ४, ८३, ७;

(२) देवा हूयन्तेऽनयेति देवहूतिः स्तुतिः। —ऋ. १०, ६३, ११;

देवहूय

देवा विजिगीषवो योद्धारो हूयन्ते युद्धार्थं परस्परमाहूयन्त इति देवहूयः संग्रामः। —ऋ. ७, ८५, २;

देवावी

देवान् हविष्प्रदानेन अवतीति देवावीः। —ऋ. ३, २९, ८;

द्यु

द्योतते किरणसम्बन्धादिति द्युः अन्तरिक्षम्। —ऋ. ३, २७, १२;

द्युक्षास्

दिवि क्षियन्ति निवसन्तीति द्युक्षासः। —ऋ. ३, ४०, ५;

द्यौ

दीव्यतीति स्तौतीति द्यौः स्तोता। —ऋ. १०, १४३, ३;

द्रविण

द्रवति सततं गच्छतीति द्रविणःशब्देन अग्निरभिधीयते।

—ऋ. ३, ७, १०;

द्रविणोदस्

(द्रविणं) तद्ददातीति द्रविणोदाः·········अथवा द्रविणमात्मन इच्छन्ति द्रविणस्यन्ति। —ऋ. १, १५, ७; ५३, १; ९६, १;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

द्रापि

द्रापयति इषून् कुत्सितां गतिं प्रापयतीति द्रापिः कवचम् । —ऋ. १, २५, १३;

द्रुह्यु

द्रुहं परेषामिच्छन्तीति । —ऋ. १, १०८, ८;

द्रोणाहाव

आह्वयन्त्यत्र पानार्थं बलीवर्दानित्याहावो जलाधारः पात्रविशेषः । —ऋ. १०, १०१, ७;

द्वर

द्वरति आवृणोतीति द्वरः । —ऋ. १, ५२, ३;

ध

धनंजय

धनं जयतीति । —ऋ. ३, ४२, ६;

धनदा

धनं ददतीति धनदाः । —ऋ. १, ३३, २;

धनस्पृत्

धनैरस्मान् स्पृणोति प्रीणयतीति धनस्पृत् । —ऋ. १, ३६, १०;

धनु

धन्वन्ति गच्छन्तीति धनव आपः । —ऋ. ८, ३, १९;

धन्व

धन्वन्त्यस्मादाप इति धन्व अन्तरिक्षम् । —ऋ. ६, १२, ५;

धन्वर्णस्

धन्वन्ति गच्छन्त्यर्णांसि यासु तास्तथोक्ताः । —ऋ. ५, ४५, २;

धन्वसहस्

धनुषा शत्रूनभिभवति इति धन्वसहा । —ऋ. १, १२७, ३;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

धर्मन्

धीयते ऋत्विग्भिरिति धर्म कर्म । —ऋ. ८, २७, १५;

धामन्

धीयतेऽस्मिन्निति धाम शरीरं वा । —ऋ. ८, २७, १५;

धासि

(१) धीयते पीयते इति धासिः । —ऋ. १, ६२, ३;

(२) धारयति प्राणान् धीयते दीयते अर्थिभ्यः इति वा धासिरन्नम् । —ऋ. ३, ५७, १;

धियायु

धीयते धार्यतेऽवबुध्यते श्रुतमर्थजातं अनया इति धिया प्रज्ञा । तामात्मन इच्छन्तीति । —ऋ. १, ८, ६;

धियावसु

धिया स्तोत्रेण वसु धनं यस्माद् भवति सोऽयं धियावसुः । —ऋ. ३, २८, १;

धिषणा

धृष्णोत्यनयेति धिषणा स्तुतिः । —ऋ. ३, ३१, १३;

धिष्ण्या

धियं बुद्ध्युपहितं देहमुष्णन्त्युष्णीकुर्वन्तीति धिष्ण्याः प्राणाभिमानिनो देवाः । धिय उष्णन्तीति । —ऋ. ३, २२, ३;

धीति

(१) धीयते सोमः पीयतेऽस्मिन्निति धीतिर्यागः । —ऋ. १, ६०, ५-६;

(२) देवगुणान् दधति गृह्णन्तीति धीतयः.......धयन्ति पिबन्त्याभिरिति धीतयोऽङ्गुलयः । —ऋ. १०, २५, ४;

धीरण

रणतीति रणा वाक् । धिया स्तुत्या रणा येषां ते धीरणा । —ऋ, ३, ३४, ८;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

धुनि

धुनोति स्तोतॄणां पापानीति धुनिः परुष्णी नदी।

—ऋ. २, १५, ५;

धूम

धुनोति कम्पयतीति धूमोऽग्निः। —ऋ. ३, २६, ६;

धेनुमती

पयसा सर्वान् धिनोति प्रीणयतीति धेनुर्गौः। —ऋ. ८, ३१, ४;

न

नक्षत्र

(१) न क्षरति न क्षीयत इति वा नक्षत्रम्।

—ऋ. १, ५०, ३; द्र. ३, ५४, १९;

(२) न क्षं त्रायन्त इति नक्षत्रा ग्रहचमसादयः। —ऋ. १०, ८५, २;

(३) नक्षति सततं गच्छतीति नक्षत्रः। —ऋ. १०, ५६, ४;

नग्न

गाश्छन्दांसि। तानि न जहतीति नग्नाः स्तोतारः। —ऋ. ८, २, १३;

नदीवृत्

नदीं वृणोतीति नदीवृत्। —ऋ. १, ५२, २;

नपात्

न पातयतीति नपात्।

—ऋ. १, २२, ६; द्र. १, ३७, ११; ४२, १; २, ३५, ११;

नमुचि

इन्द्रेण सह युद्धं न मुञ्चतीति नमुचिः। —ऋ. १, ५३, ७;

नर

नयन्ति कर्माणि नीयन्ते कर्माण्येभिरिति वा नरः। —ऋ. ३, २९, ५;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

नराशंस (सदसस्पति)

(१) नरा अस्मिन्नासीनाः शंसन्त्यग्निरिति.........अत्र अग्निवत् सदसस्पतेरपि नरैः शस्यमानत्वात् नराशंसत्वम् ।

—ऋ. १, १८, ६;

(२) नरैः शस्यन्त इति नराशंसाः पितरः । —ऋ. १०, ५८, ३;

नव

नूयत इति नवम् । —ऋ. १, २०, ६; द्र. २, १८, १;

नवग्व

सत्रयागमनुतिष्ठन्तो ये नवभिर्मासैः समाप्य गतास्ते नवग्वाः ।

—ऋ. १, ६२, ४; द्र १, ३३, ५; ५, २९, १२;

नवेदस्

विपरीतं न वेत्तः इति नवेदसौ । —ऋ. १, ३४, १; द्र. १, ७९, १;

नाक

कं सुखम् । तत् यस्मिन्नास्ति असौ अकः इति बहुव्रीहिं कृत्वा पश्चात् नञ् । न अको नाक इति नञ्तत्पुरुषः । —ऋ. १, १९, ६; द्र. १, १२५. ५;

नाभि

नह्यतीति नाभिर्मध्यस्थानम् । —ऋ. ३, २९, ४;

नामन्

नमयन्ति सर्वानपि स्वाश्रयभूतान् पुरुषानिति नामानि तेजांसि ।

—ऋ. ३, २०, ३; द्र. ३, ३८, ४; ७, ५६, १४; ८, ९३, १७; १०,२३,२;

नार्मर

नॄन् मनुष्यान् मारयतीति नृमरः कश्चिदसुरः । तस्यापत्यं नार्मरः ।

—ऋ. २, १३, ८;

निर्ऋती

निःशेषेण ऋच्छन्ति गच्छन्तीति निर्ऋतयः । —ऋ. १०, ११४, २;

निक्रमण

नितरां क्रमते यत्र तन्निक्रमणं स्थानम् । —ऋ. १, १६२, १४;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

निचुम्पुण

निचान्तो भक्षितः पृणः प्रीणयिता। यद्वा निचमनेन प्रीणाति इति भक्षणेन तर्पयतीति निचुम्पुणः। —ऋ. ८, ९३, २२;

निद्

निन्दन्तीति निदः। —ऋ. १, ४, ५;

निधि

निधीयतेऽत्र सोम इति निधयः पात्रविशेषाः। —ऋ. ३, ५८, ५;

निर्णिक्

नितरां नेनेक्ति शोधयतीति निर्णिक् क्षीरमुच्यते। —ऋ. ४, ५, ८;

नियान

नियमेन यान्त्यागच्छन्ति गावोऽत्रेति नियानं गोष्ठाख्यं स्थानम्।
—ऋ. १०, १९, ४;

नियुत्

नितरां युवन्ति मिश्रयन्त्यात्मानं रथेष्विति नियुतो वडवाः।
—ऋ. ३, ३१, १४;

नियुत्वान्

नितरां युवन्ति मिश्रयन्ति स्वबलेन शत्रूनिति नियुतो मरुतः। तद्वान्।
—ऋ. ८, ९३, २०;

निवेशनी

निविशन्ति अस्यामिति निवेशनी। —ऋ. १, २२, १५;

निषदन

नितरा सीदत्यत्रेति निषदनम्। —ऋ. १, १६२, १४;

निष्कृत् (सोम)

निष्करोतीति निष्कृत्। —ऋ. १, २, ६;

निष्टिग्री

निष्टिं दितिं स्वसपत्नीं गिरतीति निष्टिग्रीरदितिः।
—ऋ. १०, १०१, १२;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

निष्षप

सपति समवैति योन्या संगच्छते इति सपः शेपः। ....निर्गतो नित्योद्धृतः सपः शेपो यस्य स स्त्रीव्यसनी निष्षपः। —ऋ. १, १०४, ५;

नीचावयाः (वृत्रपुत्र)

वेति खादतीति वयो बाहुः........न्यञ्चौ वयसौ यस्याः सा।

—ऋ. १, ३२, ९;

नृचक्षस्

न्‌ॠन् चष्टे इति नृचक्षाः। —ऋ. १, २२, ७;

नृतू

न्‌ॠन् तूर्वति केशेन रिक्तीकरोतीति नृतूर्नापितः। —ऋ. १, ९२, ४;

नृपाण

नरो योद्धारः पिबन्ति प्रत्यर्थिनां प्राणानिति नृपाणः।

—ऋ. १०, १०१, ८;

नृमण

नृभिर्मनुष्यैर्मन्यते इति नृमणः। —ऋ. ४, १६, ९;

नृमादन

माद्यन्तेऽनेनेति मादनः। —ऋ. १, ४, ७;

नृवाहस्

न्‌ॠन् वहतः इति वहेरसुन्। —ऋ. १, ६, २;

नृसदन

नरोऽध्वरस्य नेतारो ऋत्विजोऽत्र सीदन्तीति नृषदना यज्ञाः।

—ऋ. ८, २६, २४;

नृषाच्

न्‌ॠन्नेतॄनृत्विजः सचन्त इति नृषाचः। —ऋ. ७, २१, २;

नेमधिति

नेमशब्दोऽर्धवाची। अर्धाः कतिपयाः पुरुषाः धीयन्त एष्विति नेमधितयः संग्रामाः। —ऋ. ६, ३३, ४;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

नेमन्निष्

नमन्तः इष्यन्तीन्द्रं प्राप्नुवन्तीति नेमन्निषः। —ऋ. १, ५६, २;

नैगुत

नीचीनं गवन्ते शब्दायन्त इति निगुतः शत्रवः। तेषां हन्तृत्वेन सम्बन्धी सोऽयं सोमः। —ऋ. ९, ९७, ५३;

नैतोश

नितोशतिर्वधकर्मा। नितोशयतीति नितोशः। तस्यापत्यं नैतोशः।
—ऋ. १०, १०६, ६;

नोधस्

नवनं स्तोत्रं धारयतीति नोधाः। —ऋ. १, १२४, ४;

नौ

नुद्यत इति नौः प्लवः। —ऋ. ३, ३२, १४;

न्ययन

नियन्ति नितरां गच्छन्त्यस्मिन्निति न्ययनं ह्रदः। —ऋ. १०, १४२, ७;

प

पंक्तिराधस् (यज्ञ)

पंक्तिभिः राध्नोतीति पंक्तिराधाः। —ऋ. १, ४०, ३;

पतङ्ग

पतति गच्छतीति पतङ्ग सूर्यः। —ऋ. १०, १७७, १;

पतत्र

पतत्यनेनेति पतत्रम्। —ऋ. १, ४६, ३;

पति

पातीति पतिः। —ऋ. १, १४, ३;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

पत्मन्

पतत्यस्मिन् इति पत्म मार्गः । —ऋ. ६, ४, ६;

पथिन्

पतन्तीति पन्थानो रश्मयः । —ऋ. १, १००, ३; द्र. २, ३४, ५;

पद

(१) पद्यते गम्यते स्वर्ग एभिरिति व्युत्पत्त्या पदशब्देनात्र यज्ञा उच्यन्ते । —ऋ. १, ७२, ६;

(२) पद्येते ज्ञायेते तत्तदसाधारणलिङ्गेनेति पदे । —ऋ. ३, ५५, १५;

पदज्ञ (अंगिरस्)

पदानि जानन्तीति । —ऋ. १, ६२, २;

पदवी

(१) पादेन वियन्ती गच्छन्तीति पदव्यः । —ऋ. १, ७२, २;

(२) पदानि वेत्ति परस्परसंगतानि करोतीति पदवीः । —ऋ. ३, ३१, ८;

(३) स्खलन्ति पदानि साधुत्वेन यो योजयति स पदवीः । —ऋ. ९, ९६, ६;

परमज्या

परमान् बलेन प्रकृष्टाञ्शत्रूञ्जिनाति हिनस्तीति परमज्याः । —ऋ. ८, ९०, १;

परावृक्

परावृणक्ति तपसा पापं विनाशयतीति परावृक् । —ऋ. १, ११२, ८; द्र. २, १३, १२;

परिक्रोश

परितः क्रोशयतीति परिक्रोशः । —ऋ. १, २९, ७;

परिज्मानौ

परितः अजतः गच्छतः इति परिज्मानौ । —ऋ. १, ४६, १३;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

परितक्म्या

(१) तमसा भूतानि परितस्तकति गच्छतीति परितक्मा (रात्रिः)।

—ऋ. ५, ३०, १३;

(२) परितो गच्छन्त्यस्यां भटाः इति परितक्म्या संग्रामः।

—ऋ. ५, ३१, ११;

परिधि

(१) परिधीयन्ते इति परिधिः। —ऋ. १, ५२, ५;

(२) परितो धीयन्त इति त्रयो परिधयः।

—ऋ. १०, १३०, ३; द्र. ९, ९६, ११;

परीणस्

परितो नसन्ति गच्छन्तीति परीणसः। —ऋ. १, ५६, २;

पर्वत

पृणन्ति पूरयन्त्यर्थिनां कामानिति पर्वता ग्रामाभिमानिनो देवाः।

—ऋ. ३, ५४, २०;

पवित्र

पुनन्तीति पवित्रा अग्निवायुसूर्याः। —ऋ. ३, २६, ८;

पाक

पायते रक्ष्यते राजादिना इति पाकः। —ऋ. ३, ९, ७;

पाकसुत्वन्

पचतीति पाकः। सुनोतीति सुत्वा। —ऋ. १०, ८६, १९;

पाकस्थामन्

तिष्ठत्यनेनेति स्थाम बलम्। परिपक्वबलः। —ऋ. ८, ३, २१;

पाज

पाति रक्षति पाजो बलम्। —ऋ. १, ११५, ५;

पात्र

पतन्ति गच्छन्ति गमनसमर्थानि यानि तान्यपत्यानि पात्राणि।

—ऋ. १, १०४, ८;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

पाथ

पातीति पाथोऽन्नम् ।   —ऋ. ३, ३१, ६;

पापज

पापात् जायत इति पापजो वृत्रः ।   —ऋ. १०, १०५, ३;

पावक

(१) पुनातीति पावकः ।   —ऋ. १, १३, १;

(२) पवनं पावः शुद्धिः । तं कायतीति पावकः ।

—ऋ. ३, ६, ८; द्र. १, ३, १०;

पिता

पाति पालयतीति पिता पालकः ।   —ऋ. ३, २७, १;

पुनःसर

गतमेव देशं पुनः सरतीति पुनःसरः ।   —ऋ. ७, ५५, ३;

पुमान्

पाति कुलमिति पुमान् ।   —ऋ. ३, २६, १३;

पुरंधि

पुरं पूरयितव्यं सर्वविषयजातमस्यां धीयते अवस्थाप्यते इति पुरंधिर्बुद्धिः ।

—ऋ. १, ११६, ७; द्र. १, १२३, ६;

पुरीष

पृणाति पूर्यते वेति पुरीषम् ।   —ऋ. ३, २२, ४;

पुरुची

पुरु अञ्चन्ति गच्छन्ति इति पुरुचीः ।   —ऋ. ३, ५८, ८;

पुरुतम

पुरून् बहून् शत्रून् तामयति ग्लापयतीति पुरुतमः ।

—ऋ. ३, ३६, ७; द्र. १, ५, २;

पुरुदस्म

बहुकर्माणाम्………बहून् दस्यत्युपक्षपयतीति पुरुदस्मः ।

—ऋ. ३, ५४, १४;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

पुरुभुज्

पुरु भुञ्जाते इति पुरुभुजौ । —ऋ. ५, ४६, १;

पुरुभोजस्

पुरुभिः सर्वैः जनैः क्षीरादिद्वारेण उपभुज्यते इति पुरुभोजाः ।

—ऋ. ३, ३४, ६;

पुरुरवा

पुरु रौतीति पुरुरवाः । —ऋ. १, ३१, ४;

पुरुस्पृह

पुरुभिः स्पृह्यते इति पुरुस्पृहः । —ऋ. १, ४७, ६;

पुरोडाश

पुरोडाशन्तेऽध्वर्यादयः एनमिति पुरोडाः पुरोडाशः ।

—ऋ. ३, २८, २; द्र. ३, ५२, २;

पुरोभू

पुरतः शत्रूनवाप्नोतीति पुरोभूः । —ऋ. ३, ३१, ८;

पुरोहित

यज्ञस्य सम्बन्धिनि पूर्वभागे आहवनीयरूपेणावस्थितम् ।

—ऋ. १, १, १;

पूरु

पूर्यन्ते इति पूरवः । —ऋ. १, १०८, ८;

पूर्भिद्य

पुराणि नगराणि भिद्यन्तेऽस्मिन्निति पूर्भिद्यः संग्रामाः ।

—ऋ. १, ११२, १४;

पूर्वपा

पूर्वः सर्वेभ्यो देवेभ्यः प्रथमभावो सन् पिबतीति पूर्वपाः वायुः ।

—ऋ. ८, १, २६;

पूषन्

स्तोतॄन् धनादिना पोषयतीति पूषा । —ऋ. ८, २७, ८;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

पृक्ष

भोक्तृभिः संपृच्यन्त इति पृक्षोऽन्नानि । —ऋ. १०, १०६, २;

पृक्षप्रयज्

पृक्षाणि हविर्लक्षणान्यन्नानि प्रकर्षेण यष्टुं प्रक्रम्यते यासु उषस्सु ताः पृक्षप्रयजः । —ऋ. ३, ७, १०;

पृतना

व्याप्रियन्तेऽत्र योद्धार इति पृतनाः संग्रामाः ।

—ऋ. ३, ४९, २; द्र. ८, ९७, १०;

पृतनाज्य

पृतनाः सेना अजन्ति गच्छन्त्यस्मिन्निति वा पृतना जीयतेऽत्रेति वा पृतनाज्यं संग्रामः । —ऋ. ८, १२, २५;

पृथ्वी

प्रथते इति पृथ्वी । —ऋ. १, ६, १०;

पृषती

पर्षन्तीति पृषत्यः शीकराः । ....पृणन्ति पालयन्तीति पृषत्यो वडवाः ।

—ऋ. ३, २६, ४;

पृष्ठ्य

पृष्ठशब्देन माध्यंदिनसवने उद्‌गातृभिरुद्‌गीयमानं स्तोत्रमुच्यते । तत्संबंधिना (सोमेन) । —ऋ. ४, २०, ४;

पृश्नि

प्राश्नुत एनं वर्णं इति पृश्निरादित्यः ।

—ऋ. ५, ४७, ३; द्र. १, १६४, ४३;

पृश्निमातृ

प्राश्नुते सर्वाणि रूपाणीति पृश्निर्भूमिः । ....पृश्निर्माता येषां ते ।

—ऋ. १, ८५, २;

प्रकेत

प्रकेत्यते ज्ञाप्यत इति प्रकेतः । —ऋ. ३, ३०, १;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

प्रचेतस्

प्रकृष्टं चेततीति प्रचेताः। —ऋ. १, ४३, १;

प्रतिधि

प्रतिधीयन्त इति प्रतिधय ईषातिर्यगायतकाष्ठादयः। —ऋ. १०, ८५, ८;

प्रतिमा

हविष्प्रतियोगित्वेन मीयते निर्मीयते इति प्रतिमा देवता।

—ऋ. १०, १३०, ३;

प्रतिमान

सतः सतो जातस्य सर्वस्य प्रतिमानं स्वस्य महत्वेन प्रतिमानीयत्तया सर्वं परिच्छिनत्तीति। —ऋ. ३, ३१, ८;

प्रतिवी

पुनः पुनर्वियन्ति भक्षयन्ति हवींषि देवा अत्रेति प्रतीवीर्यज्ञः।

—ऋ ८, २६, ८;

प्रतीची

प्रति आभिमुख्येनाञ्चति प्राप्नोतीति प्रतीची। —ऋ. ३, ६१, ३;

प्रत्यङ्

प्रति अञ्चतीति प्रत्यङ्। —ऋ. १, ५०, ५;

प्रत्वक्षस्

प्रकर्षेण त्वक्षन्ते तनूकुर्वन्तीति प्रत्वक्षसः। —ऋ. १, ८७, १;

प्रथम

प्रथन्तेऽस्मात् द्वितीयादयः इति। —ऋ. ३, २१, १;

प्रथमजा

प्रथमं जायते इति प्रजाः। —ऋ. १, ३२, ३;

प्रपा

प्रपिबन्त्यत्रेति प्रप्रा। —ऋ. १०, ४, १;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

प्रभृति

प्रकर्षेण भ्रियते धार्यते यज्ञार्थमिति प्रभृतिः सोमः स्तुतिर्वा ।

—ऋ. ३, ३६, १;

प्रमगन्द

द्वैगुण्यादिलक्षणपरिमाणं गतोऽर्थो मामेव गमिष्यतीति बुद्ध्या परेषां ददातीति मगन्दो वार्धुषिकः । तस्यापत्यं पुत्रादिः प्रमगन्दः ।

—ऋ. ३, ५३, १४;

प्रयक्षतम (इंद्र)

यक्ष्यते इति यक्षः । अतिशयेन यक्षो यक्षतमः । —ऋ. १, ६२, ६;

प्रयस्

प्रीणयन्ति भोक्तॄनिति प्रयांस्यन्नानि । —ऋ. १, २, ४;

प्रयस्वत्

प्रीणयतीति प्रयोऽन्नम् । तेन तद्वन्तः । —ऋ. १०, ११६, ८;

प्रव (अश्विनौ)

प्रवेते गच्छतः इति प्रवौ । —ऋ. १, ३४, ८;

प्रसर्ग

प्रकर्षेण सृज्यन्ते विमुच्यन्ते अस्मिन् इषव इति प्रसर्गः ।

—ऋ. १, १२१, ४;

प्रसव

प्रकर्षेण सूयते इति प्रसवः कामः । —ऋ. ३, ३६, ६;

प्रसिति

प्रसीयते बध्यतेऽनयेति प्रसितिर्ज्वाला । —ऋ. २, २५, ३; द्र. ४, ४, १;

प्रसूवरी

प्रकर्षेण सूयन्त उपभोगायेति प्रसवाः फलानि । तद्वत्यः ।

—ऋ. १०, ९७, ३;

प्राक्

प्रकर्षेणेन्द्रमञ्चति प्राप्नोतीति प्राक् । —ऋ. ३, ३१, ५;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

प्रादि

प्रागुपसृज्यते आख्यातपदस्येत्युपसर्गः प्रादिः। —ऋ. १, १६४, ४५;

प्राय

प्रकर्षेणेयते गम्यते योद्धृभिरिति प्रायं युद्धम्। —ऋ. २, १८, ८;

प्रावण

प्रकर्षेण वन्यते संभज्यते संश्लिष्यते मृदेभिरिति प्रावणानि खनित्राणि। ·······यद्वा। प्रवन्ते गच्छन्ति मृतखननं प्रति। —ऋ. ३, २२, ४;

प्राशू

(१) प्रकर्षेण आसमन्ताद् शृणाति हिनस्तीति प्राशूः।

—ऋ. १, ४०, १;

(२) ये प्राश्नुवन्ति ते प्राशवः। —ऋ. ८, ३२, १६;

प्रिय

प्रीणातीति प्रियः। —ऋ. १, १३, ३;

प्स

प्साति भक्षयतीति प्साः। —ऋ. १, ६१, २१;

प्सर

प्साति भक्षयति इति प्सरो रूपम्। —ऋ. १, ४१, ७;

फ

फलिग

प्रतिफलं प्रतिबिम्बम्। तदस्मिन्नस्तीति फलि स्वच्छमुदकम्। तद्गच्छति आधारत्वेन इति फलिगः। यद्वा व्रीह्यादि फलम्। तदस्मिन् सति भवतीति फलि वृष्टिजलं। तद्गच्छतीति फलिगः। —ऋ. १, ६२, ४;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

ब

बन्धु

स्नेहेन बध्नातीति बन्धुः.....अथवा फलेन बध्नातीति बन्धुरध्वर्यवादिः ।

—ऋ. ७, ६७, ६;

बन्धुता

बध्नन्ति फलेन संयोजयन्तीति बन्धवः कर्माणि । तेषां समूहः बन्धुता ।

—ऋ. ३, ६०, १;

बर्जह

वृणीते संभजते गामिति बः पथः । तज्जहातीति बर्जहः ।

—ऋ. १, ६२, ४;

बलदा

बलं ददातीति । —ऋ. ३, ५३, १८;

बष्कय

बडिति सत्यनाम । तत् कषतीति बष्कयः आदित्यः । यद्वा । बष्कयो नाम एकहायनो वत्सः । —ऋ. १, १६४, ५;

बाहुशर्धी

बाहुभ्यां शर्धयत्यभिभवतीति बाहुशर्धी । —ऋ. १०, १०३, ३;

बिसख

बिसं खनतीति बिसखः । —ऋ. ६, ६१, २;

बुद्बुद्याशु

यान्ति गच्छन्तीति याः । अश्नुवत इत्याशवः । याश्च त आशवश्च याशवः बुद्बुद्वद्यातारो व्यापनशीलाश्च । —ऋ. १, १५५, ४;

बृहद्दिव

बृहन्महद्दीव्यति द्योतते इति बृहद्दिवः । —ऋ. २, ३१, ४;

ब्रह्मकृत्

ब्रह्म स्तोत्रं करोतीति ब्रह्मकृत् । —ऋ. ३, ३२, २;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

ब्रह्मवाहस्

ब्रह्माणि स्तोत्राणि स्तुत्यतया वहतीति ब्रह्मवाहा ब्रह्मणा स्तोत्रेण प्राप्यत इति वा । —ऋ. ३, ४१, ३;

बेकनाट

द्विशब्देनैकशब्देन च नाटयन्तीति बेकनाटाः । —ऋ. ८, ६६, १०;

भ

भर

(१) ह्रियन्ते योधानामायूंष्यत्रेति भरः संग्रामः । —ऋ. ३, ५१, ८;

(२) भ्रियत आहवनीयादिरूपेणाग्निरत्रेति भराः यज्ञाः । यद्वा । भृणन्ति भर्त्सयन्ति योद्धारः अत्रेति भराः संग्रामाः ।
—ऋ. १०, १०७, ११; द्र. ६३, ६;

भरद्वाज

भरन्ति पोषयन्ति भोक्तॄनिति भरन्तः । तादृशा वाजा येषु ।
—ऋ. १, ५६, ७;

भरित्र

कर्मकरणार्थं पदार्थान् बिभ्रतीति भरित्रा बाहवः । —ऋ. ३, ३६, ७;

भार

भ्रियते पुष्पविकासादि येष्विति भारा ऋतवः । —ऋ. ३, ५६, २;

भीम

बिभेत्यस्मादिति भीमः । —ऋ. १०, १०३, १;

भुक्

भुनक्ति पालयतीति भुक् प्रजा । —ऋ. १, १०४, ६;

भुरिज

बिभृतः कर्मकरणसामर्थ्यं पदार्थान् वेति भुरिजौ बाहू । यद्वा । देवान् मनुष्यान् च बिभृतः इति द्यावापृथिव्यौ । —ऋ. ४, २, १४;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

भुरिज्

बिभ्रति पदार्थानाभ्यामिति । —ऋ. ६, ७१, ५;

भूरि

प्रभवति न विनश्यतीति भूरि । —ऋ. १, ४८, ६;

भेद

भिनत्ति मर्यादा इति भेदो नास्तिकः । —ऋ. ७, १८, १८;

भोजन

(१) कर्मफलं भोजयतीति भोजनः । —ऋ. १, ४४, ५;

(२) भुज्यते इति भोजनं पयः । —ऋ. २, १३, २; ६;

भ्राता

यथा लोके भ्राता पितृधनस्य भागं हरति तद्वत् । वृष्ट्यर्थं रश्मिभिराहृतानां भौमानां रसानां हरणाद्वा भ्रातेत्युच्यते । पित्र्येण धनेन स्वार्जितेन वा भर्तव्यः भवतीति भ्राता । —ऋ. १, १६४, १;

म

मंश्चतु

मन्यमानान् स्तुवतो जनांश्चेतयते जानातीति यद्वा अभिमन्यमानांश्चातयते नाशयतीति मंश्चतुः । —ऋ. ७, ४४, ३;

मख

मह्यते पूज्यते सर्वैरिति मखः । —ऋ. ३, ३४, २;

मज्मन्

मज्जयति शत्रून् दुःखसागरे इति मज्म बलम् । —ऋ. ३, ४६, ३;

मद

माद्यते अनेनेति मदः सोमः । —ऋ. ३, ४२, २; द्र. ८, ९३, ८;

मदच्युत्

मदं च्योततीति मदच्युत् । —ऋ. १, ८५, ७; द्र. ८, २२, १६;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

मदवृद्ध (इंद्र)

माद्यन्ति एभिरिति मदाः सोमाः तैर्वर्द्धितः। —ऋ. १, ५२, ३;

मधुधा

मधुराणि स्तुतिलक्षणानि वाक्यानि दधातीति। मधुः सोमः। त धारयतीति वा। —ऋ. ३, ६१, ५;

मधुप

मधु पिबन्तीति मधुपानि। —ऋ. १, ७, १०;

मधुवाहन

मधु वाह्यते अनेनेति मधुवाहनः। —ऋ. १, ३४, २;

मध्वद

मध्वित्युदकनाम। तत् अदन्तीति मध्वदः उदकस्य अत्तारः।
—ऋ. १, १६४, २२;

मनस्

मन्यत इति मनः स्तोत्रम्। —ऋ. ३, ३१, ५;

मना

(१) मन्यते स्तौतीति मना स्तुतिः। —ऋ. १, ११७, १४;

(२) हन्मीति मन्यमाना बुद्धिर्मता। —ऋ. २, ३३, ५;

मनु

मन्यते इति मनुः। —ऋ. १, १३, ४; २६, ४; ४६, १३;

मनोजुवा (इंद्रवायू)

मनोवत् जवत इति मनोजुवा······जुवतिर्गतिकर्मा। —ऋ. १, २३, ३;

मनोतरौ (अश्विनौ)

मनसः तरत इति मनोतरौ। —ऋ. १, ४६, १;

मन्था

मथ्यतेऽनयेति मन्था। —ऋ. १, २८, ४;

मन्दद्वीर

यो वीरान् हर्षयति स मंदद्वीरः। —ऋ. ८, ६९, १;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

मन्युमी

मन्युं मिनातीति मन्युमीः। —ऋ. १, १००, ६;

मयूर

मीनाति सर्पानिति मयूरो बर्हिः। —ऋ. ३, ४५, १;

मयोभुवः

हिनस्ति दुःखमिति सुखं मयः। तद्भावयन्तीति मयोभुवः।
—ऋ. १, १३, ९;

मरुत्

मितं निर्मितमन्तरिक्षं प्राप्य रुवन्ति शब्दं कुर्वन्तीति मरुतः। ......अथवा महत्यन्तरिक्षे द्रवन्तीति मरुतः। —ऋ. १, ८८, १; द्र. ५, ३०, ५; ८, ८९, १;

मर्मन्

यत्र स्थाने विद्धो म्रियते तन्मर्मेत्युच्यते।
—ऋ. ५, ३२, ५; द्र. ६, ७५, १८;

मशशरि

मशकीकृत्य भृशं शृणोति शारयति वा अमित्रानिति मशशरिः।
—ऋ. १, १२२, १५;

महत्

मह्यन्ते पूजयन्ते इति महानि प्रवृद्धानि। —ऋ. १, ५५, ५;

महस्

महयति पूजयतीति महोधनम्। —ऋ. १, १२०, ११;

माँश्चत्व

अश्वनामैतत् मक्षु चरतीति। —ऋ. ६, ६७, ५४;

मातरिश्वन्

निर्माणहेतुत्वात् माता अन्तरिक्षम्। तत्र श्वसिति प्राणितीति मातरिश्वा वायुः। —ऋ. १, ३१, ३;
द्र. १, ६०, १; १४१, ३; ३, ५, ९; २६, २; ९, ६७, ३१;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

माता

निर्मीयन्ते अस्मिन् भूतानीति माता द्यौः। —ऋ १, १६४, ६;

मात्रा

मीयन्ते मान्तीति वा मात्राः शिलोच्चयाः। —ऋ. ३, ३८, ३; ४६, ३;

मान

(१) मीयत इति मानो मंत्रः। —ऋ. १, १८६, ८;

(२) मान्त्यस्मिन् सर्वाणि भूतानीति मानम्। —ऋ. ७, ८८, ५;

माया

मिमीते जानीते कर्म मीयतेऽनयेति वा माया कर्मविषयज्ञानम्।

—ऋ. ३, २७, ७; ६०, १;

मायु

मिनोति स्वतेजः सर्वत्र प्रक्षिपतीति मायुरादित्यः।

—ऋ. १, १६४, २६; द्र. १०, ६५, ३;

मास

(१) मस्यते परिमीयते त्रिंशता दिनैरिति मासः। —ऋ. ३, ३२, ६;

(२) माति परिच्छिनत्तीति मासश्चन्द्रमाः। —ऋ. ६, ३४, ४;

मिट्

मेहति सिञ्चतीति मिट् वृष्टिः। —ऋ. १, ३२, १३; ३७, ११;

मित्र

प्रकर्षेण सर्वैर्मीयते ज्ञायते तथा सर्वान् वृष्टिप्रदानेन त्रायते इति वा मित्रः सूर्यः। —ऋ. ३, ५६, १;

मित्रमहस्

मित्रैर्ऋत्विग्भिः मह्यते पूज्यते इति मित्रमहाः। —ऋ. १, ४४, १२;

मुक्षीजा

मुच्यमाना सती बंधनं जनयतीति मुक्षीजा मृगपक्ष्यादिबंधनी रज्जुः।

—ऋ. १, १२५, २;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

मुषिवन्

मुषिं वनति संभजते इति मुषीवा । मुष स्तेये । —ऋ. १, ४२, ३;

मुष्टिहन्

मुष्टिभिरेव हन्तीति मुष्टिहा मल्लः । —ऋ. ८, २०, २०;

मुक्तवाहस्

मुक्तं शुद्धं हविः देवेभ्यो वहति प्रापयतीति मुक्तवाहाः ।
—ऋ. ५, १८, २;

मूर्धा

मूर्तमस्मिन् धीयते इति मूर्धा । —ऋ. १, ५९, २;

मृध्

हिंस्यन्तेऽत्र प्राणिनः इति मृधः संग्रामाः । —ऋ. ३, ४७, २;

मेध

मेध्यते देवैः संगम्यते इति मेधं हविः । —ऋ. १, ३, ९;

मेधसाति

मेधाः स्तुतयः सायन्ते संभज्यन्तेऽत्रेति मेधसातिर्यज्ञः ।
—ऋ. १०, ६४, ६;

मेना

मन्यते गृहकृत्यं जानातीति मेना । —ऋ. १, ५१, १३; द्र. १, ६२, ७;

मेहनावान्

मिह्यते सिच्यते दीयतेऽर्थिभ्यः इति मेहनं धनम् । तद्वान् ।
—ऋ. ३, ४९, ३;

य

यज्ञ

(१) यजन्तीति यज्ञाः यजमानाः । —ऋ. ३, २, ५;

(२) इज्यतेऽनेनेति यज्ञं हविः । —ऋ. ५, ५२, ४;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

यज्ञनी

यज्ञं नयतीति यज्ञनीः । —ऋ. १, १५, १२;

यज्ञवाहस्

यज्ञं वहतः इति यज्ञवाहसौ । —ऋ. १, १५, ११;

यज्ञसात्

यज्ञं साधयतीति यज्ञसात् । —ऋ. १, ९६, ३; ११४, ४;

यज्ञिय

यज्ञमर्हतीति । —ऋ. १, ६, ४;

यति

वृष्ट्या नियमयन्तीति वा वर्षणेन यातयन्तीति वा यतयो मेघाः ।
—ऋ. १०, ७२, ७;

यदु

नियम्यन्ते इन्द्रियाणि एभिरिति यदवः । —ऋ. १, १०८, ८;

यम

(१) यच्छति ददाति स्तोतृभ्यः कामानिति यमोऽग्निरुच्यते । यद्वा ।
इन्द्राग्न्योर्युगपदुत्पन्नत्वात् अग्नेर्यमत्वम् । —ऋ. १, ६६, ७-८;

(२) यच्छतीति यम आदित्यः । —ऋ. १०, १३५, १;

(३) सर्वमृत्विग्जातं नियमयतीति यमो यजमानः । —ऋ. १०, ५२, ३;

यमस्

यमौ यमलौ सूत इति यमसूरुषोभिमानिनी देवता । —ऋ. ३, ३९, ३;

यवय

यौतीति यवः । यवं करोतीत्यर्थे णिच् । —ऋ. १, ५, १०;

यह्व

यान्ति प्राप्नुवन्ति देवा हवींष्यनेनेति यह्वो महानग्निः ।
—ऋ. २, २८, ४;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

यात्

(१) याति गच्छतीति यात् । —ऋ. १, ३२, १५;

(२) यातयतीति यात् । यातयतिर्वधकर्मा । —ऋ. ३, ५३, २१;

यातुधान

यातवो यातना एषु धीयन्ते इति यातुधानाः । —ऋ. १, ३५, १०;

यादुरी

यादुरिति उदकनाम । रेतोलक्षणमुदकं प्रभूतं ददातीति यादुरी ।
—ऋ. १, १२६, ६;

याम

(१) यायते गम्यते अनेनेति यामो रथः ।
—ऋ. १, ३४, १; ८, ७, ३; द्र. १०, २०, ६;

(२) यायते प्राप्यते देवैरत्रेति याम यज्ञः । —ऋ. ९, ६७, १०;

यामकोश

यान्त्यस्मिन्निति यामो मार्गः । तस्य कोशाः कोशवदाच्छादकाः ।
—ऋ. ३, ३०, १५;

यामन्

याति देवान् प्रति तर्पणाय यान्ति वा देवा एतं प्रत्यङ्गभावायेति यामा यज्ञः । —ऋ. १०, ३, ४; द्र. १०, ६४, १;

यामहूति

यामा गन्तारो देवाः । त आहूयन्तेऽत्रेति यामाहूतिर्यज्ञः ।
—ऋ. १०, ११७, ३;

युवाकवः (नासत्यौ)

युवन्ति मिश्रीभवन्ति वसतीवरीप्रभृतिभिः श्रयणद्रव्यैरिति नासत्यौ ।
—ऋ. १, ३, ३;

युवाकु

युवां कामयते इति युवाकुः । —ऋ. १, १२०, ३;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

यूथ

युवन्ति मिश्रीभवन्तीति यूथानि । —ऋ. १, ७, ८;

यूप

यूयते युज्यतेऽस्मिन्निति यूपः । —ऋ. १, ५१, १४;

योजना

योजयन्ति प्राणिन उपभोगेनेति योजनानि । —ऋ. १, ३५, ८;

योषा

यौतीति योषा । —ऋ. ३, ३३, १०; ५, ५२, १४;

र

रक्षस्

रक्षत्यनेनेति रक्षो बलम् । करणेऽसुन् । —ऋ. १, ३५, १०;

रघुष्यत्

रघु शीघ्रं स्यन्दन्ते गच्छन्तीति रघुष्यदः । —ऋ. १, ६४, ७; ८५, ६;

रजस्

(१) रजन्त्यस्मिन् गन्धर्वादय इति रज अन्तरिक्षम् ।
—ऋ. १, ८१, ५;

(२) रजन्त्यस्मिन् इति रजो लोकः ।
—ऋ. १, ११०, ६; द्र. १०, १४३, २;

(३) रज्यते प्रकाशेनेति·······अन्तरिक्षम् । —ऋ. ३, ४६, ४;

रजस्तुर्

रजांसि तुतोर्तीति रजस्तूः । —ऋ. १, ६४, १२;

रण

(१) रणन्ति दुन्दुभयोऽस्मिन्निति रणः संग्रामः । —ऋ. १, ७४, ३;

(२) रणन्ति स्तुवन्ति देवानत्रेति रणो यज्ञः । —ऋ. ६, ६६, १३;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

रण्व

(१) रण्व्यते प्राप्यते इति रण्वः। —ऋ. १, ६५, ५; ६;

(२) रण्वति यज्ञान् गच्छतीति रण्वः। —ऋ. ३, २६, १;

रत्नधाः

रत्नानि दधातीति रत्नधाः। —ऋ. १, १५, ३;

रथ

रमन्तेऽस्मिन्निति रथः। —ऋ. १, ६, २; १३, ४; २, १८, १;

रथतुर्

रथं तुतुरति त्वरायुक्तं कुर्वन्तीति रथतुरः। —ऋ. १, ८८, २;

रथेशुभ्

रथे शोभते इति रथेशुप्। —ऋ. १, ३७, १;

रथेष्ठ

रथे तिष्ठतीति रथेष्ठः। —ऋ. ८, ४, १३;

रदवसु

रदति ददाति वसूनीति रदवसुः। —ऋ. ७, ३२, १८;

रध्रचोदन

रध्रं राधकं चोदयतीति रध्रचोदनः। —ऋ. ८, ८०, ३;

रयि

राति ददाति क्षीरमिति रयिर्गौर्वा। —ऋ. ६, ६७, ४४;

रहसू

रहस्यन्यैरज्ञाते प्रदेशे सूयत इति रहसूर्व्यभिचारिणी।

—ऋ. २, २९, १;

रातिषाच्

रातिं दानं सचन्ते सेवन्ते इति रातिषाचो विश्वेदेवाः।

—ऋ. ६, ४९, १४;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

राधस्

(१) राध्नुवन्ति अनेनेति राधो धनम् । —ऋ. १, ९, ५;

(२) राध्नोति समृद्धो भवत्यनेनेति राधः । —ऋ. १, १००, १७;

राय

(१) रान्ति क्षीरादीनि इति रायो गोधनानि ।

—ऋ. ३, ५६, ६; द्र ४, ४, ६;

(२) रान्ति प्रयच्छन्ति क्षीरादिकमिति रायो गावः ।

—ऋ. ९, १०८, १३;

रायस्काम

रायो धनानि कामयते इति रायस्कामः । —ऋ. १, ७८, २;

रास्पिरस्

रा धनं हविर्लक्षणम् । तत्पृशन्ति रास्पा जुह्वादयः । तद्वान् रास्पी । तद्वन्तो रास्पिराः । —ऋ. ५, ४३, १४;

रिशादसः

रिशन्ति हिंसन्तीति रिशाः । तान् अदन्तीति रिशादसः ।

—ऋ. १, १९, ५; २६, ४; द्र. ५, ६४, १;

रुजाना

रुजन्ति कूलानीति रुजाना नद्यः । —ऋ. १, ३२, ६;

रुद्र

रोदयति सर्वमन्तकाले इति रुद्रः । यद्वा । रुत् संसाराख्यं दुःखम् । तत् द्रावयति अपगमयति विनाशयतीति रुद्रः । यद्वा । रुतः शब्दरूपाः उपनिषदः । ताभिर्द्रूयते गम्यते प्रतिपाद्यते इति रुद्रः । यद्वा । रुत् शब्दात्मिका वाणी तत्प्रतिपाद्या आत्मविद्या वा । तामुपासकेभ्यो राति ददातीति रुद्रः । यद्वा । रुणद्धि आवृणोति इति रुत् अन्धकारादि । तद् दृणाति विदारयतीति रुद्रः । यद्वा । कदाचित् देवासुरसंग्रामे अग्न्यात्मको रुद्रो देवैर्निक्षिप्तं धनमपहृत्य निरगात् । असुरान् जित्वा देवा एनमन्विष्य

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

दृष्ट्वा धनमपाहरन् । तदानीमरुदत् । तस्मात् रुद्र इत्याख्यायते ।

—ऋ. १, ११४, १;

द्र. १, ३६, ७; ४३, १; ८५, १; २, १, ७; ३, ८, ८; ४, ३, १;

रुप्

आरोपयति स्वात्मनि सस्यादीनि इति रुबिति भूमिरुच्यते ।

—ऋ. ४, ५, ७;

रूप

रूपयते इति रूपं शरीरादि । —ऋ. ६, ४७, १८;

रेतस्

रीयते गच्छतीति रेतः । —ऋ. १, १००, ३;

रेभ

रेभते स्तौतीति रेभः । —ऋ. १, ११२, ५;

रोचनस्थ

रोचन्ते अस्मिन् ग्रहनक्षत्रादीनि इति रोचनमन्तरिक्षम् । तत्र स्थितः ।

—ऋ. ६, ६, २;

रोधस्

रुणद्धि स्रोतः इति रोधः कूलम् । —ऋ. १, ३८, ११;

ल

लोपाश

लुप्यमानं तृणमश्नातीति लोपाशो मृगः । —ऋ. १०, २८, ४;

व

वंसग

वंसं वननीयं गच्छतीति वंसगः । —ऋ. १, ५५, १;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

वक्षणा

वक्ष्यन्ते यासूदकानीति वक्षणा नद्यः। —ऋ. ३, ३०, १४;

वक्षी

हविर्वहन्तीति वक्ष्यो ज्वालाः। —ऋ. ५, १६, ५;

वचस्

वक्तीति वचाः स्तोता। —ऋ. २, ३२, १;

वचोयुक्

वचसा युज्येते इति वचयुजा (इंद्रस्य अश्वौ)। —ऋ. १, ७, २;

वज्र

वजति गच्छत्येव शत्रुं न प्रतिहन्यत इति वज्रः। —ऋ. ७, १८, १८;

वध

(१) हन्यतेऽनेनेति वधः। —ऋ. १, ३२, ६;

(२) वध्यन्ते शत्रवोऽनेनेति वधरायुधम्। —ऋ. २, १६, ७;

वन

वन्यन्ते संभज्यन्तेऽस्मिन् देवा इति वनं यज्ञोऽरण्यं वा।
—ऋ १०, २३, २;

वनधिति

वनमुदकमस्यां धीयते इति वनधितिर्मेघमाला। —ऋ. १, १२१, ७;

वनंकरण

वनमुदकं शारीरम्। तत्क्रियते विसृज्यते येन तद्वनंकरणम्।
—ऋ. १०, १६३, ५;

वन्दन

वन्दते स्तौतीति वंदनः। —ऋ. १, ११२, ५;

वपुस्

उप्यन्ते निधीयन्ते इति वंपूषि उषःकाले क्रियमाणानि शस्त्रादीनि कर्माणि। —ऋ. ३, ३६, ३;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

वयुन

अजति वीयते वा वयुनमङ्गम् ।　　　　—ऋ. ३, २९, ३;

वर

(१) व्रियते इति वरः ।　　　　—ऋ. १, ४, ४;

(२) व्रियन्ते देवा अनेनेति वरः ।　　　　—ऋ. १, ८८, २;

(३) वारयत्यनेन शत्रूनिति वरं तेजः ।　　　　—ऋ. २, १०, ६;

वराह

वरमुदकमाहारो यस्य । ………यद्वा वरमाहरतीति वराहारः सन् पृषोदरादित्वात् वराह इत्युच्यते ।　　　　—ऋ. १, ६१, ७;

वरिव

भृशं व्रियतेऽर्थिभिरिति वरिवो धनम् ।　　　　—ऋ. ३, ३४, ७;

वरुण

वृणोति पापकृतः स्वकीयैः पाशैरावृणोतीति रात्र्यभिमानिदेवो वरुणः ।
—ऋ. १, ८९, ३;

वरूथ

(१) वारयति शीतवातादिकमिति वरूथं गृहम् ।　　　　—ऋ. ५, ४६, ५;

(२) वारयन्त्युपद्रवेभ्य इति वरूथानि रक्षणानि ।　　　　—ऋ. ७, ९७, ७;

वर्तनि

वर्ततेऽनेनेति ।　　　　—ऋ. १, २५, ९;

वर्तनी

वृत्यते प्रेर्यतेऽनयेति वर्तनी ।　　　　—ऋ. १, ५३, ८;

वर्ति

वर्ततेऽत्रेति वर्तिर्गृहम् ।　　　　—ऋ. १, ३४, ४; ९२, ६; ८, २२, १७;

वर्तिका

पुनः पुनर्वर्तते प्रतिदिवसमावर्तते इति वर्तिका उषाः ।
—ऋ. १, ११६, १४; ११७, १६;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

वर्धना

वर्धते एभिरिति। —ऋ. १, ५२, ७;

वर्पस्

वर्प इति रूपनाम वृणोति शरीरमिति। —ऋ, ९, ९७, ४७;

वर्षक

स्वरश्मिभिर्भौमान् रसानादाय पुनः वर्षतीति वर्षकः सूर्यः।
—ऋ. ३, ५७, ३;

वल

(१) वृणोतीति वलः। —ऋ. १, ६२, ४;

(२) वलति संवृणोति सर्वमिति वलः। —ऋ. १, ५२, ५;

(३) वृणोत्याकाशमिति वलो मेघः।
—ऋ. ३, ३०, १०; द्र. ३, ३४, १०;

वव्र

(१) व्रियते संभज्यते इति वव्रः। —ऋ. १, ५२, ३;

(२) वृणोत्याच्छादयतीति वव्रं पर्वतबिलान्तर्वर्ति तमः।
—ऋ. ४, १, १३;

वव्रि

वृणोति शरीरमिति वव्रिर्जरा। —ऋ. ९, ६९, ९;

वश

उश्यते काम्यते यजमानेन स्वर्गादिलक्षणं फलं एभिरिति वशाः मनुष्याः।
—ऋ. ३, ६०, ४;

वसति

निवसतीति स्थावरो व्रीह्यादिर्वसतिः। —ऋ. १, ६६, ९-१०;

वसु

(१) वासयति सर्वमिति वसुः। —ऋ. १, ४३, ५;

(२) वसत्याभिमुख्येन तिष्ठतीति वसुः शत्रुः। —ऋ. ३, ५१, ३;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

वसुवित्

वसु विन्दतीति वसुवित् । —ऋ. १, १८, २;

वहतु

उह्यते पुरुषोऽनेनेति वहतुरन्नम् । —ऋ. १०, ३२, ४;

वा

वाति गच्छति स्तुतिं प्राप्नोतीति वाः स्तोता । —ऋ. ६, ५५, १;

वाघत्

वहन्ति यज्ञियां धुरमिति । —ऋ. ३, ३७, २;

वाज

(१) वाजयति गमयति शरीरनिर्वाहं अनेनेति वाजो बलमन्नं वा ।
—ऋ. १, ४, ८; ६;

(२) वाज्यते गम्यतेऽनेनेति वाजः । —ऋ. १, ५२, १;

(३) वजन्ति गच्छन्तीति वाजाः मासाः । —ऋ. ३, २७, १; ३०, ११;

(४) वाजयन्ति गच्छन्ति योद्धारोऽत्रेति वाजयन्त्यायुधान्यत्रेति वा वाजः संग्राम । —ऋ. ८, २१, १;

वाजदावन्

वाजं ददतीति वाजदावानः । —ऋ. १, १७, ४;

वाजसातम

वाजं सनोतीति वाजसाः । —ऋ. १, २८, ७;

वाजिनीवसू (इंद्रवायू)

वाजिनीशब्दो यद्यपि उषोनामसु पठितस्तथाप्यत्रासंभवान्न गृह्यते । वाजोऽन्नम् । तद्यस्यां हविः संततावस्ति सा वाजिनी । तस्यां वसत इति ।
—ऋ. १, २, ५;

वाताप्य

वातेनाप्यतेऽधस्तान्निपात्यत इति वाताप्यमुदकम् । —ऋ. १०, १०५, १;

वान

वन्यते संभज्यते इति वानं हविः । —ऋ. ३, ४०, ३;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

वायु

वान्ति गच्छन्तीति वायवः पृषत्यः । —ऋ. ८, ७, ३;

वार

वारयति दंशमशकानिति वारः । —ऋ. १, ३२, १०;

वाश्र

वाश्यन्ते इति वाश्राः । —ऋ. १, ३२, २;

वास

(१) वासयति प्रकाशेनाच्छादयतीति अहर्वासः । —ऋ. १, ३४, १;

(२) वस्ते सर्वमाच्छादयतीति प्रकाशो वासः । —ऋ. १, ११३, ७;

वाह

इन्द्रं प्रति उह्यत इति वाहः सोम उच्यते । —ऋ. १०, २९, ३;

वि

(१) वियन्ति गच्छन्तीति वयः अश्वाः । —ऋ. १, ४६, ३;

(२) वियन्ति रथेन सह संगच्छते इति विशब्देन रश्मय उच्यन्ते ।
—ऋ. १, १०४, १;

विगद

विविधं गदन्ति शब्दायन्ते । —ऋ. १०, ११६, ५;

विज्

विजन्ति चलन्तीति विजः पक्षिणः । —ऋ. १, ९२, १०;

विट्

विशन्ति प्रविशन्ति गर्भाशयमिति विशः प्रजाः । —ऋ. ५, ९, ३;

विदथ

(१) विद्यते फलसाधनत्वेन ज्ञायते इति विदथो यज्ञः ।
—ऋ. १, ४०, ६;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

(२) विदन्त्येषु यष्टव्यतया देवानिति विदथाः यज्ञाः ।
—ऋ. १, १८५, १; २, २४, १६; ७, ९३, ३;

(३) विदन्ति जानन्त्यत्र देवानिति यद्वा विदन्ति लभन्त इति विदथाः यज्ञाः । —ऋ. ९, ९७, ५६;

विदथ्य

विदन्त्येषु देवानिति विदथाः यज्ञाः । तदर्हम् । —ऋ. १, ९१, २०;

विदद्वसु

विदन्ति औदार्यातिशयवत्तया ज्ञापयन्ति वसूनि धनानि यं स विदद्वसुः ।
—ऋ. १, ६, ६;

विपन्यु

विविधं पनं पननं स्तुतिं यातीति विपन्युः । —ऋ. ३, १०, ८;

विपश्चित्

विशेषेण पातीति विपा वाक् । विपो वाचश्चिनोतीति ।
—ऋ. ३, २६, ९;

विपा

हवींष्यग्नौ प्रेरयन्तीति विपोऽङ्गुलयः । —ऋ. ९, ६५, १२;

विभु

विभवतीति विभुः । —ऋ. १, ९, ५;

विमान

(१) विमीयते फलमिति विमानं यज्ञादिकर्मसाधनम् । —ऋ. ३, ३, ४;

(२) विमीयन्ते निर्मीयन्तेऽस्मिन्नाप इति विमानमन्तरिक्षम् ।
—ऋ. १०, १२३, १;

विमुक्

(१) उदकं विमुञ्चतीति विमुङ् । —ऋ. १, ४२, १;

(२) विमुञ्चति सृष्टिकाले स्वसकाशात् सर्वाः प्रजा विसृजतीति विमुक् प्रजापतिः । —ऋ. ६, ५५, १;

T　CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

विरप्शिन्

विविधं शब्दं रपन्ति इति विरप्शाः स्तोतारः। ते एषां सन्तीति विरप्शिनः। —ऋ. १, ६४, १०;

विरप्शिनी

विचित्रं रपणं विरप्। तदेषामस्तीति विरप्शानि वाक्यानि। तानि यस्यां वाचि सन्ति सा वाक् विरप्शिनी। —ऋ. १, ८, ८;

विराट्

विविधानि राजन्ते वस्तून्यत्रेति विराट्। —ऋ. १०, ९०, ५;

विराषाट्

वूर्यन्ते इति विराः·········तान् सहते इति विराषाट्। —ऋ. १, ३५, ६;

विश्वचक्षस्

विश्वं चष्टे प्रकाशयतीति विश्वचक्षाः। —ऋ. १, ५०, २;

विश्वतू

तूर्वतीति तूः। तुर्वी हिंसार्थः। विश्वेषां तूः विश्वतूः।
—ऋ. १, ४८, १६;

विश्वमिन्व

(१) विश्वमिन्वति व्याप्नोतीति विश्वमिन्वम्। —ऋ. १, ६१, ५;

(२) विश्वमिन्वति प्रीणयतीति विश्वमिन्वः। —ऋ. ३, २०, ३;

विश्ववेदस्

विश्वानि वेत्तीति। —ऋ. १, ३६, ३; ४४, ७; ८९, ६;

विश्वाची

विश्वं सर्वं हविरञ्चति गच्छतीति विश्वाची। —ऋ. ७, ४३, ३;

विश्वायुपोषस्

विश्वमायुर्यस्मिन् शरीरादौ तद्विश्वायुः। ···········तत्पुष्णातीति विश्वायुपोषाः। —ऋ. १, ७९, ९;

विषुद्रुह

विश्वान् हिनस्ति शत्रूनिति विषुद्रुहः शरः। —ऋ. ८, २६, १५;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

विषूची

पुण्यकृतोऽपुण्यकृतश्च प्राप्नोतीति विषूची। —ऋ. ३, ५५, १५;

विष्णापू

विष्ण्वादीन् कर्मणा व्याप्नोतीति……यद्वा। विष्णुं सर्वग्रहेषु व्याप्तं सोमं दशापवित्रेणापुनातीति। —ऋ. ८, ८७, ३;

विष्वाचू

विषु नाना आभिमुख्येन अञ्चतीति। —ऋ. १, ११७, १६;

विहव

विविधमाहूयन्ते येषु शूरा इति विहवाः संग्रामाः। —ऋ. १०, १२८, १;

विहायस्

विजहाति उत्सृजत्यर्थानर्थिभ्य इति विहाया महान्। —ऋ. ३, ३६, २;

वीर

(१) विशेषेण ईरयन्त्यमित्रानिति वीरा भटाः। —ऋ. १, ५१, १५;

(२) वीरयन्ति विक्रान्ता भवन्तीति वीरा देवाः। —ऋ. १, ५२, १३;

(३) वीर्याज्जायन्ते इति वीराः पुत्राः।

—ऋ. १,७३,६; ११४,३; ६,४६,१५;

(४) विविधमीरयन्ति शत्रूनिति वा वीराः शूराः। —ऋ. ८, ५, १०;

वीळुपत्मन्

वीळु बलवत् पतन्तीति वीळुपत्मानः। —ऋ. १, ११६, २;

वीळुहरस्

हरति विनाशयति तमांसीति हरस्तेजः। प्रभूततेजस्कः।

—ऋ. १०, १०६, १;

वृक

वृकते इति वृकः। वृक आदाने। —ऋ. १, ४२, २;

वृक्ष

(१) वृश्च्यते इति वृक्षो देहः। —ऋ. १, १६४, २०;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

(२) वृश्च्यते विदार्यत इति वृक्षो मेघः। —ऋ. ५, ५४, ६;

(३) वृश्च्यन्त इति वृक्षाः केशाः। —ऋ. ८, ७४, १३;

वृजन

(१) वर्ज्यते इति वृजनं प्राणिजातम्। —ऋ. १, ४८, ५;

(२) वर्ज्यन्ते हिंस्यन्तेऽस्मिन्निति वृजनं संग्रामः।
—ऋ. १, ७३, २; द्र. ३, ३४, ६;

(३) वृज्यतेऽनेनेति वृजनं बलम्। —ऋ. १, ९१, २१;

(४) वृज्यते रिक्तीक्रियते इति वृजनं गृहम्। —ऋ. १, १०१, ८;

वृत्

(१) वर्तन्ते आस्विति वृतोऽसुरपुरीः। —ऋ. १, १७४, ३;

(२) वृण्वन्त्याच्छादयन्ति लोकानिति वृतः शत्रुसेनाः।
—ऋ. ४, १७, ९;

वृत्तंचय

वर्तते पुनः पुनरभिमुखमागच्छतीति वृत् शत्रुः। तं चयते हिनस्तीति वृत्तंचयः। —ऋ. २, २१, ३;

वृत्र

(१) प्रतिकूलतया वर्तन्ते इति वृत्राणि शत्रुकुलानि। —ऋ. १, ७, ५;

(२) वृणोत्याकाशमिति वृत्रो मेघः।
—ऋ. २, १४, २; द्र. ३, ३०, ८; ३३, ६;

वृत्रखाद

वृत्रं खादति हिनस्तीति वृत्रखादः। —ऋ. ३, ४५, २;

वृत्रतर

अतिशयेन लोकानां आवरकं·······यद्वा। वृत्रैः आवरणैः सर्वान् शत्रून् तरति। —ऋ. १, ३२, ५;

वृत्रतूर्य

वृत्रस्तूर्यते हिंस्यतेऽत्रेति वृत्रतूर्यः संग्रामः। —ऋ. १०, ६६, ८;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

वृत्रहत्य

वृत्राणि शत्रवो हन्यन्तेऽत्रेति वृत्रहत्या युद्धानि । —ऋ. १०, ६५, २;

वृषन्

फलं वर्षतीति वृषा यज्ञः । —ऋ. १०, ६४, ६;

वृष्टि

वृष्यते सिच्यते अनेनेति वृष्टिः । —ऋ. १, ११६, १२;

वेद

विद्यते लभ्यते इति वेदः धनम् । —ऋ. १, ६९, १;

वेदिषत्

वेद्यां सीदते नित्यम् । —ऋ. १, १४०, १;

वैलस्थान

बिलशब्दो गर्तसमानार्थः । स च गर्तः श्मशानवचनः । ......तत्र शवाः क्षिप्यन्ते इति वैलस्थानं श्मशानम् । —ऋ. १, १३३, १;

वैश्वानर

(१) अग्निर्वैश्वानरः । विश्वेषां नराणां लोकान्तरं प्रति नेतृतया संबंधी वैश्वानरः । यद्वा विश्वे सर्वे नरा एनमग्निं यज्ञादौ प्रीणयन्तीति तत्संबंधाद् वैश्वानरः । —ऋ. १, ५९, ६;

(२) विश्व एनं नरा नयन्तीति वैश्वानरः । —ऋ. ५, ५१, १३;

व्युष्टि

विशेषेणोच्छ्यन्ते तमसा वर्जयन्ते इति व्युष्टयः उषःकालाः ।

—ऋ. १, ४४, ३; ४४, ८;

व्योम

विशेषेण गच्छति व्याप्नोतीति व्योम । यद्वा । वृष्टिप्रदानेन विशेषेण प्राणिनोऽवति रक्षतीति व्योम । —ऋ. १, ५२, १२;

व्रा

(१) वृणोति तमसा सर्वमाच्छादयतीति व्रा रात्रिः । ......यद्वा । प्रकाशेन वृणोतीति व्रा उषाः । —ऋ. १, १२१, २;

(२) व्रियन्त इति व्राः वाताः । —ऋ. १, १२६, ५;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

श

शंस

शंस्यते कीर्त्यते इति शंसोऽभिशापः । —ऋ. १, ९४, ८;

शक्र

शक्नोतीति शक्रः । —ऋ. १, १०, ६;

शग्म्य

शं सुखं गच्छन्तीति । —ऋ. ३, ३१, १;

शतदावन्

शतमपरिमितमर्थिभ्यो धनं ददातीति शतदावा । —ऋ. ५, २७, ६;

शतदुर

शतं दुरा द्वाराणि येषाम् । ·······द्वर्यन्ते संव्रियन्ते इति दुराः ।
—ऋ. १, ५१, ३;

शतर

शतरा शतसंख्याकानि बहूनि रायो धनानि ययोः तौ । यद्वा शतमनेकमिन्द्रियप्रसादादि राति ददातीति शतरा सुखम् ।
—ऋ. १०, १०६, ५;

शमी

(१) शमयन्ति पापानीति शम्यः कर्माणि । —ऋ. १, २०, २;

(२) शाम्यत्यनया क्रियया दोषजातमिति शमी । —ऋ. १, ८३, ४;

शम्बर

शमयतीति शम्ब आयुधम् । मत्वर्थीयो रप्रत्ययः । —ऋ. १, १०३, ८;

शम्भु

शं सुखमस्माद् भवतीति । —ऋ. ३, १८, ५;

शयुत्र (अश्विनौ)

शयुं त्रायेते इति शयुत्रौ । —ऋ. १, ११७, १२;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

शरण

शृणन्ति शीतादिक्लेशमिति शरणानि गृहाः । —ऋ. ३, ६२, ३;

शरत्

शीर्यन्तेऽस्यां ओषधयः इति शरत् संवत्सरः ।
—ऋ. १, ७२, ३; द्र. ३, ३२, ६;

शरु

(१) शृणाति शत्रूननेनेति शरुर्वज्रः । —ऋ. २, १२, १०;

(२) शृणाति पक्वा ओषधीरिति शरुः शरत् संवत्सरः ।
—ऋ. ४, ३, ७;

शर्ध

(१) शर्धयत्यनेन शत्रूनिति शर्धो बलम् । —ऋ. १, ३७, १; ४;

(२) शर्ध्यते प्रसह्यते अनेन पर्वतादिकमिति शर्धो मरुत्संघः ।
—ऋ. १, ६४, १;

शर्म

शृणाति हिनस्ति दुःखमिति शर्म । —ऋ. १, २१, ६; द्र. ८, २७, ६;

शर्य

शीर्यन्ते इति शर्याः योद्धारः । —ऋ. १, ११६, १०;

शाक

शक्नोत्येभिरिन्द्र इति शाकाः सहायभूताः मरुतः । —ऋ. ३, ५१, २;

शाचिपूजन

पूज्यतेऽनेनेति पूजनम् स्तोत्रादि । प्रख्यातपूजनः । —ऋ. ८, १७, १२;

शातपन्त

शातं तीक्ष्णम् । ....यद्वा शातेन दुःखानां तनूकरणेन पन्यते स्तूयत इति शातपन्तं सुखम् ।

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

शातवनेय

शतसंख्याकान् क्रतून् वनति संभजते इति शतवनिः। तस्य पुत्रः शातवनेयः। —ऋ. १, ५९, ७;

शासनी

शिष्यतेऽनयेति शासनी। —ऋ. १, ३१, ११;

शास्

विशस्यते हिंस्यतेऽनेनेति शासशब्द आयुधवाची। —ऋ. ७, ४८, ३;

शिम्यु

शमयति सर्वं तिरस्करोतीति राक्षसादिः शिम्युः। —ऋ. १, १००, १८;

शिरिणा

शीर्यन्तेऽस्यां भूतानीति शिरिणा रात्रिः। —ऋ. २, १०, ३;

शिरिम्बिठ

बिठमन्तरिक्षम्। शीर्यते बिठेऽन्तरिक्ष इति शिरिम्बिठो मेघः।
—ऋ. १०, १५५, १;

शिश्नदेव

शिश्नेन दीव्यन्ति क्रीडन्त इति शिश्नदेवाः। —ऋ. ७, २१, ५;

शुचिबन्धु

बध्नन्ति शत्रूनिति बन्धूनि तेजांसि बलानि वा। दीप्ततेजस्कः।
—ऋ. ६, ९७, ७;

शुतुद्री

शु क्षिप्रं तु तुन्ना तुन्नेव द्रवति गच्छतीति शुतुद्री। —ऋ. ३, ३३, १;

शुनहोत्र

सुखेन हूयते सोमो यैरिति शुनहोत्राः पात्रविशेषाः। —ऋ. २, १८, ६;

शुन्ध्यु

(सूर्ये) अस्मिन् उदिते सति ब्राह्मणा आत्मीयं कर्म कृत्वा शुद्धा भवन्तीति शुन्ध्युरादित्यः। —ऋ. ८, २४, २४;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

शुप्

शोभते दीप्यते इति शुबुदकम् । —ऋ. १, १६७, ६;

शुरुध्

(१) शुचा रुन्धन्ति परानिति । —ऋ. ६, ७०, ५;

(२) शुचं रुन्धन्तीति । —ऋ. १, ७२, ७; द्र. ७, २३, २;

शुष्ण

(१) शोषयतीति शुष्णः । —ऋ. १, ३३, १२; ३, ३१, ८;

(२) शोषयति सर्वमिति शुष्णः कश्चिदसुरः । —ऋ. २, १९, ६;

शूरसाति

शूराः स्यन्ति खिद्यन्तेऽत्रेति शूराः सीयन्ते विनाश्यन्ते योद्धृभिरत्रेति । —ऋ. १०, ६३, १४;

शृङ्ग

शृणन्ति हिंसन्ति तमांसीति शृङ्गाणि तेजांसि । —ऋ. ६, ६७, ६;

शृङ्गवृट्

शृङ्गवृषा नाम कश्चिद् ऋषिः । तस्य चेन्द्रः स्वयमेव पुत्रतया जज्ञ इत्याख्यायिका । यद्वा । शृणन्ति हिंसन्तीति शृंगाणि रश्मयः । तैर्वर्षतीति शृङ्गवृडादित्यः । —ऋ. ८, १७, १३;

शेवृधास्

शं सुखं वर्धयतीति । —ऋ. ३, १६, २;

शौरदेवी

दीव्यन्ति क्रीडन्त इति देवा योद्धारः । शूराश्च ते देवाश्च शूरदेवाः । तेषां हितं शौरदेवं युद्धम् । तत्सम्बन्धिन्यो गाः । —ऋ. ८, ७०, १५;

श्मशा

अश्नुते क्षेत्रमिति श्मा कुल्या । —ऋ. १०, १०५, १;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

श्मश्रु

श्मव: श्रयन्त्यस्मिन्निति व्युत्पत्ते: श्मश्रु युद्धमिति वृद्धा वदन्ति ।
—ऋ. ८, ३३, ६;

श्रमयु

श्रमेण यूयन्ते इति श्रमयुव: ।　—ऋ. १, ७२, २;

श्रवस्

श्रूयते इति श्रव: ।　—ऋ. १, ४०, ४;

श्रावयत्पति

श्रावयति विश्रुतान् करोति पतीन् स्वकर्मणा इति श्रावयत्पति: ।
—ऋ. ५, २५, ५;

श्रुष्टि

(१) शु आशु अश्नुते व्याप्नोतीति श्रुष्टिर्यज्ञफलरूपं सुखम् ।
—ऋ. १, ६९, ७-८;

(२) शु आशु अश्नुते कर्मणि व्याप्नोतीति श्रुष्टिर्यजमान: ।
—ऋ. १, ६७, १-२;

श्रुष्टीवन्

श्रुष्टिं वनन्ति संभजन्ते इति श्रुष्टीवान: ।
—ऋ. १, ४५, २; द्र. ३, २७, २;

श्लोक

श्लोक्यते शस्यतेऽनेनेति श्लोक: शस्त्रम् ।　—ऋ. ३, ५३, १०;

श्वघ्नी

श्वभिर्मृगान् हन्तीति श्वघ्नी व्याघ्र: ।　—ऋ. २, १२, ४;

श्वसन

अन्तरिक्षे श्वसितीति श्वसनो वायु: ।　—ऋ. १, ५४, ५;

श्वित्यञ्च्

श्वित्यं श्वेतवर्णमञ्चन्तीति श्वित्यञ्च: ।　—ऋ. ७, ३३, १;

T　CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

श्वेतयावरी

श्वेतजला यातीति श्वेतयावरी । —ऋ. ८, २६, १८;

स

संका

सह कायन्ति शब्दायन्त इति संकाः । —ऋ. ६, ७५, ५;

संगम

ऋत्विजोऽत्र संगच्छन्त इति संगमः । —ऋ. १०, १०७, ४;

संगव

संगच्छन्ते गावो दोहभूमिं यस्मिन् काले स संगवः । —ऋ. ५, ७७, ३;

संदृक्

सम्यक् पश्यन्तीति संदृशो जनाः । —ऋ. २, १३, १०;

संवत्स

संवसन्ति भूतान्यस्मिन्निति संवत्सः संवत्सरः । —ऋ. ४, ३३, ४;

संसद्

सम्यक् यज्ञेषु कर्मकरणार्थं सीदन्तीति संसदः होत्रकाः ।
—ऋ. ८, ९२, २०;

संस्थ

सम्यक् तिष्ठतीति संस्थो रथः । —ऋ. १, ५, ४;

सखाय

समानाः सन्तः ख्यान्ति प्रकाशन्ते इति सखायः । —ऋ. १, २२, ८;

सचिविद्

सचिशब्दः सखिवाची । योऽध्येता स वेदस्य सखा संप्रदायोच्छेदनिवारकत्वेन वेदं प्रत्युपकारित्वात् । तादृशमुपकारिणमध्येतारं वेत्तीति सचिवित् । —ऋ. १०, ७१, ६;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

सजोषस्

समानं जुषन्तीति सजोषस: । —ऋ. १, ४३, ३; द्र. १, ६५, १;

सत्यताति

सत्यं तनोतीति वा सत्यं तायते यस्मिन्निति वा सत्यताति: ।

—ऋ. [illegible], ४, १४;

सत्रादावन्

सत्राशब्द: सहार्थे । अभिमतफलजातं सकलं सह ददातीति सत्रा[illegible]

—ऋ. [illegible], ६;

सदन

सीदन्त्यस्मिन् गन्धर्वादय इति सदनमन्तरिक्षम् । —ऋ. १, [illegible]

सद्मन्

सीदन्त्यनयोर्देवमनुष्या इति सद्मनी रोदसी । —ऋ. ३, ५[illegible]

सद्ममखस्

सीदतीति सद्म । —ऋ. १, १८, ९;

सधमाद

(१) सह मादयतीति सधमाद: । —ऋ. १, ३०, १३;

(२) सह माद्यन्त्येष्विति सधमादा: यज्ञा: । —ऋ. १, ५१, ८;

(३) माद्यन्ति योद्धारोऽत्रेति मादो युद्धम् ।

—ऋ. ३, ३५, ४; द्र. [illegible], १५;

(४) सोमपानेन सह माद्यन्तीति सधमाद: । —ऋ. ७, १८, ७;

सदस्

सीदन्त्यस्मिन्निति सदस् । —ऋ. १, ४[illegible]

सधस्थ

सह तिष्ठन्त्यस्मिन्निति सधस्थं गृहम् । —ऋ. २, ५१, ६;

सध्र्यङ्

सह अञ्चतीति । —ऋ. [illegible], ११;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

सनक

सन्वन्ति ददतीति सनाः दातारः। सनान् कायन्तीति शब्दयन्तीति सनकाः। सनका इत्यसुराणां नाम। —ऋ. १, ३३, ४;

सप्तधातु

धार्यन्ते क्रियन्ते कर्माण्येष्विति धातवः छन्दांसि ऋतवो वा। सप्तच्छन्दस्कः……। —ऋ. १०, ३२, ४;

सप्तरश्मि

अश्नुवते व्याप्नुवन्ति कर्माणीति रश्मयश्छन्दांसि। सप्तसंख्याकानि गायत्र्यादीनि छन्दांसि यस्य सः। —ऋ. २, १८, १;

सबर्दुघा

सबः पयः दोग्धीति सबर्दुघा। —ऋ. १, २०, ३;

सबाध

रक्षोघ्नमंत्रोच्चारणेन तद्विषयबाधया सह वर्तन्त इति सबाधः ऋत्विजः। —ऋ. ३, ५१, ४;

समत्

समानं माद्यन्त्येष्विति समदः संग्रामाः। यद्वा। सम्यगत्ति भक्षयति वीरान् इति समत्। —ऋ. १, ६६, ५-६; द्र. २, १२, ३; ३, ३०, ३२;

समन

(१) समन्ति कर्माणि धृष्टाः प्रगल्भा यन्त्यत्रेति समना यज्ञाः। —ऋ. ६, ६७, ४७;

(२) समानं मन्यन्तेऽस्मिन् देवानिति समनो यज्ञः। —ऋ. ६, ४, १;

समनगा

सम्यगननहेतवः आपः समनाः। ता गच्छन्तीति समनगाः विद्युतः। यद्वा। सम्यगननाय गच्छन्तीति समनगाः सूर्यरश्मयः। —ऋ. १, १२४, ८;

समना

सह युगपदेव मन्यतेऽवबुध्यते प्राणिभिरिति समना। —ऋ. १, १२४, ३;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

समिति

संग्रामनामैतत् सम्यक् प्राप्यते योद्धृभिरत्रेति । —ऋ. ९, ९२, ६;

समिथ

संयन्ति संगच्छन्तेऽस्मिन् वीरा इति समिथानि संग्रामा: ।

—ऋ. १, ५५, ५; द्र. २, २४, १३;

समीची

संयन्तीति समीच्य: । —ऋ. ३, २९, १३;

समुद्र

(१) सम्मोदन्तेऽस्मिन्यजमाना इति वा समुद्रोऽग्नि: पार्थिव: अथवा समुद्द्रवन्त्यापोऽस्मादिति व्युत्पत्त्या वैद्युतोऽग्नि: ।

—ऋ. ४, ५८, १; द्र ५, ४७, ३;

(२) समुद्द्रवन्त्यस्मादाप इति समुद्रमन्तरिक्षम् । —ऋ. ७, ८७, १;

(३) समुदन्तीति उदकान्येव समुद्राणि । —ऋ. ६, ७२, ३;

सयावन्

समानं यान्तीति सयावान: । —ऋ. १, ४४, १३;

सरमा

सरतीति सरमा । —ऋ. ३, ३१, ६;

सर्ग

(१) सृज्यते युद्धभूमौ सादिना प्रेर्यत इति सर्गोऽश्व: ।

—ऋ. ७, ८७, १;

(२) सृज्यन्त इति सर्गा: धारा: । —ऋ. ९, ६६, १०; द्र. १०, २५, ४;

सर्पिरासुति

सर्पि: आसूयते आसिच्यते यस्मिन् तादृश: । —ऋ. २, ७, ६;

सर्वताति

(१) सर्वै: ऋत्विग्भिस्तायते इति सर्वतातिर्यज्ञ: । —ऋ. ६, ५६, ६;

(२) सर्वे तायन्तेऽस्यामिति सर्वताति: । —ऋ. १०, १००, १;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

सर्वदा

अन्तरिक्षं स्पृशन् सर्वतो दहतीति सर्वदा दावाग्निरूपेण स्तूयते ।

—ऋ. १, १४१, ८;

सर्वसेन

इनेन सह वर्तत इति सेना । सर्वा सरणशीला सेना यस्येति ।

—ऋ. १, ३३, ३;

सर्वहुत्

सर्वात्मकः पुरुषः यस्मिन् यज्ञे हूयते सोऽयं सर्वहुत् । —ऋ. १०, ९०, ८;

सव

सूयन्ते सोमाः एष्विति सवाः सोमयागाः । —ऋ. १, १२६, १;

सवन

सूयते सोम एष्विति सवनानि ।

—ऋ. १, ४, २; ४७, ८; द्र. १, १६, ५; ५१, १३;

सवना

सूयते सोमो यत्रेति सवनानि प्रातरादीनि । —ऋ. ३, ३०, २;

सहदानु

दानुभिर्दानवैः सह वर्तत इति सहदानुः । —ऋ. ३, ३०, ८;

सहवसु

वसुना सह वर्तत इति सहवसुः । —ऋ. २, १३, ८;

सहस्

सहत्यनेन शत्रूनिति सहो बलम् । —ऋ. ५, ९, ७;

सहस्कृत्

सहतेऽभिभवत्यनेनेति सहो बलम् । तेन क्रियते इति सहस्कृतः ।

—ऋ. १, ४५, ९;

सहस्रमुष्क

मुष्णन्ति तमांस्यपहरन्तीति मुष्काणि तेजांसि । बहुतेजस्कम् ।

—ऋ. ८, १९, ३२;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

सहस्रसाव

(१) सहस्रं सूयतेऽत्रेति सहस्रसावोऽश्वमेधः। —ऋ. ३, ५३, ७;

(२) सहस्रसंख्याका ओषधयः सूयन्त उत्पद्यन्त इति वर्षर्तुः सहस्रसावः। —ऋ. ३, १०३, १०;

सहस्रसा

सहस्रं सनोतीति सहस्रसाः। —ऋ. १, ९, ८; १०;

साति

सीयते म्रियतेऽस्मिन्निति सातिः संग्रामः : —ऋ. ६, ६६, ६;

सानु

सनोति ददाति निवसतामवकाशमिति सानुः। —ऋ. १, १०, २;

सायक

सिनोतीति सायकः। —ऋ. १, ३२, ३;

सिन्धु

स्यन्दते इतस्ततः संचरतीति सिन्धुर्मेघः। —ऋ. २, ११, ६;

सुग

(१) सुष्ठु गच्छन्ति एषु इति। —ऋ. १, ३५, ११; ४२, ७;

(२) सुष्ठु गम्यतेऽस्मिन्निति सुगम्। —ऋ. १, १०६, ५;

सुतपावन्

सुतं पिबतीति सुतपावा। —ऋ. १, ५, ५;

सुतेकर

सोमं सुतमभिषुतं कुर्वन्तीति सुतेकरा ऋत्विजः। —ऋ. १०, ७१, ६;

सुदा

सुष्ठु ददातीति सुदाः। —ऋ. १, ४७, ६; ७, ८३, ४;

सुदास्

शोभनं ददातीति। —ऋ. १, ६३, ७;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

सुदिन

येषु दिनेषु इन्द्रादयो वरीयांसो देवा इज्यन्ते तानि सुदिनानि ।

—ऋ. ३, २३, ४;

सुधू

शोभनं धूर्वति दारिद्र्यं हिनस्तीति सुधूः । —ऋ. १, ७३, १०;

सुधृष्टम

शोभनं धृष्णोतीति सुधृक्……तमप् । —ऋ. १, १८, ६;

सुप्रणीति

प्रणीयत इति प्रणीतिः । —ऋ. १, ७३, १;

सुप्रावी

सुष्ठु प्रकर्षेणावति रक्षतीति सुप्रावीः । —ऋ. १, ६०, १;

सुभु

सुष्ठु भवन्तीति सुभ्वः स्तोतारः । —ऋ. १, ५२, १;

सुमत्

सुतरां मादयतीति सुमत् । —ऋ. १, १५६, २;

सुम्न

सुष्ठु म्नायतेऽभ्यस्यते इति सुम्नम् । —ऋ. १, ४१, ८;

सुयम

सुष्ठु नियम्यतेऽनेन पुरुषो गृहे इति सुयमः । —ऋ. २, २७, १७;

सुयमा

यम्यते नियम्यत इति यमो विग्रहः । सुविग्रहा सरस्वती ।

—ऋ. ६, ८१, ४;

सुरण

(१) शोभनं रमयतीति सुरमणः । —ऋ. ३, ३, ६;

(२) सुष्ठु रणयति शब्दयतीति सुरणः । —ऋ. ३, २६, १४;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

सुराधस्

राध्नोति अनेन इति राधः अन्नम् । शोभनं राधः येषां ते ।

—ऋ. १, २३, ६;

सुरूपकृत्नु

करोतीति कृत्नुः । —ऋ. १, ४, १;

सुवित्

(१) शोभनं गम्यतेऽस्मिन्निति तत् सुवितम् । —ऋ. ३, ५४, ३;

(२) सुष्ठु ईयते सर्वैरागम्यत इति सुवितोऽभ्युदयः ।

—ऋ. ८, २७, १०;

सुवृजना

वृज्यते परित्यज्यते दारिद्र्यमनेनेति वृजनं धनम् । शोभनं वृजनं यासां ताः सुवृजनाः । —ऋ. १०, १५, २;

सुवृत्

शोभनं वर्तते इति सुवृत् । —ऋ. १, १११, १;

सुशर्मन्

दुःखं शृणातीति । —ऋ. ३, १५, १;

सुशस्ति

शस्यते आभिरिति शस्तयः । —ऋ. १, २०, ७;

सुषुमत्

ओषध्यात्मना स्थितोंऽशुः सुष्ठु सूयत इति सुषुः सोमः तेन तद्वान् वा ।

—ऋ. १०, ३, १;

सूक्त

सुष्ठु स्तुवते देवताः प्रकाशयन्तीति सूक्तानि । —ऋ. १, ४२, १०;

सूनर

सुखेन नीयते इति सूनरम् । —ऋ. १, ४०, ४;

सूनरी

सुष्ठु नयतीति सूनरी । —ऋ. १, ४८, ५;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

सूनृत

(१) सुतरां ऊनयति अप्रियं इति सून् इति प्रियमुच्यते। तच्च तदृतं सत्यं चेति सूनृतम्। —ऋ. १, ३, ११; ३, ३१, १८;

(२) सुखेन नीयते इति सूनरम्। —ऋ. १, ४०. ४;

सूनृता

सुतरां ऊनयति अप्रियमिति सून्। सा चासौ ऋता सत्या चेति सूनृता प्रियसत्या वाक्। —ऋ. १, ८, ८; २२, ३;

सूर

सुवति प्रेरयतीति सूर आदित्यः। —ऋ. ३, ३०, १२;

सूरचक्षस्

सुवतीति सूरः। सूरवत् ख्यानं प्रकाशो येषां ते। —ऋ. १, १६, १;

सूर्य

(१) सुवति प्रेरयतीति सूर्यः। —ऋ. १, ७, ३; ३५, ७;

(२) सरति गच्छतीत्यायुरत्र सूर्यो विवक्षितः। —ऋ. ७, ३०, २;

सूर्यत्वक्

त्वचति संवृणोतीति त्वक् रश्मिः। सूर्यस्य त्वगिव त्वग्यस्य। —ऋ. १, ४७, ६;

सूर्यामास

माति स्वकलाभिस्तिथीनिति माश्चन्द्रमाः। —ऋ. ८, ९४, २;

सृणि

सरतीति सृणिः। —ऋ. १, ५८, ४;

सेना

इनेन सह वर्तते इति सेना। —ऋ. १, ६६, ७-८;

सोमधान

(१) सोमो निधीयते येष्विति सोमधानाः। —ऋ. ३, ३६, ८;

(२) सोमो निधीयतेऽस्मिन्निति सोमधानः कलशः। —ऋ. ९, १०८, १६;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

सोमपर्वन्

लतारूपं सोमं पृणन्ति पूरयन्तीति सोमपर्वाणः सोमरसाः।

—ऋ. १, ९, १;

सोमपातम

सोमं पिबतीति सोमपाः। —ऋ. १, ८, ७;

स्कम्भ

स्कम्भन्ते प्रतिबद्धा भवन्तीति स्कम्भाः। —ऋ. १, ३४, २;

स्तनाभुक्

स्तनैर्भुञ्जन्ति पालयन्तीति स्तनाभुजः। —ऋ. १, १२०, ८;

स्तरी

स्तीर्यते आच्छाद्यते प्रसवसामर्थ्याभावेन इति स्तरीः।

—ऋ. १, ११६, २२;

स्तिप

(१) स्त्यायन्त इति स्तयो गृहाः। तान् पात इति स्तिपौ।

—ऋ. ७, ६६, ३;

(२) पस्त्यं गृहम्। तस्य रक्षकः। यद्वा उपस्थितान् ज्योतिष्टोमादीन् यागान् पालयतीति स्तिपाः। —ऋ. १०, ६९, ४;

स्तुति

स्तूयतेऽनया इति स्तुतिरिति क्तिना करणभूता ऋक् अभिधीयते। अथवा सुष्ठु स्तुवन्तीति सुष्टुतय इति करणभूता ऋचः। —ऋ. १, ७, ७;

स्तुत्

स्तुवन्तीति स्तुतः स्तोतारः। —ऋ. ६, ६३, ८;

स्तूप

स्तूयते इति स्तूपः तेजसंघः। —ऋ. ३, २९, ३;

स्तोम

(१) स्तूयतेऽनेनेति स्तोमः। —ऋ. १, १२, १२;

(२) स्तूयन्ते एभिरिति स्तोमाः स्तोत्राणि। —ऋ. ३, ५४, १४;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

स्तोमवाहस् (ऋत्विक्)

स्तोमं वहन्तीति स्तोमवाहसः। त्रिवृत्पंचदशादिस्तोमान् अस्मिन् कर्मणि वहन्ति प्रापयन्तीति। —ऋ. १, ५, १;

स्नेहिति

स्नेह्यन्ते हिंस्यन्ते प्रजा आभिरिति स्नेहितयः। —ऋ. १, ७४, २;

स्पश्

स्पशन्ति स्पृशन्तीति स्पृशश्चराः। —ऋ. ७, ८७, ३;

स्पृहयद्वर्ण

यादृशं वर्णं यजमानः स्पृहयति तादृशवर्णोपेतः। —ऋ. २, १०, ५;

स्मद्रातिषाच्

स्मत् सुमच्छोभना रातिः हविष्प्रदानं येषामस्तीति स्मद्रातयो यजमाना.। तान् सचन्ते धनादिप्रदानेन सेवन्ते इति। —ऋ. ८, २८, ३;

स्रक्

सृज्यते उत्पाद्यते रूपमनयेति स्रगलंकृतिः। —ऋ. ४, ३८, ६;

स्वधा

(१) स्वं लोकं दधाति पुष्णातीति स्वधा।

—ऋ. १, ६, ४; ३, ३५, १०;

(२) स्वेन लोकान् दधातीति स्वधा। —ऋ. ३, २६, ८;

स्वधिति

स्वा स्वकीया निशितधारा धीयते प्रक्षिप्यतेऽनेनेति स्वधितिः खड्गः।

—ऋ. ३, ८, ६;

स्वयावान्

स्वयमेवासहायः सन् दिवि संग्रामे वा यातीति स्वयावान्।

—ऋ. ८, २५, १२;

स्वराट्

स्वभासा राजत इति स्वराट्। —ऋ. १, ३६, ७;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

स्वर्णर

स्वः स्वर्गं नरं यजमानं नयतीति स्वर्णरो यज्ञः । —ऋ. ५, १८, ४;

स्वर्षा

(१) स्वः स्वर्गं सनोतीति स्वर्षाः । —ऋ. १, ९१, २१;

(२) सुष्ठु अर्ति गच्छतीति स्वरुदकम् । तत्सनोति इति स्वर्षाः ।
—ऋ. १, १००, १३;

स्वर्दृक्

सुष्ठु अर्ति गच्छतीति स्वरादित्यः । ·······तं पश्यन्तीति स्वर्दृशः ।
—ऋ. १, ४४, ९;

स्वसर

(१) सरन्ति गच्छन्तीति सराः इन्द्रियाणि । स्वकीयाः सरा येषां शरीराणाम् । —ऋ. १, ३४, ७;

(२) सुष्ठु अर्यन्ते प्राप्यन्त इति स्वसराणि कुलायाः ।
—ऋ. २, १९, २;

(३) सुष्ठु अस्यति क्षिपति तमः इति स्वसरः सूर्यो वासरो वा ।
—ऋ. ३, ६१, ४; द्र. १, ३, ८;

स्वसृ

सुष्ठु कर्मसु प्रेर्यन्त ऋत्विग्भिरिति स्वसारः । —ऋ. ६, ६५, १;

स्वादुक्षद्मन्

स्वादून् क्षदतीति स्वादुक्षद्मा । क्षदतिः अत्तिकर्मा । —ऋ. १, ३१, १५;

ह

हंस

हन्ति गच्छतीति हंसः सूर्यः । —ऋ. १०, १२५, ९;

हन्मन्

हन्यते अनेनेति हन्म । —ऋ. १, ३३, ११;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

हरि

(१) हरन्ति सोमरसानेभि: इति हरयो ग्रावाणः।

—ऋ. ३, ४४, १; द्र. १, १६, १;

(२) हरन्त्यभिषुण्वन्ति सोममृत्विजोऽङ्गुलयो वा। —ऋ. ६, ६६, २;

हरियोजन

हरी अश्वौ रथे योजयतीति हरियोजनः (इंद्रः)। —ऋ. १, ६२, १३;

हवि

हूयते इति हविः। —ऋ. १, १२, ८;

हविष्कृत्

हविष्करोतीति हविष्कृत्। —ऋ. १, १३, ३;

हवीमन्

(१) हूयन्ते यत्र देवेभ्यो हवींषि तस्मिन् यज्ञे। —ऋ. १०, ६२, १२;

(२) आहूयन्तेऽस्मिन् युद्धार्थं परस्परमिति हवीमा संग्रामः।

—ऋ. ७, ८३, ४;

हव्यदाति

हव्यानि ददातीति हव्यदातिर्यजमानः। —ऋ. ७, १६, ६;

हव्यवाट्

हव्यं वहतीति हव्यवाट्। —ऋ. १, १२, ६; ३, ४३, १;

हव्यवाहन

हव्यं वहतीति हव्यवाहनः। —ऋ. १, ३६, १०; ४४, २;

हस्तघ्न

हस्ते हस्तसमीपे वर्तिनि प्रकोष्ठे स्थितः सन् ज्यया हन्यते इति हस्तघ्नः।

—ऋ. ६, ७५, १४;

हिम्या

हन्ति पद्मानीति हिमम्। —ऋ. १, ३४, १;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

हिरण्यरूप

रूप्यते इति रूपं शरीरम् । सुवर्णमयशरीरो हितरमणीयशरीरो वा ।
—ऋ. २, ३५, १०;

हिरण्यवर्तनी (अश्विनौ)

वर्ततेऽनेनेति व्युत्पत्त्या वर्तनिशब्देन रथ उच्यते । सुवर्णमयो वर्तनिर्ययोस्त । । —ऋ. १, ९२, १८; द्र. ६, ६१, ७;

हिरण्यसंदृक्

सम्यक् पश्यन्तीति संदृश इंद्रियाणि । सुवर्णमयेन्द्रियो हितरमणीयेन्द्रियो वा । —ऋ. २, ३५, १०;

हुरश्चित्

हुर्छा कौटिल्ये । हुरश्चिनोतीति हुरश्चित् । —ऋ. १, ४२, ३;

होतृवूर्य

होत्रा व्रियते इति होतृवूर्यो यज्ञः । —ऋ. १, ३१, ३;

होत्रा

(१) हूयतेऽस्यामिति होत्रा देवता । —ऋ. १, १८, ८;

(२) हूयन्तेऽस्यां हवींषि इति । यद्वा । हूयते तत्र प्राण इति होत्रा वाक् । —ऋ. ३, ६२, ३;

(३) आहूयन्ते देवा स्तुतिभिरत्रेति । —ऋ. १०, ६३, ७;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

सायणीयनिरुक्तिकोशः

(सायणीयवेदभाष्योपलब्धनिर्वचनसंग्रहः)

ब्राह्मणारण्यकीयान्तिमभागः

अ

अंहोमुक्

देहान्तर्गतेन पापेन सहैवेता मूत्ररूपा अपो मुञ्चन्ति खलु मूत्रयितारः तस्मादहोमुञ्च इति पठेत् । —श. ब्रा. ३, २, १, २१;

अक्षर

(१) न क्षरतीत्यक्षरः अश्नुत इति वा तस्याक्षरत्वम् । —तै. आ. १०, ११;

(२) न क्षरति न विनश्यतीत्यक्षरम् । —ऐ. आ. २, ३, ६ (१८);

(३) अश्नोतीत्यक्षरम् । —तां. म. ब्रा. ८, ६, १४;

(४) न क्षरत्येभिर्द्विविधैरवयवैरिति द्विविधा अप्यवयवा अक्षरशब्दवाच्या । —तै. ब्रा. १, ५, १२, २;

अक्षरानुस्वर

अक्षरमनुस्वर्यंते येषु तानि । —दे. ब्रा. १, १०;

अक्षावपन

अक्षा उप्यन्ते अस्मिन्निति अक्षावपनमक्षस्थानावपनं पात्रम् । —श. ब्रा. ५, २, ५, १०;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अग्नि

अग्रे एति गच्छतीति । —श. ब्रा. २, २, २, २;

अग्निभू

अग्नेर्भवतीति अग्निभूः । —वंश. ब्रा. २, २२;

अग्निश्रि

अग्निं श्रेयन्ते सेवन्तः इत्यग्निश्रियः । —तै. ब्रा. २, ७, १२, ३;

अग्निष्टोम

अग्निः स्तूयते अस्मिन्निति अग्निष्टोमो नाम सामः ।
—श. ब्रा. ५, १, ३, १;

अग्रेगुव

अग्रे पुरतो वर्तमानं समुद्रं गच्छन्तीति अग्रेगुवः । —श. ब्रा. १, १, ३, ७;

अग्रेणी

छिद्यमानस्य यूपस्य प्रथमं अग्रे नीयत इत्यग्रेणीः यूपावयवभूत इत्यर्थः । यद्वा । अग्रेऽवस्थितो यूपोऽवटं प्रति नीयत इत्यग्रेणीः पुरस्सर इत्यर्थः ।
—श. ब्रा. ३, ५, ४, ९;

अग्रेपुवः

अग्रे प्रथमं स्वात्मानं पुवन्तीति अग्रेपुवः । —श. ब्रा. १, १, ३, ७;

अघमर्षण

अघानि मर्षयति विनाशयतीति अघमर्षणः । —तै. आ. १०, १;

अच्युत

न च्यवत इत्यच्युतः । —तै. आ. १०, ११;

अच्युतक्षित्

अच्युतं परैरच्यावितं यथा न चलति तथा क्षियतीति ।
—श. ब्रा. ३, ४, २, १४;

अज

न जायत इत्यजः जीवः । —तै. आ. १०, १०;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अजर

तस्माद् भुक्तमन्नमसौ जरयति न तु स्वयं जीर्यत इत्यजरः ।

—तै. आ. १०, ११;

अजा

कल्पादावेव ब्राह्मणाः सृष्टाः न ह्यस्मदादिवत् कल्पमध्ये पुनः पुनर्जायन्ते तस्मादजाः । —तै. आ. २, ६, १;

अतिष्ठा

अतीत्य सर्वमतिक्रम्य तिष्ठतीत्यतिष्ठा अतिष्ठागुणको वैश्वानर इत्यर्थः ।

—श. ब्रा. १०, ४, ४, ६;

अतिग्राह्य

इतर ग्रहानतिक्रम्य दुष्प्रापं फलं गृह्यत एभिरित्यतिग्राह्याः ।

—तै. ब्रा. १, ३, ३, १;

अतीर्थ

तरत्यनेनेति तीर्थं मार्गः । — श. ब्रा. ११, २, ८;

अत्यंह

पाप्मानमतिक्रम्य वर्तत इत्यत्यंहः । —तै. ब्रा. ३, १०, ६, ३;

अत्यायुपात्र

पात्राण्यतीत्य वर्तन्त इति अत्यायुपात्रत्वात् । —तां. म. ब्रा. ६, ५, ७;

अदाभ्य

न दभ्यते अनेनेति व्युत्पत्त्या अदाभ्यो ग्रहः । —श. ब्रा. ११, ४, ३, ५;

अदारसृत्

अनेन खलु साम्ना दारे दरे श्वभ्रे नाऽसृन्म नाऽगच्छामेति । यस्मादेवमब्रुवन् तत्तस्मादारसृतः साम्नोऽदारसृत्वं अदारसृदिति नाम संपन्नम् । यस्मादेवं तस्मादनेनाऽदारसृता तुष्टुवानो गातुं मार्गं विन्दते दारे दरे श्वभ्रे न धावति न प्रापयत्यात्मानम् । एतत्साम गातुविद्वै मार्गलम्भकम् ।

—तां. म. ब्रा. १५, ३, ७;

अदिति

आदत्ते सर्वमित्यदितिरिति । —श. ब्रा. ६, ४, २, २;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अद्रिजा

(१) अद्रिभ्यः पर्वतेभ्यो वृक्षादिरूपेण जायत इत्यद्रिजाः।

—तै. आ. १०, १०;

(२) अद्रावुदयगिरावुत्पद्यत इत्यद्रिजाः। —ऐ. ब्रा. ४, १८, ६;

(३) अद्रौ पाषाणे वा मेघे उदकरूपेण जायत इति।

—श. ब्रा. ५, ३, ५, २२;

अद्रिव

अद्रिणात्यनेनेति अद्रिर्वज्रः तद्वन्निन्द्रः। —तां. म. ब्रा. ६, १०, १;

अधिदेवन

अधिदेवन्त्यत्रेति अधिदेवनं द्यूतभूमिः। —श. ब्रा. ५, ४, १, २०;

अधिभूत

पृथिव्यादीनि भूतान्याश्रित्य वर्तत इत्यधिभूतम्। —तै. आ. ७, ७;

अधिषवण

अधि उपरि सूयते सोमोऽनयोरिति अधिषवणे द्वे फलके।

—श. ब्रा. ३, ४, ४, २२; ३, ७, ५, १;

अध्यात्म

आत्मा तमधिकृत्य यदुपासनं वर्तत तदध्यात्मम्। —तै. आ. ७, १०;

अध्वरकृत्

अध्वरं करोतीत्यध्वरकृत्। —श. ब्रा. १, २, २, ५;

अनड्वान्

(१) बलीवर्दो ह्यनः शकटं वहतीत्यनड्वान्।

—तां. म. ब्रा. १८, ६, १८;

(२) अनो वहतीति। —श. ब्रा. ७, २, ४, १;

अनशनन्संगमन

एषः सभ्योऽग्निः अनशित्वैव प्रातः सभ्यैः संगम्यत इति व्युत्पत्त्या अनशनन् संगमनसंबंधात् संगमन इति च पदद्वयेन प्रतिपाद्यत इति।

—श. ब्रा. २, २, ४, ३;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अनिलया

एषः वायुः कदाचिदपि नेलयति इलयतिर्गतिकर्मा । नेलयति न गच्छतीति नहि किन्तु सदा गच्छत्येव । अमुमर्थं निलयेति शब्दो ब्रूते । निलयो निवासः स नास्ति यस्या वायुमूर्तेः सेयमनिलया । —ऐ. ब्रा. ५, २४, ६;

अनुका

अनुकामयत इत्यनुका अनुकूलाम् । —श. ब्रा. ३, ७, १, ७;

अनुयाजा

अनु पश्चादिज्यन्त इत्यनुयाजाः । —श. ब्रा. २, ४, ३, ४१;

अनुरूपस्तृच

अनु पश्चाद्रूप्यते पठ्यत इति द्वितीयोऽनुरूपस्तृचः । —ऐ. आ. ५, १, १;

अनुवित्ति

अन्विष्य विद्यत लभ्यतेऽपेक्षितः पदार्थो यया क्रियया सेयं क्रियाऽनुवित्तिः । —तै. ब्रा. ३, १२, २, ८;

अनुवृत्

मध्यमपर्यायगतेभ्य (त्रिवृत्-प्रवृत्-सवृत्) स्त्रिभ्यः स्तोत्रेभ्योऽनुपश्चात् वर्तत इत्यनुवृत् । —तां. म. ब्रा. १, १०, ९;

अनुशय

अनुशयो नाम कर्मशेषः । जीवमनु शेत इति । —तै. आ. ८, ८;

अनुशासन

अनुशिष्यन्ते व्युत्पाद्यन्ते एभिरित्यनुशासनानि व्याकरणनिरुक्तादीनि षडङ्गानि । —श. ब्रा. ११, ३, ८, ८;

अनुस्तरणी

मृतमनुहन्यत इत्यनुस्तरणीति व्युत्पत्तिः । —तां. म. ब्रा. २१, १, ७;

अनूची (दक्षिणा)

तं यज्ञमनु अञ्चति गच्छतीति अनूची । —श. ब्रा. ४, ३, १, ६;

अन्तकः (संवत्सर)

अन्तं करोतीति अन्तकः । —श. ब्रा. १०, ३, २, २;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अन्तरिक्ष

(१) अन्तरिक्षलोकस्याऽन्तरवस्थितमिति व्युत्पत्त्याऽन्तरिक्षनाम संपन्नम् ।

—तां. म. ब्रा. २०, १४, २;

(२) द्यावापृथिव्योरन्तरा क्षयति निवसतीति व्युत्पत्त्या....... ।

—तां. म. ब्रा. २०, १५, १०;

अन्तरिक्षप्र

अन्तरिक्षं स्वोत्पन्नया ज्वालया प्राति पूरयतीत्यन्तरिक्षप्र ।

—तै. आ. ४, ७, ५;

अन्तरिक्षसत्

(१) अन्तरिक्षे सीदतीत्यन्तरिक्षसत् ।

—तै. आ. १०, १०; ऐ. ब्रा. ४, १८, ६;

(२) तरुगुल्माद्यनवरुद्धेऽन्तरिक्षे सीदतीति । —श. ब्रा. ५, ३, ५, २२;

अन्तर्याम

निहितश्चान्तर्नियम्यते अतः उदानस्यान्तर्याम नाम इति.......एवं अन्तर्यम्यत इति कर्मसाधनोऽन्तर्यामशब्दो व्युत्पादितः । —श. ब्रा. ४, १, २, २;

अन्तेवासी

अन्ते पूर्वोक्तस्याऽऽचार्यस्य समीपे सर्वदा वसतीत्यन्तेवासी ।

—तै. आ. ७, ११, १;

अन्न

अद्यते सर्वैः प्राणिभिर्जीवनार्थं भक्ष्यत इत्यन्नम् । यद्वा सर्वान् प्राणिनोऽत्ति भक्षयति संहरतीत्यन्नम् । —तै. आ. ८, २;

अन्नपेय

अन्नं अन्नविकारभूतं सुराद्रव्यं पीयत अत्रेति । —श. ब्रा. ५, १, ३, ३;

अन्नाद

सर्वमन्नमत्तीति । —श. ब्रा. २, १, ४, २८; ११, १, १२, ६;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अन्वञ्च

(१) योऽयमाग्नेयः पशुर्ललाटे नियुक्तस्तमनु पश्चादञ्चति गच्छतीत्यन्वक्तमन्वञ्चं पूषदेवतात्मकम्.... । —तै. ब्रा. ३, ८, २३, २;

(२) अनु पर्यायेणाञ्चन्ति गच्छन्तीत्यन्वञ्चः । मासाः ।
—श. ब्रा. ४, २, ५, ९;

अन्वाहार्य

(१) अन्वाहरति यज्ञसंबंधिदोषजातं परिहरत्यनेनेति व्युत्पत्त्याऽन्वाहार्यो नाम ऋत्विग्भ्यो देय ओदनः । —श. ब्रा. १, २, १, ४;

(२) अन्वाहरति दोषजातमनेन शमयति । —श. ब्रा. ११, १, ८, ६;

अन्वाहार्यपचन

(१) अन्वाहार्यनामक ओदनः पच्यते यस्मिन् दक्षिणाग्नौ सोऽयमन्वाहार्यपचनः । —ऐ. ब्रा. ७, ३२, ११;

(२) दर्शपूर्णमासकर्मणि ऋत्विजामनु दक्षिणार्थं आह्रियत इत्योदनोऽन्वाहार्यः । स च पच्यते यस्मिन् दक्षिणाग्नौ सोऽयं अन्वाहार्यपचनः । —तै. ब्रा. १, १, १०, ५;

अपभरणी

यस्मिन्नक्षत्रे प्राणानामपहारमसुरा अवहंस्तस्यापभरणीति नाम । प्राणभरणात् अपगतत्वात् । —तै. ब्रा. १, ५, २, ९;

अपाक्

अपाञ्चतीत्यपाक् प्रतीची दिक् । —श. ब्रा. ३, ७, ५, २१;

अपाङ् (वायु)

श्वासार्थं प्रकृष्टे मुखेऽञ्चति गच्छतीत्यपाङ् । —ऐ. ब्रा. २, १, ८;

अपाच्या

अपकर्षमवन्तीत्यपाच्याः । —ऐ. ब्रा. ८, ३८, ३;

अपाद्या

अपहन्यन्ते स्वर्गप्रतिबन्धाः सर्वेऽपि याभिरिष्टिभिस्ता अपाद्याः ।
—तै. ब्रा. ३, १२, ४, ७;

T　　CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अपस्कद्वरी

गर्भपरिणामात्प्रागेव प्रसवप्रतिबन्धोऽपस्कत्तस्मिन् कुशलाऽपस्कद्वरी ।

—तै. ब्रा. ३, ४, ११, १;

अप्

आप्यत इति व्युत्पत्त्याऽन्नमेवात्राप्शब्देन विवक्षितम् ।

—तै. ब्रा. ३, ८, १७, ५;

अप्रतिवादिनी

पत्युः प्रविकलं वदतीति प्रतिवादिनी तद्विपर्येणानुकूलवादिनी ।

—ऐ. ब्रा. ३, १२, १३;

अप्सा

न केनापि प्सायते भुज्यत इत्यप्सा । —तै. ब्रा. २, ७, ४, १;

अप्सुषत्

अप्सु सीदतीत्यप्सुषत् । —श. ब्रा. ५, १, २, ४; ऐ. ब्रा. ८, ३७, २;

अब्जा (आदित्य)

(१) अद्भ्यो नदीसमुद्रादिगताभ्यः शङ्खमकारादिरूपेण जायत इत्यब्जाः । —तै. आ. १०, १०;

(२) अप्सु सूक्ष्मभूतेषु जायत इति । —श. ब्रा. ५, ३, ५, २२;

अभयसनि

भीतिराहित्यं परलोकान्ददातीति । —तै. ब्रा. १, ६, ३, ५;

अभिगर

अभितः गिरति कर्तव्यमनुजानातीति अभिगरः । —तै. आ. ३, ६, १;

अभिगरापगर

अपगृणाति अपवदतीति अपगरो निन्दिता । —तां. म. ब्रा. ५, ५, १३;

अभिगरौ

(१) प्रस्तारप्रतिहारभागौ गायत इति प्रस्तोतृप्रतिहर्त्तारावभिगरौ ।

—तै. ब्रा. २, २, २, ४;

(२) अभितः उद्गातुः पुरस्तात् पश्चाच्च गृहीतप्रस्तारप्रतिहारभागौ गायेते इति प्रस्तोतृप्रतिहर्तारावभिगरौ । —तै. आ. ३, ५, १;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अभिजित्

स (इन्द्रः) एतमभिजिदाख्यं सोमयागमपश्यत्। तेनाऽभिजितं सर्वमभ्यजयत्। तस्मादभिजयसाधनत्वादस्याऽभिजित्संज्ञा।

—तां. म. ब्रा. १६, ४, ६;

अभिधानी

अभिपूर्वो दधातिर्बन्धने वर्तते। अभिधीयन्ते बध्यन्ते आभिरिति अभिधान्यो रशनाः। —श. ब्रा. ६, २, ३, २६;

अभिप्रतारिन्

अभितः शत्रून्प्रकर्षेण तरति निराकरोतीत्यभिप्रतारी······।

—ऐ. ब्रा. ३, १५, ४;

अभिभू

वैरिणोऽभिभवतीत्यभिभूः। —तै. ब्रा. १, १, ७, ३;

अभिषाच

अभितः सचन्ते समवयन्तीत्यभिषाचो बान्धवाः। —तै. ब्रा. २, ८, ६, ४;

अभीवर्त

अभीवर्ताख्येन साम्ना देवा स्वर्गं लोकमभ्यवर्तन्त अगच्छन् अत एवास्याभिवृत्तिसाधनत्वादस्य साम्नोऽभीवर्त इति संज्ञा। —ता. म. ब्रा. ४, ३, २;

अभ्यस्तमित

यस्मिन् सुप्ते (सूर्यः) ऽस्तमेति सोऽभ्यस्तमितः।

—सा. वि. ब्रा. १, ८, १;

अभ्युदित

यस्मिन् सुप्ते सूर्य उदेति सोऽभ्युदितः। —सा. वि. ब्रा. १, ८, १;

अभ्र

अपो बिभर्तीति अभ्रः। —तै. आ. १, ८, १;

अमावस्या

यस्यां तिथौ अमा सूर्येण सह चंद्रो वसति साऽमावास्या। ·······यद्वा। वसुशब्दाभिधेयः इंद्रः सान्नाय्यपानार्थं देवैः सह अस्यां तिथौ वसतीत्यमावास्या।

—श. ब्रा. ११, १, १, १;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अम्बया

अम्बेत्यव्ययं मातृवाचकं तद्रूपत्वं यातीति अम्बया । —ऐ. ब्रा. २, ८, २;

अरण

रणन्तीति रणास्तोतार:……अस्तोतार: । —तां. म. ब्रा. ६, १०, १;

अरी

अर्तेरिदं रूपं इर्यति पुत्रादिप्रवाहरूपेण गच्छन्तीत्यर्थ: ।

—श. ब्रा. ३, ७, ५, २१;

अर्क

(१) अर्च्यते पूज्यते अनेनेति व्युत्पत्त्या अन्नमेवार्क: ।

—ता. म. ब्रा. ५, १, ६;

(२) देवा अन्नं खलु अर्क इति वदन्ति अर्च्यते अनेनेति व्युत्पत्ते: ।

—तां. म. ब्रा. १५, ३, २३;

अर्कलिन्

अर्के लीयन्त इत्यर्कलिन: आदित्यस्य रश्मय: । —ऐ. आ. ३, २, ३ (६);

अर्यमा

अरीन् यमयति धनदानेन वशीकरोति इति अर्यमा धनस्य दाता ।

—तै. ब्रा. १, १, २, ४;

अवक

अप्सु जायन्त इति कार्यकारणभेदाविवक्षया आपोऽप्यवका: ।

—श. ब्रा. ७, ४, १, ११;

अवकाश

अवकाशयन्तेऽर्थं प्रकाशयन्त इत्यवकाशा: मन्त्रा: ।

—तै. आ. ५, ६, ३३;

अवकीर्णी

यो ब्रह्मचारी स्त्रियमुपेयात् सोऽवकीर्णी । —सा. वि. ब्रा. १, ७, ४;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

अवतान

अवतन्यन्ते अवरोह्यन्ते धनुष्येभिरित्युपदिशति तत्संज्ञाम् ।

—श. ब्रा. ६, १, १, २६;

अवसायी

अवसमन्नं तस्य संबंधि याचनमावस्तमावसमेति प्राप्नोतीत्यवसायी ।

—ऐ. ब्रा. ७, ३५, ३;

अवस्यु

अवति तप्यति अनेनेति अवनम् । तदिच्छुः । —श. ब्रा. १४, २, १, ५;

अवाची

प्रथमाहुतावधिकं द्रव्यं हुत्वा द्वितीयाहुतावल्पद्रव्यहोमे सत्यवमं क्षीणं यथा भवति तथाऽञ्चति प्रवर्तत इत्यवाची । —तै. ब्रा. २, १, ४, २;

अविश्वमिन्व

विश्वैः प्राणिभिर्मीयते परिच्छिद्यत इति विश्वमिन्वस्तद्विलक्षणमविश्वमिन्वम् । —तै. ब्रा. २, ८, १, ५;

अविसर्पी

पूर्वत्र वेदनातिशयाद्विविधमितस्ततः सर्पतीति व्युत्पत्त्या विसर्पी इह दुःखस्यात्यन्तमाधिक्याद्विसर्पितुमपि न क्षमन्ते तस्मादविसर्पी ।

—तै. आ. १, १६, १;

अशिन

अश्नाति भुङ्क्त इत्यशिनर्भोक्ता । —तै. आ. १, १, ३;

अश्मव्रजा

अश्मसु पाषाणेषु व्रजन्ति प्रवहन्तीत्यश्मव्रजा नद्यः ।

—तै. आ. ४, ११, ८;

अश्व

(१) प्रजापतिः स्वयमेव कदाचिदश्वजातिर्भूत्वा देवैरालब्धः सन्नश्वो व्यापकोऽभवत् । यद्यस्मादेवं तस्मादश्नुते व्याप्नोतीति व्युत्पत्त्याऽश्वनाम संपन्नम् । —तै. ब्रा. ३, ६, २१, १; २२, १;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

(२) प्रजापतेर्लोचनमक्षि अश्वयत् तदश्वोऽभवत् । तदधः परापतत् । पतितं तदक्षि अश्वत्वेन अरोचयत् । तदश्वस्याऽश्वत्वं संपन्नम् ।

—तां. म. ब्रा. २१, ४, २;

अश्वत्थ

अश्वस्तिष्ठत्यस्मिन्निति व्युत्पत्त्या तस्य वृक्षस्याश्वत्थनाम संपन्नम् ।

—तै. ब्रा. १, १, ३, ६;

अश्वाजनी

अश्वमजति क्षिपतीत्यश्वाजनी कशा । —तै. ब्रा. १, ३, ६, ३;

अश्वाभिधानी

अश्वोऽभिधीयते बध्यतेऽनयेत्यश्वाभिधानी । —श. ब्रा. २, ३, १, ८;

अषाढा

ययोर्नक्षत्रयोर्देवकृतमुपद्रवं सोढुमशक्ता असुरास्तस्य नक्षत्रद्वयस्याषाढा इति नाम । न सहन्तेऽत्रेति व्युत्पत्तेः । —तै. ब्रा. १, ५, २, ८;

अष्ट

सोमं नेतुं यदधिष्ठानं यच्च वीर्यं सोमनिष्ठं बलप्रदानसामर्थ्यं यच्चेन्द्रिय-चक्षुरादिपाटवहेतुत्वं तत्सर्वं विनष्टम् । तदानीं ते यजमाना ये मनुष्यास्तानि दिगादीन्येकयर्चाऽवरोद्धुं स्वाधीनं कर्तुमैच्छन् । ततस्तान्यवरोद्धुं नाशक्नुवन् । एवं द्वित्वादिसप्तपर्यन्तया मंत्रसंख्यया नैवावरोधं कृतवन्तः । अष्टसंख्ययात्ववरोधं कृतवन्तः । अष्टसंख्यया त्ववरोधं कृत्वा तानि दिगादीनि प्राप्तवन्तः । अष्टसंख्यया तस्मादवरुध्यन्त । एभिर्नश्यन्तेऽश्नुत एभिरिति वा व्युत्पत्त्याऽष्टशब्दो निष्पन्नः । —ऐ. ब्रा. १, ३, १;

असिक्नी

रामा स्वयं श्वैत्यविनाशनेनासितं कृष्णवर्णं तस्मिन् प्रदेशे संपादयतीति असिक्नी । —तै ब्रा. २, ४, ४, १;

असु

योऽयमुपास्यो देव स एष देहेन्द्रियादिसंघातमस्यति क्षिपति प्रेरयतीति असुः । —ऐ. आ. २, १, ८;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

असुर

असून् प्राणान् राति ददातीति असुरः। —तै. आ. ३, ११, ११;

अस्त

अस्यते क्षिप्यते सर्वं वस्तुजातमस्मिन्निति 'अस्तं गृहाः'।

—श. ब्रा. २, ४, ३, २९;

अहम

अहमहंकारः तेन माति निर्माति कृत्स्नं जगदित्यहमः परमेश्वरः। यद्वा। माङ् माने शब्दे च। अहमिति मीयते शब्द्यते सर्वैः मनुष्यैरित्यहमः परमेश्वरः। —सा. वि. ब्रा. १, २, २;

अहिर्बुध्निय

(१) कंचिदपि न हिनस्ति इत्यहिः। बुध्ने मूले जगदादौ बुध्नियः। अहिर्बुध्निय इत्येतन्नामकः पञ्चमोऽग्निः।

—तै. ब्रा. ३, ७, ४, ६;

(२) न कदाचिदपि हीयत इत्यहिः। —तै. ब्रा. ३, १, २, ९; ५, १०;

अहुताद्

(१) ये राजन्यवैश्यशूद्रा एताः प्रजाः आर्त्विज्यभावात् हुतशेषं न भक्षयन्तीत्यहुतादः। —ऐ. ब्रा. ७, ३४, १, ८;

(२) अहुतं संस्काररहितं अदन्ति भक्षयन्त्यहुतादः।

—श. ब्रा. २, ४, ३, २४;

आ

आकाश

आ समन्ताद् काशत इत्याकाशः आत्मा। —षड्. ब्रा. २, ७, ३;

आक्षार

एभ्यस्त्रिभ्यो लोकेभ्यः सकाशात्पुरा रसः क्षीराद्यात्मकः अपाक्रामत् अपागच्छत्। तमपक्रान्तं रसं प्रजापतिः प्रजानाम्पालयिता देवः आक्षारेणानेनाऽक्षारयत् आसमन्तादासिक्तवान्। यद्यस्मादनेनाऽऽक्षारयत् तत्तस्मादस्य साम्न आक्षारमिति नाम संपन्नम्। —तां. म. ब्रा. ११, ५, ११;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

आखूत्कर

उत्किरति पांशून् इत्युत्करः। आखुभिः कृते 'आखूत्करे'।

—श. ब्रा. २, ५, ३, १०;

आचर्षणिप्रा

चर्षणयो मनुष्या आगत्य तानीप्सितफलप्रदानेन पूरयतीत्याचर्षणिप्राः।

—श. ब्रा. ४, २, ७, १८;

आचार्य

आचार्योऽध्वर्युः यज्ञे धर्मानाचरतीति व्युत्पत्तेः। —तै. आ. १, ६, ३;

आजिग (साम)

आजिं गच्छतीत्याजिगमिति। —तां. म. ब्रा. १५, ९, ६;

आज्य

आ समन्ताद् जयन्त्येभिरिति व्युत्पत्त्या शस्त्राणामाज्यनामसंपन्नम्।

—ऐ. ब्रा. २, १०, ४;

आज्यविलापनी

आज्यं विलाप्यते यस्यां सा आज्यविलापनी स्थाली।

—श. ब्रा. ३, १, ३, २२; ५, १, ६, १;

आतान

आसमन्तात् तन्यत इति आतानो यज्ञः। —श. ब्रा. ३, ६, ३, २;

आत्मसनि

जीवात्मानमस्मिन् शरीरे चिरकालावस्थायिनं सनोति ददातीति आत्मसनिः। —तै. ब्रा. १, ६, ३, ५;

आत्मा

अतति सातत्येन सर्वत्र गच्छतीत्यात्मा। —ऐ. आ. २, ४, १ (२१);

आदारा

आद्रियन्ते सोमरहितैस्तात्पर्येण स्वीक्रियन्त इत्यादाराक्षीरयुक्तवल्ली-विशेषाः। —तै. ब्रा. १, ४, ७, ५;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

आदित्यवनि

आदित्यान्यजमानार्थं वनति भजत इत्यादित्यवनिः ।

—श. ब्रा. ३, ४, २, ११;

आदेश

(१) आदिश्यते विधीयत इत्यादेशोऽनुष्ठेयोऽर्थः ।

—तै. आ. १, ३२, २;

(२) आदिश्यते विधीयतेऽनेनेत्यादेशो विधायकं ब्राह्मणवाक्यम् ।

—तै. आ. ८, ३;

आधि

आधीयत उत्पाद्यते जगदनेनेत्याधिः प्रजापतिः । —तै. ब्रा. ३, ८, ११, १;

आनन्दज

आनन्दं जनयतीत्यानन्दजः । —वंश. ब्रा. १, १७;

आनुजावर

अनु पश्चाज्जायत इत्यनुजः कनीयान् स हि निकृष्टस्तस्मादप्यवरो निकृष्ट आनुजावरः । —तां. म. ब्रा. २, ३, २;

आनुश्रविक

गुरूपदेशमनु श्रूयत इत्यनुश्रवो वेदः तत्रैवावगत आनुश्रविकः ।

—तै. आ. १, ७, ३;

आप

आप्नुवन्ति सकलं जगदित्यापः ।

—श. ब्रा. १, १, १, १४; ५, ३, १, ६; ६, ३, ६, २;

आपत्ति

आ अभिमुखं पतत्यागच्छतीति (वायुः) । —श. ब्रा. ३, ३, ३, १०;

आपायी

ऋत्विग्भूत्वा सोममासमन्ताद् पाययति इत्यापायी ।

—ऐ. ब्रा. ७, ३५, ३;

T　　CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

आपि (संवत्सर)

आप्नोतीत्यापिः । —श. ब्रा. ५, १, ६, २;

आप्तस्तोम

छन्दोमानन्तरं एतद् दशममहरविवाक्यनामकं भवति तदेवाहराप्त-सोमादि विशेषणैः.........तत्र पूर्वेष्वहःसु त्रिवृदादयोऽष्टा चत्वारि शान्ताः स्तोमाः क्रमेण प्रयुज्यमाना आप्यन्ते समाप्यन्त इत्याप्तस्तोमकमेतत् ।

—तां. म. ब्रा. ४, ८, ७;

आप्ति

स्वर्ग आप्यते याभिस्ता आप्तयः । —तै ब्रा. ३, ८, १७, ३;

आप्री

आप्यत एभिरिति व्युत्पत्त्या मंत्राणामाप्रीनाम संपन्नम् ।

—तै. ब्रा. २, २, ८, ६;

आभू

याभिः स्वर्ग आ समन्ताद् भवति ता आहुतयः आभुवः ।

—तै. ब्रा. ३, ८, १७, ३;

आमात्

आममपक्वमत्तीति आमात् । मनुष्याणामोदनपाकादिहेतुः ।

—श. ब्रा. १, १, ५, ४;

आयु

येऽपि स्वकर्मवशानानुष्यलोकमायान्ति इति आयवो मनुष्याः ।

—तै. ब्रा. १, ४, ८, १;

आरम्भणीय

आरभ्यते सर्वस्मिन्नहनि इति व्युत्पत्त्याऽऽरम्भणीयं नाम संपन्नम् ।

—ऐ. ब्रा. ४, १७, ६;

आरोहण

(१) आरुह्यतेऽनेनेत्यारोहणं प्रवेशद्वारम् । —श. ब्रा. २, ३, १, १६;

(२) आरोहन्त्यत्रेति आरोहणं शकटम् । —श. ब्रा. ३, २, ६, १५;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

आर्षेय

स्वकीयानृषीन्यो वेत्ति स आर्षेयः। —तै. ब्रा. १, ४, ४, २;

आवसथ

आवसन्त्यस्मिन्निति आवसथमासनम्। —श. ब्रा. २, २, ३, ८;

आशय

आशेतेऽस्मिन्निति आशयः। —श. ब्रा. ५, ४, ७, ५;

आशव

अश्नुवते व्याप्नुवन्ति स्तुत्या देवानिति स्तोत्राण्याशवः।

—तां. म. ब्रा. ६, ९, १५;

आसज्जन

आसज्यते बध्यते शिक्यमत्रेति आसज्जनं शिक्याधारः काष्ठविशेषः। यद्वा। आसज्यत इत्यासज्जनं शिक्यस्योर्ध्वावयवः आदित्योऽत्र तत्स्थानीयः।

—श. ब्रा. ६, ५, १, १७;

आसन्दी

आसीदत्यत्राग्निरित्यासन्दी, इयं पृथिव्यपि सर्वस्यापि पदार्थस्यासदन् योग्यत्वात् आसन्दी। —श. ब्रा. ६, ५, १, १२;

आसविता

आसमन्तात् स्तौतीति आसविता। —तै. ब्रा. ३, ८, १२, २;

आस्रव

आस्रवत्यनेन जीवो विषयेष्वित्यास्रव इंद्रियसंघातः। —तै. आ. ८, २;

इ

इंद्रघोष

इन्द्र इति घुष्यते शब्द्यते इतीन्द्रघोषः। —श. ब्रा. ३, ४, २, ४;

इंद्रनिवह

इन्द्रो नितरामाहूयते यस्मिन् प्रगाथे सोऽयमिन्द्रनिवहः।

—ऐ. ब्रा. ४, २०, १;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

इंद्रभू

इंद्रात् भवतीति इंद्रभूः । —वंश. ब्रा. २, २३;

इट्

(१) इष्यत इति इट् इति व्युत्पत्त्या इट्शब्देन वृष्टिर्विवक्षिता ।
—श. ब्रा. १, १, ६, ६;

(२) इष्यत इतीडिति इट् शब्दव्युत्पत्तेर्वर्षास्वपि सम्भवात् ।
—श. ब्रा. १, ४, ४, ११;

इष्टर्ग

इष्टं वृङ्क्ते विनाशयतीति इष्टर्गोऽध्वर्युः सर्वेषां ऋत्विजामिष्टं विनाशयति । —तै. ब्रा. १, ४, ६, ४-५;

इष्टा

अस्मादभ्युदयमिच्छतीत्येष्टा प्रस्तरः सोमो वा । —ऐ. ब्रा. १, ४, ६;

इष्टि

(१) इष्यत इच्छापूर्वकं आभिरितीष्ट(ष्टि)नाम संपन्नम् ।
—तै. ब्रा. ३, ६, १३, १;

(२) इच्छन्ति यज्ञमाभिरिति इष्टिशब्दव्युत्पत्तिः । —ऐ. ब्रा. १, १, २;

इळ

इष्यत इति व्युत्पत्त्याऽन्नमिट्शब्दवाच्यम् । —ऐ. ब्रा. २, ६, ४;

ईडेन्य

ईट्टे ईड्यते अनयेति वा कर्तृकरणव्युत्पत्त्या ईडेन्य शब्दस्य वाग्वाचकत्वमवगन्तव्यमित्यर्थः । —श. ब्रा. १, ३, ५, ५;

उ

उक्थ

(१) उक्थं शस्त्रं उत्तिष्ठत्यनेन देवताप्रसाद इति व्युत्पत्तेः ।
—ऐ. आ. २, १, ६;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

(२) उत्थाप्यते सोमोऽनेनेति व्युत्पत्त्योक्थनामसंपन्नम् ।
—तै. ब्रा. २, २, ८, ६;

उक्थावी

उक्थानि शस्त्रस्तोत्राणि तैः स्तुतिं सम्पादयितुं एनं ग्रहं गृह्णाति उक्थाव्यमित्युक्तम् । अवति अत्र गत्यर्थो गृह्यते । उक्थान्यवति गच्छतीति उक्थावी । —श. ब्रा. ४, २, २, १०;

उक्थ्य

उत्तिष्ठत्यभिवृद्धिं गच्छति कर्मण्यनेन शस्त्रेणेत्युक्थं शस्त्रं तदर्हति यो मंत्रः सोऽयमुक्थ्यः । —ऐ. आ. १, २, १ (५);

उत्कर

(१) वेदेरुत्तरभागे पांशुतृणादयो यत्र प्रक्षिप्यन्ते सोऽयमुत्करः ।
—तै. आ. ५, १, १;

(२) सोममुद्धृत्य कीर्यन्ते पांसवोऽस्मिन्नित्युत्करः ।
—षड् विं. ब्रा. १, १, ७;

उत्सृष्ट

कियन्तं कालं शकटवहनादौ विनियोज्य पश्चात् य उत्सृज्यते सः उत्सृष्टः । —श. ब्रा. ५, २, २, ७;

उद्धार

(१) उद्धारमुत्कर्षं निमित्तीकृत्य यः पुंसा पूजाविशेषो ह्रियते संपाद्यते सोऽयं सत्कारः उद्धारस्तम् । —ऐ. ब्रा. ३, १२, १०;

(२) उद्ध्रियते असाधारण्येन विभज्यत इत्युद्धारः प्रतिनियतभागः ।
—श. ब्रा. ३, ३, २, ११;

उदरसर्पिन्

ये तु प्राणिनः उदरेणैव सर्पन्ति गच्छन्ति । —श. ब्रा. ७, १, १, २;

उदहरण

उदकं ह्रियतेऽनेनेति उदहरणं कुम्भः । —श. ब्रा. ६, १, २, ६;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

उदान

उत् ऊर्ध्वादधोदेशं प्रति अनिति चेष्टत इति। —श. ब्रा. १, १, ५, १६;

उदूह

उदूह्यत ऊर्ध्वं तीरप्रदेशे प्रेर्यते येन दण्डबद्धतृणसमूहेन सोऽयमुदूहः।

—तै. ब्रा. ३, ८, ४, ३;

उपच

उपचिनोतीति उपचम्। —श. ब्रा. १, १, १, १०;

उपदा

अन्नमात्रप्रदानेन या कन्या गृह्यते सेयमुपदा। —तै. ब्रा. ३, ४, ४, १;

उपनिषद्

उपपूर्वात् षदेः गत्यर्थात् विशरणार्थाद्वा उपनिषद् शब्दः। उपागतस्य प्राप्तस्य अध्येतुर्नितरामज्ञानं शृणाति हिनस्तीति नियमेन गन्तव्या प्राप्तव्येति वा एतद्शब्दस्य व्युत्पत्तिः। —सं. उ. ब्रा. १, १;

उपयाम

उपयम्यते धार्यत अनेनेति उपयामः पात्रम्। —श. ब्रा. ११, ४, ३, ७;

उपवसथ

(१) यजमानस्य समीपे पूर्वेद्युर्देवतास्तदीयं यज्ञं प्रतीक्षमाणा वसन्ति तस्मादुप समीपे वसन्त्यस्मिन्दिवस इति पूर्वदिवसमुपवसथाख्याः।

—ऐ. ब्रा. २, ८, ६;

(२) उप अग्निसमीपे वसत्यस्मिन् दिवस इति उपवसथं यागदिवसात्पूर्वमह्नः।

—तां. म. ब्रा. १४, ११, २७; द्र. श. ब्रा. १, १, १, ७;

(३) उपवसन्त्यासु वसतीवरीषु देवा अस्मिन् काले इत्युपवसथः उपवासकालः इत्यर्थः। —श. ब्रा. ३, ७, ३, ७;

उपशय

यूपानां समीपे शेते इत्युपशयोऽन्यो यूपः। (तै. सं. ६, ६, ४) स द्वादशो भवति। —श. ब्रा. ३, ५, ५, १;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

उपशया

(१) प्रयोजनाभावेन उपशेते इत्युपशया । —श. ब्रा. १४, २, २, २०;

(२) उपशेते इति उपशया मृदुच्यते । —श. ब्रा. ६, ४, १, ७;

(३) उप समीपे शय्यते प्रयोजनाभावेन स्थीयते अनयेत्युपशया ।
—श. ब्रा. १४, १, २, १८;

उपशा

अभितः शिरःप्रदेशमुपेत्य शेरन्ते इत्युपशाः । —तां. म. ब्रा. ४, १, १;

उपसर्जनी

उपसृजत्याभिरिति व्युत्पत्त्या पिष्टसंसर्जनार्थाः आपः उपसर्जन्यः ।
—श. ब्रा. १, १, ६, २;

उपस्तम्भ

उपस्तभ्यते प्रतिबध्यत इति उपस्तम्भः शकटाग्राधारकाष्ठम् ।
—श. ब्रा. ३, ३, १, २५;

उपस्थान

उपतिष्ठते प्राप्नोत्युपैति उपस्थानं प्राप्ति साधनद्वारम् ।
—श. ब्रा. १, ३, २, १६;

उपांशुग्रह

गृह्यत इति व्युत्पत्त्या सोमरसः । —श. ब्रा. ४, १, १, २२;

उपांशुयाज

उपांश्विज्यते देवता अत्र यागे इति उपांशुयाजः ।
—श. ब्रा. १, ५, २, २८;

उरुगाय

उरु प्रभूतं यथा भवति तथा गीयते वेदेषु श्रूयत इत्युरुगायस्तादृशो विष्णुः । —तै. ब्रा. ३, १, २, ६;

उष्णि

ओषति दहतीत्युष्णिर्दाहकोऽग्निः । —तै. आ. १, १, ३;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

उष्णिक्

उत्पूर्वात् ष्णा शौच इत्यस्माद्धातोरुष्णिक्शब्दः। तदेवाह उत्स्नानात् उद्भूतस्नानत्वात् उष्णिक्। यद्वा स्निह्यतेर्वा कान्तिकर्मणः। ष्णिह प्रीताविति धातुः। यत् प्रीत्यात्मकं तत् कान्तमपि भवतीति कृत्वा कान्तिकर्मत्वम्। स्निह्यते काम्यत इत्युष्णिक्। —दे. ब्रा. ३, ४;

ऊ

ऊति

अवन्ति रक्षन्तीत्यवतेर्धातोरूतिशब्दः प्रसिद्धः। आयन्ति आगच्छन्ति याभिरित्याङ्पूर्वस्यायतिधातोर्वा वर्णविकारेणेति शब्दः। —ऐ. ब्रा. १, १, २;

ऊमा

अवन्तीत्यूमाः रक्षका विश्वे सर्वे देवाः। —ऐ. आ. १, ३, ४ (१२);

ऊर्क्

उर्जयति बलयतीति ऊर्क् बलम्। —श. ब्रा. ७, ४, १, १८;

ऋ

ऋतजा

(१) ऋतं सत्यवचनं तस्मात् कीर्तिरूपेण जायत इति ऋतजाः।

—तै. आ. १०, १०;

(२) ऋतं सत्यं वैदिकं मंत्र जातं तस्माज्जायत इत्यृतजाः।

—ऐ. ब्रा. ४, १८, ६;

(३) ऋते सत्यभूते मण्डले जायत इति ऋतजाः।

—श. ब्रा. ५, ३, ५, २२;

ऋतसत्

(१) ऋते सत्ये वैदिके कर्मणि फलरूपेण सीदतीति।

—तै. आ. १०, १०;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

(२) ऋतं सत्यवदनं वेदवाक्यं तत्र सीदति प्रतिपाद्यत इति ऋतसत्।

—ऐ. ब्रा. ४, १८, ६;

(३) ऋते यज्ञे वाजपेयादौ सीदतीति। —श. ब्रा. ५, ३, ५, २२;

ए

एकधनवित्

सोमरूपं यदेकं धनं तद्वेत्ति विन्दते वेत्येकधनवित्। —ऐ. ब्रा. १, ४, ९;

एकपात्

एको जगदुपकारक पादो यस्यासावेकपात्। अथवैक एव पद्यते गच्छतीत्येकपात् 'सूर्य एकाकी चरति' इति श्रुतेः।

—तै. ब्रा. ३, १, ५, १०; २, ५, २, ३; १, ५, १, ५;

एकयावन्

एकेन वाहनेन यातीत्येकयावा रथेनैव गच्छति न तु वाहनान्तरेणेत्यर्थः।

—तै. ब्रा. २, ७, ११, २;

एकाराम

एक एव सन् आसमन्ताद् भवतीति एकारामः। —श. ब्रा. ११, ४, १, १;

एनस्य

एन इच्छतीत्येनस्यः। —तै. ब्रा. २, ४, ४, ९;

ओ

ओकःसारी

ओकांसि स्थानानि गृहाणि तेषु सरति सर्वदा संचरतीत्योकःसारी मार्जारः। —ऐ. ब्रा. ६, २९, १;

ओमास

अवन्ति रक्षन्तीत्योमासः। —ऐ. ब्रा. १, १, ४;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

औ

औशन

उशन् वशकान्ताविरत्यस्य कर्मणि रूपम्। काम्यते सर्वैः प्राणरूपत्वेने-त्युशन्वायुरेव तस्य संबंधित्वात् औशनमिति साम्नो नाम संपन्नम्।

—तां. म. ब्रा. ७, ५, १९;

क

कन्याकुमारी

कुत्सितमनिष्टं मारयति निवारयतीति कुमारी/कन्या चासौ कुमारी चेति कन्याकुमारी। —तै. आ. १०, १;

कर्मकृत्

कर्म कुर्वन्ति इति कर्मकृतः। —श. ब्रा. २, ४, ३, २९;

कव्यवाहन

(१) कव्यं पित्र्यं हविर्वहतीति कव्यवाहनः। —तै. ब्रा. १, ३, १०, ३;

(२) कव्यं पित्र्यं हविस्तद्वहति पितॄन् प्रापयति इति कव्यवाहनः।

—श. ब्रा. २, ३, ४, ४; ५, २, ३०;

कषोत्क

कष्यते क्रियत इति कषो नामरूपात्मकः कार्यप्रपञ्चः। तस्मिन्नुत्कः तत्कर्तुमुत्सुकः। —तै. आ. १०, ५९;

काम

काम्यत इति कामः। —श. ब्रा. ३, १, ४, ११; ६, ४, ३, २२;

कामधरण

कामाः ध्रियन्ते धीयन्ते अनेन गोरूपत्वेन स्तुतेनोषेणेति व्युत्पत्त्या मंत्रगतकामधरणशब्देन पशुविषयस्य कामस्य धरणं प्रतिपाद्यते।

—श. ब्रा. ७, १, १, ८;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

कामप्र

कामान् पूरयतीति कामप्रः । —श. ब्रा. ११, १, ६, १७;

काष्ठभृत्

काष्ठा बिभ्रतीति । —श. ब्रा. ११, ३, ७, १३;

किल्बिषस्पृत्

किल्बिषात् पापात् स्पृणोति पालयति (इति) किल्बिषस्पृत् ।
—ऐ. ब्रा. १, ३, २;

कुकूनना

कुत्सितं कूनन्ति शब्दायन्त इति । —श. ब्रा. ११, ४, ३, ८;

कुमारिणी

कुत्सितं मारयन्तीति कुमारा रक्षः प्रभृतयस्तैस्तद्वतीम् ।
—सा. वि. ब्रा. ३, ८, २;

कुसिंध

कुत्सितमात्मशोकं दधातीति कुसिंधः । —तै. ब्रा. २, ३, ६, १;

कृष्णशवासी

अतिशयेन कृष्णं मलिनं वस्त्रं कृष्णशं तद्वस्त आच्छादयतीति कृष्णशवासी । अत्रायं……रुद्र इति अवगन्तव्यम् । —ऐ. ब्रा. ५, २२, ९;

क्रव्यात्

क्रव्यं पललमत्तीति क्रव्यात् शवदहनोऽग्निः । —श. ब्रा. १, १, ५, ४;

क्रीडिन्

क्रीडन्तीति क्रीडिनः । —श. ब्रा. २, ४, ४, २०;

क्षत्र

क्षतात् त्रायत इति । —तै. आ. १, ३१, ३;

क्षय

देवा यस्मिन् क्षियन्ति निवसन्तीति स्तोत्रसंबंधः क्षयः ।
—तां. म. ब्रा. १, ९, १;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

क्षामकर्षमिश्र

क्षामोऽतिपाकेन दग्धपात्रे संसक्तः……कृष्यते विलिख्यते इति कर्षः क्षामश्चासौ कर्षश्चेति क्षामकर्षस्तेन मिश्रम्। —श. ब्रा. २, ३, ४, ४५;

क्षुमा

क्षुप विधूनने। क्षुपतीति क्षुपा पकारस्य स्थाने मकारः शत्रुक्षुपणकारिणी इषुरसि। —श. ब्रा. ५, ३, २, २६;

ख

खजंकर

खजः शत्रूणां भर्त्सनं तत्करोतीति खजंकरम्। —तै. ब्रा. २, ७, १५, ६;

ग

गन्धर्व

(१) गन्धान् वहतीति व्युत्पत्त्या गन्धर्वशब्दो वायुमाचष्टे। —तै. आ. ३, ११, ११;

(२) गावो वृष्ट्युदकानि रश्मयो वा तान् धारयतीति गन्धर्वः आदित्यः। ……गवि वाध्रिशेव इति गोशब्द उपपदे ध्रिञो धातोर्प्रत्यये उपपदस्य च गम्भावे गन्धर्वशब्दो व्युत्पन्नः। —तां. म. ब्रा. १, ३, १०;

गन्धर्वाप्सरस्

गन्धर्वेन च वै रूपेण च गन्धर्वाप्सरस्शब्दश्च निरुच्यते। गन्धेन विशन्तीति गन्धर्वाः। अप् शब्देन रूपमभिधीयते तेन विशिष्टा सरन्तीति अप्सरसः। —श. ब्रा. ६, ३, ३, ७;

गर्भ

जगति विद्यमानं सर्वं रसं स्वकिरणैरुपादत्ते सर्वमनुगृह्णाति वा। ……इदं सर्वं गृभीतं गृहीतमनुगृहीतं तस्मादेषः गर्भः। —श. ब्रा. १४, १, ४, २;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

गातुवित्

गातुर्मार्गस्तं विदन्तीति गातुविदः……देवाः। —तै. ब्रा. ३, ७, ४, १;

गान्दम

गां परेषां वाचं भूमिं वा दमयतीति गान्दमः।

—तां. म. ब्रा. २१, १४, २०;

गायत्री

(१) गायकान्स्वोपासकान्स्त्रायते रक्षतीत्यर्थः। —तै. आ. १०, २१;

(२) गायति स्तौति प्रकाशयति देवतामिति। —दे. ब्रा. ३, २;

(३) स्वकीयं शब्दयति च। तथा कुर्वाणं दुःखात्मकात् संसारात् त्रायते पालयति सा च गायत्रीति निरुच्यते। —दे. ब्रा. ३, ३;

गुहाशय

गुहा बुद्धिः तस्यां शेत उपलभ्यत इति गुहाशयः परमेश्वरः।

—तै. आ. १०, १०;

गृत्समद

यः प्राणोऽस्ति स एव स्वापकाले वागादीनां निगरणात् गृत्स इत्युच्यते। अपानश्च रेतोविसर्गकारकमदहेतुत्वात् मद उच्यते। तदुभयावतारो मुनिर्गृत्समदः। —ऐ. आ. २, १, १ (६);

गो

गमयति रसानागाच्छत्यन्तरिक्ष इति वा गोशब्द व्युत्पत्तिः।

—तां. म. ब्रा. १७, १४, १;

गोजा

(१) गोभ्यः क्षीरादिरूपेण जायत इति गोजाः। —तै. आ. १०, १०;

(२) गोभ्यो जायत जीवादिः स गोजाः। —ऐ. ब्रा. ४, १८, ६;

(३) गोषु पृथिवीप्रधानेषु स्थूलभूतेषु जायत इति।

—श. ब्रा. ५, ३, ५, २२;

गोपा

प्राणो हि स्नावस्थानेन शरीराणि गोपायतीति गोपाः।

—तै. आ. ५, ६, १०;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

गौङ्गव

यत्……अगङ्गूयत् अव्यक्तं शब्दमकरोत्। तत्तस्माद् गौङ्गवस्य साम्नो गौङ्गवत्वं गौङ्गवमिति नाम संपन्नम्। —तां म. ब्रा. १४, ३, १९;

ग्ना

(१) गच्छन्ति पुमांस एनामिति ग्नाः स्त्रियः। —तां. म. ब्रा. १, ८, ९;

(२) गच्छन्त्याभिर्यजमानाः स्वर्गमिति। —श. ब्रा. ६, ४, २, ७;

ग्रह

(१) देवैर्गृह्यत इति व्युत्पत्त्या ग्रहनाम संपन्नम्।
—तै. ब्रा. १, ३, १, २;

(२) सोमं हत्वा तस्याधीनं यशोहेतुं धनं प्रत्येकं विभज्य गृहीतवन्तः। ते च भागा ऐन्द्रवायवादिग्रहा अभवन्। तस्माद् गृह्यन्त इति व्युत्पत्त्या ग्रहनामसंपन्नम्। —तै. ब्रा. २, २, ८, ६;

(३) गृह्यन्त इति ग्रहाः सोमाः। —श. ब्रा. ५, १, २, ८; १०;

(४) गृह्यते अनेन रस इति ग्रहः। —श. ब्रा. १०, १, १, ५;

ग्रहत्व

स च प्रजापतिः 'वाचस्पते' इत्यादि ग्रहभागपठनसामर्थ्येन ताः प्रजाः पुनरगृह्णात्। ततो गृह्णात्यनेनेति व्युत्पत्त्या ग्रहत्वं संपन्नम्।
—तै. ब्रा. २, २, १, १;

ग्रामणी

ग्रामं नयतीति ग्रामणी। —श. ब्रा. ५, २, ५, ६;

घ

घर्मधुक्

प्रवर्ग्यहविर्घर्मः। तां दोग्धीति घर्मधुक्। —तै. ब्रा. २, १, १, १;

घास

घस्यन्ते भक्ष्यन्ते हवींष्यस्मिन् कर्मणीति घासो यागः।
—तै. ब्रा. ३, ६, ११, २;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

घृतच्युत्

घृतं पयः क्षरन्तीति पशवः एव घृतच्युतः। —तां. म. ब्रा. ६, १, १७;

घृतनिर्णिक्

घृतेन निर्णिज्यते निःशेषेण बोध्यते धूमरहितज्वालायुक्तः क्रियत इति घृतनिर्णिक्। —तै. ब्रा. १, १२, , ११;

घृतश्च्युत्

घृतं श्चोतन्ति क्षारयन्तीति घृतश्च्युतः। —तै. ब्रा. १, ४, ८, ५;

घृताची

घृतमञ्चति प्राप्नोतीति। —श. ब्रा. १, ३, १, १४;

च

चंद्रमा

माति प्रतिपद्यां स्तिथीन्परिच्छिनत्तीति माः। चंद्रः अमृतमयैः किरणैः सर्वजनाह्लादकः। चन्द्रश्चासौ माश्च चंद्रमाः। —श. ब्रा. ११, १, १, १;

चरण

चरत्यनेनेति पादेन्द्रियं चरणं शास्त्रीयाचरणं वा तेनोच्यते।
—तै. ब्रा. ३, २, ३, ४;

चर्षणीधृत्

चर्षणीशब्दो मनुष्यवाची तान् धारयति पोषयति चर्षणीधृदिन्द्रः।
—ऐ. ब्रा. ३, १३, १४; द्र. ऐ. आ. १, १, ४;

चर्षणीसह

चर्षणयो मनुष्यास्तान् सहन्तेऽभिभवन्ति इति चर्षणीसहाः देवाः।
—तै. ब्रा. २, ६, ७, १;

चातुर्मास्य

चतुर्षु चतुर्षु मासेषु क्रियन्त इति चातुर्मास्यानि।
—श. ब्रा. २, ५, ४, १; ११, ३, ४, १;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

चित् (इष्टका)

भोगांश्चिनोति सम्पादयतीति चित्। —श. ब्रा. ७, १, १, ३०;

च्यावन

तामपाक्रान्तां वृष्टिं प्रजापतिश्च्यावनेन साम्नाऽऽच्यावयत् अक्षारयत् सर्वतः प्रावर्षयत्। यद्यस्मादनेन साम्ना साधनेनाऽच्यावयत् तत्तस्मात् च्यावनस्य साम्नश्च्यावनत्वमिति नाम संपन्नम्। —तां. म. ब्रा. १३, ५, १३;

छ

छन्द

(१) उत्पादनविषया छन्दसीच्छा सिध्यत्येभिरिति व्युत्पत्त्या छन्दो नाम संपन्नम्। —तै. ब्रा. २, २, ८, ६;

(२) छन्दयति ऋग्गतभावानित्यस्मात् छन्दःशब्दः। गच्छति ह्येतद् वाग्जातम्। यद्वा छादयति जपितारम्। —दे. ब्रा. ३, २०;

छन्दोगा

छन्दोभिर्गायत्री त्रिष्टुप्जगतीभिर्गीयन्त इति छन्दोगार्चतुर्विंशादयः। —तां. म. ब्रा. ३, ६, ३;

छन्दोमा

चतुर्विंशचतुश्चत्वारिंशाख्यास्स्तोमाः गायत्रीत्रिष्टुप्जगत्याख्यैश्छन्दोभिर्मीयन्त इति छन्दोमाः। —तां. म. ब्रा. १६, ६, ३;

ज

जगती

(१) जगत्यामपि गच्छतीति जगतीति व्युत्पत्तिः। —तां. म. ब्रा. ६, ६, २५;

(२) गम्यन्ते सर्वैः प्राणिभिः प्राप्यन्त इति व्युत्पत्त्या जगतीशब्दोऽप्योषधीवाचकः। —श. ब्रा. १, १, ६, ३;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

जनि

जायन्ते जनाः पुण्यकृतो नक्षत्ररूपेणेति जनयः नक्षत्राणि ।

—श. ब्रा. ६, ४, २, ८;

जन्तु

जायन्ते पुरुषार्थोपयोगित्वेनोत्पद्यन्त इति जन्तवोऽत्र मनुष्याः ।

—श. ब्रा. ७, २, ३, ३२;

जमदग्नि

जगन्मनुतेऽनेनेति व्युत्पत्त्या वर्णलोपेन जमच्चक्षुः प्रकाशकावादग्निर्दर्शना दृषिश्चेति 'जमदग्निः ऋषिः' इति वाक्यतात्पर्येण चक्षुरेव प्रतिपाद्यत ।

—श. ब्रा. ८, १, २, ३;

जातवेद

(१) जाते प्राणिशरीरे जाठराग्निस्वरूपेण विद्यते अवतिष्ठत इति जातवेदाः । अथवा जातानुत्पन्नान्यजमानास्तत्तत् फलदानाय वेत्ति स्वचित्ते निश्चिनोति इति जातवेदाः । —तै. आ. १०, १;

(२) जातमिममग्नि वेत्ति इति जातवेदाः । —ऐ. ब्रा. १, ३, ५;

(३) उच्छ्वासनिश्वासप्रदानेन जातं प्राणिनं वेदयति जीवनयुक्तत्वेन ज्ञापयतीति वायुर्जातवेदाः । —ऐ. ब्रा. २, १०, २;

(४) जातान्वेत्त्यनेनेति व्युत्पत्त्या तन्नामसंपन्नम् ।

—ऐ. ब्रा. ३, १३, १२;

(५) जातमुत्पन्नं विश्वं तद्वेत्तीति । —ऐ. ब्रा. ४, २०, ३;

(६) जातं जगद्वेत्तीति । —तै. ब्रा. २, ४, १, ११;

(७) जातं वेत्ति वेदयति वा जातवेदास्तं सर्वज्ञं देवम् ।

—श. ब्रा. ४, ३, १, ९;

जाया (भूमि)

जायतेऽस्यामिति । —तै. आ. १, १०, १;

जू (वाक्)

जवति सोमं प्रति गच्छतीति जूः । —श. ब्रा. ३, २, ३, ११;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

जोगु

पुनः पुनः कर्मसु गच्छन्ति प्रवर्तन्त इत्यनुष्ठानशीलाः जोगुशब्देनोच्यन्ते ।
—ऐ. ब्रा. ३, १३, १४;

त

तनूकृत्

तनूं शरीरं कृन्तन्ति तृदन्तीति तनूकृन्ति रक्षांसि ।
—श. ब्रा. ३, ५, २, ७;

तनूनपात्

तनूं शरीरं न पातयतीति तनूनपात् । —ऐ. ब्रा. २, ६, ४;

तन्त्र

तायते विस्तार्यत इति तन्त्रं वस्त्रम् । —तां. म. ब्रा. १०, ५, ६;

तन्त्रायी

तन्यते अनेनेति व्युत्पत्त्या तन्त्रमिति तन्तुपूर्णा तुरी अभिधीयते । सा यथा वस्त्रवानसमये प्रतिसूत्रं दक्षिणोत्तरभागौ अभिलक्ष्य पुनः पुनरावर्तते । एवमयते सर्वान् लोकान् गच्छतीति तन्त्रायी सूर्यः ।
—श. ब्रा. १४, २, १, २२;

तमोद्य (आदित्य)

तमो द्यति खण्डयति इति तमोद्यः । —तै. आ. १, १०, ४;

तर

तरत्यनेन यज्ञमिति तरः स्तोमः । —तां. म. ब्रा. ११, ४, ५;

तस्कर

तत्करोति यत्पापकमिति नैरुक्ताः । —श. ब्रा. ६, ४, ५, १०;

तापश्चित

यस्मात्तपसि तपोरूपासूपसत्सु चीयते तस्मादग्निस्तापश्चित इत्युच्यते ।
—श. ब्रा. १०, २, १, ३;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

तारका

तत्सर्वं पुरा प्रलयकाले सलिलमेवासीत् । तदानीं कृत्तिकाद्याः सलिलं तीर्त्वा लोकान्तरेषु गताः । तस्मात्तरन्तीति व्युत्पत्त्या तारकत्वं संपन्नम् ।

—तै. ब्रा. १, ५, २, ५;

तुथ

तुद्यतेर्वधकर्मणस्तुथः रक्षःप्रभृतीनां हन्ता । यद्वा तु क्षिप्रं थर्वति गच्छति देवानिति तुथः । थर्वतिर्गतिकर्मा । —तां. म. ब्रा. १, ४, ३;

तुराषाट् (इंद्र)

तूर्णं सहते शत्रूनभिभवतीत्यर्थ ।

—तै. ब्रा. २, ६, ८, ४; श. ब्रा. ५, ३, ५, १४;

त्रिधातु

अशनं पानं खादनमित्येतानि त्रीणि धारयन्तीति त्रिधातूनि (गृहाणि) ।

—तै. ब्रा. २, ८, ५, ६;

त्रिवृत्स्तोम

हिङ्कारस्त्रिभिरुद्गातृभिः कर्तव्यः······तिस्रः ऋचो गातुं हिङ्कुर्यात् एकवचनमंत्र उक्तादेव हेतोः अतस्त्रयोप्युद्गातारो हिङ्कुर्युरित्यर्थः । ·······स हिङ्करोति सहिङ्कर्ता मध्यमया त्रिरुक्तया गायेत् । अयं द्वितीयः पर्यायः । पुनरपि तिसृभ्यो हिंकरोति सहिङ्कर्ता तृचस्योत्तमया अन्त्या तया त्रिरुक्तया गायेत् । एषस्तृतीयः पर्यायः । अनेन पर्यायेण त्रिवृत्स्तोमः संपाद्यते । उक्त प्रकारेण त्रिधा वर्तते इति त्रिवृत्स्तोमः । —तां. म. ब्रा. २, १, १;

त्र्यवि

त्रेधा अवतीति त्र्यविः त्रैवार्षिको वाऽविः त्र्यविः ।

—श. ब्रा. ८, १, ८, ११;

द

दक्षिणसद्

दक्षिणदेशे सीदतीति दक्षिणसद् ब्रह्मा । —तै. ब्रा. ५, ८, १;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

दधिक्रावन्

दधि दधद् धारयन् क्रामतीति दधिक्रावा । —तां. म. ब्रा. १, ८, ९;

दशवीर

वीरयन्त्यमित्रानिति वीराः पुत्रास्तेषां दशसंख्यानां साधकम् ।

—तां. म. ब्रा. २५, ७, ४;

दशहूत

एवं ब्रह्मण्याह्वयति सति दशमे पर्याये समाहूतो जीवात्मा प्रत्यशृणोत् । भो इति प्रत्युत्तरं दत्तवान् । तावता तस्य दशहोतेति नाम संपन्नम् ।

—तै. ब्रा. २, ३, ११, १;

दित्यवाट्

दितिरवखण्डनं तदर्हतीति दित्यं धान्यं तद्वहतीति दित्यवाट् ।

—श. ब्रा. ८, १, ८, १२;

दुरोणसत्

(१) दुरोणेषु गृहेषु परकीयेषु सीदतीति । —तै. आ. १०, १०;

(२) 'दुरोणेषु तत्तद्गृहेषु सीदति याचितं' प्रचरतीति ।

—ऐ. ब्रा. ४, १८, ६; श. ब्रा. ५, ३, ५, २२;

दुःस्वप्ननाशिनी

दुःस्वप्नकृतमनिष्टफलं नाशयतीति । —तै. आ. १०, १;

दृवा

दृणातीति दृवा विदारिका । —श. ब्रा. ५, ३, २, २९;

देव

(१) दीव्यन्तीति देवा । —वंश. ब्रा. १, १;

(२) दीव्यन्ति विषयप्रकाशान् जनयन्तीति देवाः प्राणाः इंद्रियाणि ।

—श. ब्रा. ७, १, १, २४; द्र. तै. ब्रा. २, ५, १, १;

देवतरथ

देवान् यज्ञेन तरति इति देवतरथस्तस्यापत्यात् । —वंश. ब्रा. २, १९;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

देवताति

देवास्तन्यन्ते विस्तार्यन्ते यत्र सा देवतातिर्यज्ञः।

—श. ब्रा. ५, १, ५, २२;

देवपात्र

पिबन्त्यनेन देवा इति देवपात्रम्। —श. ब्रा. १, ५, ५, १२;

देवभाग

देवान् भजतीति देवभागः·········कश्चिन्मुनिः। —तै. ब्रा. ३, १०, ६, ११;

देवमलिम्लुङ्

देवान् मालिन्यं मोचयति प्रापयतीति। —तां. म. ब्रा. १४, ४, ७;

देवयजन

देवा इज्यन्ते यस्मिन्देशे स देवयजनः। —ऐ. ब्रा. ७, ३४, २;

द्र. श. ब्रा. ३, १, १, १; ३, २, ४, ४; १४, १, २, ६;

देवयाट्

देवान् यजतीति देवयाट्। —श. ब्रा. १, १, ५, ५;

देवयान

देवान् याति प्राप्नोत्येभिरिति व्युत्पत्त्या देवयाना अनडुद्विशेषणम्।

—श. ब्रा. ७, १, ४, २१;

देववीति

देवा व्यन्ति हविर्भक्षयन्त्यत्रेति देववीतिर्यज्ञः। —श. ब्रा. ३, ४, १, ३२;

देवश्रुतौ

देवान् श्रावयत इति देवश्रुतौ अक्षयोराधारप्रदेशौ।

—श. ब्रा. ३, ४, ३, १३;

देवसु

(१) सुवन्ते प्रेरयन्ति राज्यार्थमिति सुवो देवाश्च ते सुवश्च देवसुवोऽग्न्यादयः। —तै. ब्रा. १, ४, २, २;

(२) सुवन्त्यनुजानन्तीति सुवः देवाश्च ते सुवश्चेति देवसुवः।

—श. ब्रा. ५, २, ७, १;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

देवस्थान

देवास्तिष्ठन्त्यस्मिन् साम्नीति देवस्थानम् । —तां. म. ब्रा. १५, ३, २८;

देवहू

देवानाह्वयतीति । —श. ब्रा. ६, २, २, २०;

देवावी

(१) देवान्वेति कामयत इति देवावीर्देवप्रियः । —ऐ. ब्रा. १, ५, २;

(२) देवानवति तर्पयतीति देवावीः । —श. ब्रा. ६, २, ३, २०;

दोह

दुह्यन्त एभिरिति दोहाः । —तां. म. ब्रा. ७, १, १२;

द्यु

प्रजापतिरेवं चिन्तितवान्—अहो द्युलोकरूपं वस्तु अद्युतदिव चंद्रसूर्यादिप्रकाश इव द्योतमानमेवेत्यर्थः । यस्मादेवं तस्मात् द्युलोकस्य दिवत्वं द्युनामकत्वं संपन्नम् । —तां. म. ब्रा. २०, १४, २;

द्यौ

दीव्यतीति द्यौः । —तां. म. ब्रा. २०, १५, ११;

द्रप्स

द्रवानुदबिन्दून् किरणैः प्साति भक्षयतीति द्रप्सः असौ आदित्यः ।
—श. ब्रा. ७, ३, १, २०;

ध

धन्वन्तरि

धन्व निरुदकप्रदेशः तं तारयति वृष्ट्युदकेनेति भोजनमन्नम् ।
—सा. वि. ब्रा. १, ३, ६;

धर्मकामा

धर्ममेव कामयन्ते न तु लाभपूजादिकमिति धर्मकामा ।
—तै. आ. ७, ११, १;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

धान्य

धिनोति प्रीणयतीति धान्यम् । —श. ब्रा. १, १, ५, १८;

धामच्छत् (वषट्कार)

धाम यज्ञस्थानं तत्र यथा रक्षांसि न प्रविशन्ति तथा छादयति स धामच्छत् । —ऐ. ब्रा. ३, ११, ७;

धारका

धारयत्यनयेति व्युत्पत्त्या धारकेति नाम संपन्नम् ।

—श. ब्रा. ११, ४, ५, १०;

धारावरा

मरुतो वृष्टिधारया भूमिं वृण्वन्ति व्याप्नुवन्तीति धारावराः ।

—तै. ब्रा. २, ५, ५, ४;

धियंजिन्व (पूषन्)

धियं प्राणिनां बुद्धिं जिन्वति प्रीणयतीति धियंजिन्वः ।

—तै. ब्रा. २, ८, ५, ४;

धृति

यावन्तं कालं भोजनमकृत्वा ध्रियते विदुषा धार्यते सा धृतिर्दीक्षाख्य-संस्काररूपा । —तै. आ. १०, ६४;

धृष्टि

धृष्णोत्यनेनेति धृष्टिरिति । —श. ब्रा. १, १, ५, ३;

ध्रुवक्षित्

ध्रुवमविचलं क्षियति निवसतीति ध्रुवक्षित् । —श. ब्रा. ३, ४, २, १४;

न

नक्षत्र

(१) नक्षत इति व्युत्पत्त्या नक्षत्रत्वं संपन्नम् । —तै. ब्रा. १, ५, २, ५;

(२) अपहृततेजस्कत्वादिमानि क्षत्राणि न भवन्तीति नक्षत्रशब्द-व्युत्पत्तिः । —श. ब्रा. २, १, २, १९;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

(३) नक्ष्यन्ते प्राप्यन्ते सुकृतिभिरिति नक्षत्राणि ।
—श. ब्रा. ६, ४, २, ८;

नपात्

न पततीति नपात् । —तां. म. ब्रा. १, २, ५;

नभ

न भातीति नभः । —श. ब्रा. ३, ४, १, ३२;

नभस्य

नभोमासानन्तरं भवतीति नभस्यः । —श. ब्रा. ४, २, ५, १६;

नरंधिष

नरान् मनुष्यान् धिनोति प्रीणयतीति नरंधिषः । —तै. आ. ४, १६, १;

नराशंस

नरान्मनुष्यान्शंसति वाचा स्तौतीति नराशंसः । —ऐ. ब्रा. २, ६, ४;

नष्टैषी

नष्टं वस्तु प्रयत्नेन तत्र तत्रान्विष्यतीति नष्टैषी । —ऐ. ब्रा. ३, ११, ६;

नानद

तत इन्द्रस्तां तस्मिन् वृत्रे प्राक्षिपत् । तया स नाऽस्तृणुत नाऽहिंस्यत । ········स चास्तृतो अहिंसत सन् यत् व्यनदत् विशेषेण शब्दमकरोत् तन्नानदं सामाऽभवत् । यस्मादेवं नदनाज्जातं तत्तस्मान्नानदस्य साम्नो नानदत्वं नानदमिति नाम संपन्नम् । —तां. म. ब्रा. १२, १३, ४;

नाराशंस

(१) भक्षिताप्यायितानां सादितानां चमसानां नाराशंसशब्दः संज्ञा । अत उक्तमाचार्येष्ठाऽऽप्यायितानाश्चमसान् सादयन्ति ते नाराशंसा भवन्तीति । —ऐ. ब्रा. २, ८, ६;

(२) ते च नरा ऋभवः शस्यन्ते कथ्यन्ते यस्मिन् सूक्ते तन्नाराशंसम् ।
—ऐ. ब्रा. ५, २२, ८; ६, ३०, १;

(३) नरैः सन्तानभूतैः शस्यन्त इति नाराशंसाः पितरः तत्संबन्धाच्चमसो नाराशंसः । —तां. म. ब्रा. १, ५, ६;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

नावाज

नावमजति क्षिपति प्रेरयतीति नावाजः (कर्णधारः)।

—श. ब्रा. २, ३, १, १५;

नाष्ट्रा

नाशयन्तीति नाष्ट्राः 'आसुर्यः प्रजाः'। —श. ब्रा. १, १, २, ४;

निखात

निखन्यत इति निखातो गर्तान्तरालः। —श. ब्रा. ३, ४, ५, २५;

निखुर्यप

खुरमर्हन्तीति खुर्या अश्वादयस्तेषां नितरां पालकः।

—तै. ब्रा. ३, ८, ११, २;

निचृत्

चर्चयति ऋग्गतभावानिति चृत् छन्दः। निकृष्टमेकाक्षरेण हीनं निचृत्। —दे. ब्रा. ३, ५, ६;

निदान

नितरां दीयते प्रयुज्यतेऽस्मिन्निति तन्मन्त्रप्रयोगस्थानम्।

—तै. ब्रा. २, २, ११, ६;

निभूयप

भवन्त्युत्पद्यन्त इति भूतानि भूयशब्देनोच्यन्ते। तेषामपि नितरां पालकः। —तै. ब्रा. ३, ८, ११, २;

निमिषत्

निमीलनव्यापारं करोतीति निमिषत्। —श. ब्रा. ११, २, २, २;

नियान

आज्यस्य यज्ञस्य असकृत् नियात्यत्रेति नियानो मार्गः।

—श. ब्रा. ३, ४, ३, १५;

नियुत्

नितरां युवन्ति रथे मिश्रयन्तीति नियुतो वायोर्वडवाः।

—तै. ब्रा. २, ८, १, १०;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

निरामिन्

ये शिष्या अभिद्रुहस्पदे सर्वतो गुरुद्रोहस्य स्थाने वर्तमाना निरामिणो मायया गुरुमभिमुखीकृत्य व्यवहारे बाह्ये नितरां रमयन्तीति निरामिणः।

—ऐ. आ. ३, १, ५;

निर्जर

निःशेषेण जीर्यत्यनेन कामक्रोधादिरिति केशोलुञ्चनतप्तशिलारोहणादिकं तपो निर्जरः।

—तै. आ. ८, २;

निर्णेजन

निर्णिज्यते शोध्यतेऽनेनेति निर्णेजनं अङ्गुलिप्रक्षालनम्।

—श. ब्रा. १, १, ६, १८;

निवित्

निवेद्यत एभिरिति व्युत्पत्त्या मंत्राणां निविन्नामसंपन्नम्।

—तै. ब्रा. २, २, ८, ५;

निविद्धान

निविदां पदानि धीयन्ते प्रक्षिप्यन्ते यस्मिन् सूक्ते तन्निविद्धानम्।

—ऐ. ब्रा. ३, १२, ६; ऐ. आ. १, ५, ३ (२२); ५, ३, १ (१२);

निवेशन

निविशन्ते वसूनि अस्मिन्निति निवेशनः।

—श. ब्रा. ७, १, ३, २०; ६, १, २, २८;

निवेष्य

निवेष्यते आवर्त्यतेऽस्मिन् तृणादिकमिति निवेष्यः आवर्तः।

—श. ब्रा. ५, ३, १, ११;

निषद्वर (इंद्र)

नितरां यज्ञे सीदन्त्युपविशन्तीति निषदो देवास्तेषां श्रेष्ठम्।

—तै. ब्रा. २, ६, ७, २;

नीच्या

निकर्षमवन्तीति नीच्याः। —ऐ. ब्रा. ८, ३८, ३;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

नृचक्षस

न्‌ॠन् पुण्यपापकृतो मनुष्यान् साक्षितया चक्षते पश्यन्तीति नृचक्षसो देवाः। —श ब्रा. ८, २, ५, ५;

नृम्ण

नृभिर्मनुष्यैर्मन्यतेऽभीष्टत्वेन स्मर्यत इति नृम्णं सुखम्।

—तै. आ. ४, ४०, १;

नृषत्

(१) न्‌ॠन्नरः (?)। तेषु सीदतीति नृषत्तम् नृषदम्।

—तै. ब्रा. १, ३, ६, १;

(२) (आदित्य) मनुष्येषु कर्माधिकारिजीवरूपेण सीदतीति नृषत्।

—तै. आ. १०, १०;

(३) मनुष्येषु वृष्टिरूपेण सीदतीति।

—ऐ. ब्रा. ४, १८, ६; ७, ३३, ३;

(४) (हंस) नृषु मनुष्येषूपकारकर्तुं सीदतीति।

—श. ब्रा. ५, ३, ५, २२; ६, १, ३, ८;

नेत्र

नीयते सर्वं जगदनेनेति सृष्टिस्थितिप्रलयव्यवहाराणां मूलकारणं नेत्रम्।

—ऐ. आ. २, ६, १ (२५);

नेदीयसंक्रम

नेदीयसि अन्तिकतमे संख्याविशेषे संक्रामतीति नेदीयः संक्रमा। तथा हि प्रथमे पर्याये आरोहावरोहाभ्यां तिसृभ्यः पञ्चसु पञ्चभ्यः तिसृष्वित्येवमन्तरिताः अयुक्संख्यास्तेषां संक्रामति। —तां. म. ब्रा. ३, ४, १;

न्यग्रोह

न्यङधोमुखो रोहति प्रादुर्भवतीति व्युत्पत्त्या न्यग्रोहः संपन्नः।

—ऐ. ब्रा. ७, ३५, ४;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

प

पचन

(१) पच्यतेऽनेनेति पचनं तृणादिकम् । —श. ब्रा. ६, ४, २, ३;

(२) पच्यतेऽनेनेति पचनं पाकसाधनं द्रव्यं करीषेक्षुपर्णादिकम् ।
—श. ब्रा. १४, १, २, २१;

पति (व्योमपति)

देवानां विविधरक्षकत्वेन पालयतीति पति । —तै. आ. १, १०, १;

पतिवेदन

पतिर्विद्यते लभ्यते अनेन इति पतिवेदनो रुद्रः । —श. ब्रा. २, ५, ३, १४;

पद

पद्यत इति पदम् (विष्णोः) । —श. ब्रा. ३, ५, ४, १८;

पदवी

व्याकरणे निष्पन्न सुशब्दविशेषः पदम् तद्वेति गच्छतीति पदवी शब्दसामर्थ्याभिज्ञो व्यासवाल्मीक्यादिरूपः । —तै. आ. १०, १०;

पथिकृत्

पन्थानं करोतीति पथिकृत्तादृशोऽग्निः । —तै ब्रा. १, ४, ४, १०;

पर

परः सामाख्यानि अहानि पराणि परशब्दाभिधेयानि पुरा देवा पराख्यैरेतैरहोभिरेवाऽदित्यं स्वर्गं लोकं अपारयन् प्रापितवन्तः । अतः पारयन्त्येभिरिति व्युत्पत्त्या परत्वं संपन्नम् । ·······अपि चैतानि स्परशब्देनाप्यभिधीयन्ते । स्पारयति प्रीणयत्येभिरिति परत्वम् ।
—तै. ब्रा. १, २, ४, ३;

परमेष्ठी

परमे निरतिशयलोके तिष्ठतीति परमेष्ठी ।
—दे. ब्रा. ३, २२; द्र. श. ब्रा. ८, २, ६, १६;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

परःसद्

पूर्वदेशे सीदन्ति उपविशन्ति ये वा परदेशे सीदन्ति यद्वा उद्गातृसर्पणात्पूर्वं ये सदस्या उपविशन्ति । —तां. म. ब्रा. १, ५, २;

पराक्

परमुत्कृष्टं जगत्कारणमखण्डैकरसं ब्रह्मतत्त्वं अञ्चति गच्छति प्रतिपादयतीति पराक् । —ऐ. आ. २, ३, ६ (१८);

पराङ्

(१) परं बाह्यं दूरदेशमञ्चति गच्छतीति पराङ् । (प्राणवायु)
—ऐ. ब्रा. २, १०, ८;

(२) परमुत्कर्षमञ्चति गच्छत्यनेनेति । —तां म. ब्रा. २०, १५, ६;

परिक्षित्

अग्निर्हीमाः सर्वाः प्रजा दाहपाकादिना परिपालयन् क्षेति निवसति । प्रजाश्चेमा अग्निं परितः सेवमाना क्षियन्ति निवसन्ति । अतः कर्तरि कर्मणि वा व्युत्पत्त्याऽयमग्निः परिक्षित् भवति । —ऐ. ब्रा. ६, ३०, ६;

परिधानीया

परिधीयते समाप्यते यया सेयमृक् परिधानीया । —तै. आ. २, १३, १;

परिधि

परितो धीयन्त इति परिधयः । —श. ब्रा. १, २, ६, १३;

परिपति (वायु)

परिपततीति परिपतिः । —श. ब्रा. ३, ३, ३, १०;

परिभू (अग्नितनु)

परितो भवतीति परिभूः । —तै. ब्रा. १, १, ७, ३;

परिवेत्ता

अग्रजे अविवाहिते सति योऽनुजो जाया विन्दते स परिवेत्ता । तदग्रजः परिविन्दः । —सा. वि. ब्रा. १, ७, ४;

परिश्रित

गार्हपत्यप्रदेशं परिश्रयन्त्येभिरिति परिश्रितः । —श. ब्रा. ७, १, १, १२;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

परिष्यन्द

परित: स्यन्दते प्रभूतं जलमस्मिन्निति परिष्यन्द: द्वीप: ।

—श. ब्रा. १४, २, २, १४;

परिस्रुत्

(१) परित: स्रवतीति परिस्रुदन्नम् । —तै. ब्रा. २, ६, २, २;

(२) परित: स्रवतीति परिस्रुत् सुरा । —तै. ब्रा. २, ६, ४, ६;

पर्ण

सहसा समानीयमानस्य तस्य सोमस्यैकं पर्णं छिन्नं सद् भूमौ पतित्वा पलाशवृक्षोऽभवत् । पर्णजन्यत्वात्तस्य वृक्षस्य पर्णनाम संपन्नम् ।

—तै. ब्रा. १, १, ३, १०;

पर्याप्ति (आहुति)

याभि: स्वर्ग: परित: आप्यते ता पर्याप्तय: । —तै. ब्रा. ३, ८, १७, ३;

पर्यारिणी

प्रसवकालातिक्रमेण या प्रसूते सा पर्यारिणी । —तै. ब्रा. ३, ४, ११, १;

पर्यास

तस्य वस्त्रस्य परित: तिर्यगस्यत इति पर्यास: तिर्यक्तन्तुसन्दर्भ: ।

—श. ब्रा. ३, ११, २, १८;

पवि

पवति दशापवित्रे स्रवतीति पवि: सोम: । अथवा पविवद् बलरूपत्वात् पवि: सोम: । —श. ब्रा. ३, ७, ५, ५;

पवित्र

पुनात्यनेनेति पवित्रम् । —श. ब्रा. १, ५, ४, ६;

पशुबन्ध

(१) पशुर्बध्यते यज्ञार्थे यस्मिन्कर्मविशेषे असौ पशुबन्धाख्य: ।

—श. ब्रा. १४, २, ३, २६;

(२) पशुर्बध्यते यज्ञार्थं यस्मिन्कर्मणि स पशुबन्ध: ।

—श. ब्रा. ११, ४, ७, १;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

पशुश्रपण

पशुः श्रप्यते यस्मिन्नग्नौ स पशुश्रपणः । —श. ब्रा. ३, ६, ३, १८;

पशुसनि (अग्नि)

पशून् ददातीति । —तै. ब्रा. १, ६, ३, ५;

पाकत्रा

पाको बालस्तद्वदन्यैस्त्रायन्ते रक्ष्यन्त इति पाकत्रा बालवदप्रबुद्धमतयो दीनदक्षा क्षीणोत्साहा मर्तासः । —तै. ब्रा. ३, ७, ११, ५;

पाद

पद्यते गम्यते ब्रह्मतत्वमेभिरिति पादाः । —तै. आ. १०, १०;

पान्त

पाति रक्षत्यालोकेनेति पान्तमहः । —तां. म. ब्रा. ६, १, ७;

पावक

पावयति शोधयतीति पावकः । —श. ब्रा. ६, १, २, २५;

पितुषणि

पितुशब्दोऽन्नवाची । तस्य सनिर्दानम् येन सोमेन लभ्यते सोऽयं पितुषणिः । —ऐ. ब्रा. १, ३, २;

पितृयज्ञ

ऋत्वात्मकाः पितरो यजन्त्यनेनेत्ययं पितृयज्ञः । अथवा प्राजापत्यात्मकाः पितेज्यतेऽनेनेति पितृयज्ञः । —तै. ब्रा. १, ४, १०, ८;

पितृषदन

पितरः सीदन्त्येषु इति पितृषदना भूम्यधोर्वर्तिनो लोकाः ।
—श. ब्रा. ३, ४, ५, १३;

पुत्र

पुन्नामनरकात् त्रायत इति । —तै. आ. ६, १, १;

पुनर्वसु

(१) पुनर्वासयति स्वरश्मिभिः कृत्स्नं जगदिति पुनर्वसुः सूर्यात्मा परमेश्वरः । —सा. वि. ब्रा. १, २, २;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

(२) पूर्वं धनिकः सन् केनापि निमित्तेन पश्चात् पापीयान्स्यात् अत्यन्तनिर्धनो भवेत्। स पुनर्वस्वोरग्निमाधाय पूर्ववद्धनं प्राप्य सर्वेषां मध्ये भद्रः पूज्यो भवति। पुनरपि वसु लभ्यते ययोस्तौ पुनर्वसू। —तै. ब्रा. १, १, २, ३;

पुरन्दर

(१) आसुरीं पुरीं दारयति विनाशयतीति पुरन्दरः।

—तै. ब्रा. २, ६, ७, २;

(२) वैरिणां पुराणि दारयति इति। —तै. ब्रा. २, ६, ८, २;

पुरंधि

पुरं सर्वगुणसंपन्नं शरीरं धारयतीति पुरंधिः। —तै. ब्रा. ३, ८, १३, २;

पुरीष्य

पूरयति पयः प्रभृतिभिः लोकमिति पुरीषं पशवः तेभ्यो हिताः पुरीष्याः।

—श. ब्रा. ७, १, १, २५;

पुरुक्षु

पुरुभिर्बहुभिः क्षूयते शब्द्यते प्रशस्यत इति पुरुक्षुः।

—तै. ब्रा. २, ८, १, ६;

पुरुची (शरदर्तु)

(१) पुरून् बहून् भोगानञ्चति प्राप्नुवन्तीति पुरुच्यः।

—तै. ब्रा. ३, ७, ११, ३;

(२) पुरूणि बहूनि भोग्यानञ्चन्ति संपादयन्तीति पुरुच्यः।

—तै. ब्रा. १, २, १, २;

पुरुमध्यसंस्थ

हस्तपादादिभिः सर्वैरवयवैः पूर्यत इति पुरं तस्य मध्ये कुसुमरस इवाऽन्तराऽवस्थितम्। —तै. आ. १०, १०;

पुरुरावन्

पुरु बहुलं संसारदुःखं राति ददातीति पुरुरावा।

—श. ब्रा. २, ३, ४, ४७;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

पुरुष

पुरि हृदयपुण्डरीके शेत इति वा पूर्णत्वाद्वा पुरुषः परमेश्वरः ।

—सा. वि. ब्रा॰ १, २, २;

पुरोरुक्

(१) प्र वो देवायेत्यादिसूक्तात्पुरतो दीप्यते रोचत इति पुरोरुवशब्देन निविदुच्यते । —ऐ. ब्रा. २, १०, ७;

(२) (समित्) पुरः पूर्वस्यां दिशि रोचत इति पुरोरुगावहनीय ।

—तै. ब्रा. २, ६, ८, १;

(३) पुरः याज्यानुवाक्याभ्यां पुरस्तात् रुचिं इच्छां जनयन्ति देवताया इति पुरोरुचः । —श. ब्रा. ३, ७, ४, २८;

पुरोडाश

यत्पुरोष्ठाशाः सन्त्येतान्देवाः पुरो सोमाहुतिभ्यः पुरस्तादेवाक्रत क्रतवन्तस्तस्मात्पुरोडाशेति नाम संपन्नम् । पुरतो दीयमानं हविरित्यर्थः ।

—ऐ. ब्रा. २, ८, ५;

पुँश्चली

बहुषु पुरुषेषु चलति न त्वेकस्मिन् भर्तरि नियता वर्तत इति पुँश्चली दासी । —तै. ब्रा. ३, ८, ४, १;

पुष्करपर्ण

पूः क्रियतेऽनेनेति व्युत्पत्तेः पूष्करमिति……पुष्करमिति प्रयोगस्तु पारोक्ष्यकरणायेति संग्रहणार्थः । —श. ब्रा. ७, ३, १, १३;

पुष्टिवर्धन (त्वष्ट्रा)

शरीरस्य पुष्टिं वर्धयतीति । —तै. ब्रा. २, ६, १७, ६;

पुष्य

पुष्यत्यस्मिन् अधर्मः शीघ्रमिति पुष्ये कलियुगे ।

—षड्. विं. ब्रा. ५, ६, ५;

पूर्णाहुति

आज्यपूर्णया जुह्वा हूयत इति पूर्णाहूतिः । —श. ब्रा. ५, २, २, १;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

पूर्वभाक्

पूर्वान् पित्रादीन् भजतीति पूर्वभाक् । —तै. ब्रा. ३, ६, ६, १;

पूर्ववाट् (अश्व)

(१) सेनामध्य इतरेभ्योऽश्वेभ्यः पूर्वं वहतीति वा पूर्वस्मिन् वयस्यत्यन्तबाल्य एव वहतीति वा पूर्ववाट् । —तै. ब्रा. १, १, ५, ६;

(२) (अग्नि) पूर्वे वयसि वहतीति पूर्ववाट् । —श. ब्रा. २, ६, ४, १७;

पूर्वसद्

द्र परःसद्

पूर्वाग्निवाह

पूर्वाग्निमावहनीयं वहन्तीति पूर्वाग्निवाहोऽनड्वाहः ।

—श. ब्रा. ५, ४, ४, ३;

पृतनाज

पृतना परकीया सेना तां जयतीति । —ऐ. ब्रा. ४, १८, ६;

पृतनाजित्

पृतना परकीया सेना (तां ?) जयतीति पृतनाजित् । —तै. आ. १०, १;

पृष्ठोपताप

प्राङ्मुखमधीयास्य पृष्ठभागं यावति काले पर्यावर्तमानः सूर्यः उपतापयति स पृष्ठोपतापकालः । —सा. वि. ब्रा. १, ४, ७;

प्रकृति

प्रकर्षेण क्रियत उत्पाद्यते कार्यमनयेति व्युत्पत्त्या प्रकृतिरूपादानम् ।

—तै. आ. ८, २, १;

प्रचरणी

प्रचरन्त्यनया जुहूपभृतोर्व्यापारदशायामिति प्रचरणी ।

—श. ब्रा. ३, ७, ४, ११;

प्रजनन

प्रजायन्तेऽत्रेति प्रजननम् । —श. ब्रा. ३, ४, १, ११;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

प्रजा

प्रजायन्त इति प्रजाः ।   —श. ब्रा. २, ३, ४, ५;

प्रजासनि (अग्नि)

प्रजा ददातीति ।   —तै. ब्रा. १, ६, ३, ५;

प्रणी

यज्ञान्प्रकर्षेण नयति वायुस्तस्मादेष यज्ञानां प्रणी ।

—ऐ. ब्रा. २, १०, २;

प्रतिधि

प्रतिमुखं धीयते प्रातःसवनसमाप्त्यर्थं इति प्रतिधिः ।

—तां. म. ब्रा. १, ६, ५;

प्रतिपत्

(१) प्रतिपद्यते प्राप्यते शस्त्रं येन तृचेन सोऽयं प्रतिपत् ।

—ऐ. आ. १, ५, ३ (२२);

(२) प्रतिपद्यते प्रक्रस्यते बहिष्पवमानस्तोत्रे एषा प्रतिपत् ।

—तां. म. ब्रा. ४, २, १५;

(३) प्रतिपद्यते प्रारभ्यते इयमिति प्रतिपत् ।

—तां. म. ब्रा. ६, ४, ३; ११, ६, १, १३, १, १; ७, १; १४, १, ५;

(४) प्रतिपद्यतेऽनेनेति प्रतिपदाद्यस्तृचः ।

—तां. म. ब्रा. १२, १, १; १३, ७, १; १४, ७, १;

(५) त्रिष्टुप्छन्दस्का प्रतिपद्यन्ते प्रारभ्यन्तै आभिः ऋग्भिरिति प्रतिपदः ।   — षड्. विं. ब्रा. ४, १, ८;

प्रतिष्ठा

(१) लयस्थानम् । प्रतितिष्ठति विलीयतेऽत्रेति ।

—ऐ. आ. २, ६, १ (२५);

(२) प्रतिष्ठापयत्यनेनेति पादद्वयं प्रतिष्ठा ।   —श. ब्रा. ७, १, ३, ५;

(३) प्रतितिष्ठत्यत्रेति प्रतिष्ठा ।   —श. ब्रा. ८, १, ६, १०;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

प्रतिसर

राक्षसान्प्रति अस्त्ररूपेण सरन्ति गच्छन्तीति प्रतिसराः ।

—श. ब्रा. ७, ३, १, ३३;

प्रपत्

प्रपद्यते गम्यतेऽनयेति प्रपत् । —ऐ. ब्रा. ६, २६, १;

प्रभव

प्रभवत्युत्पद्यते जलमस्मादिति गोदावर्याद्युत्पत्तिप्रदेशः प्रभवः ।

—तै. आ. १, २, १;

प्रयति

सा शक्ति (पारमेश्वरी) प्रयतते यस्मिन् परमात्मति सोऽयं शक्ति-प्रयत्नाधारः परमात्मा प्रयतिः । —तै. ब्रा. २, ८, ६, ५;

प्रयाजा

प्रधानयागात् प्रथममिज्यन्त इति प्रयाजाः । —श. ब्रा. २, ४, ३, ४१;

प्रयुक्

प्रयुज्यत इति प्रयुक् । —श. ब्रा. ३, १, ४, ११;

प्ररुह्

प्रकर्षेण रुह्यन्ते प्राप्यन्त इति प्ररुहः स्वर्गभोगा रुहो मानुषो भोगाः ।

—तै. ब्रा. २, ५, २, २;

प्रव्याध

प्रकर्षेण बलाधिक्येन विध्यन्ते मुच्यन्ते बाणा यावत्परिमाणेषु देशविशेषेषु तावत्परिमाणा देशाः प्रव्याधास्ते सप्तदशसंख्याकाः ।

—तै. ब्रा. १, ३, ६, ३; द्र. श. ब्रा. ५, १, ५, १३;

प्रशास्ता

प्रकर्षेण सर्वानृत्विजः शास्ति प्रैषमंत्रेण तत्तद्व्यापारे प्रवर्तयति इति प्रशास्ता मैत्रावरुणः । —ऐ. ब्रा. ६, २८, ६;

प्रसविता

प्रकर्षेण स्तौति प्रेरयतीति प्रसविता । —तै. ब्रा. ३, ८, १२, १;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

प्रसू

प्रसुवते फलानीति प्रस्वः पुष्पिताङ्कुराः । —श. ब्रा. २, ४, २, १६;

प्राची

(१) प्रकृष्टं पूर्वदिगवस्थं स्वर्गमञ्चति गच्छतीति प्राची ।
—तै. ब्रा. १, १, ४, ६;

(२) प्रकृष्टं फलमञ्चति गच्छतीति प्राची । —तै. ब्रा. २, ८, २, ५;

प्राण

(१) प्रकर्षेणानिति चेष्टते सर्वो लोकोऽत्रेत्ययं कालः प्राणरूपः ।
—तै. ब्रा. १, ५, ३, १; श. ब्रा. १, १, ५, १६;

(२) प्राणयति प्रकर्षेण चेष्टयतीति व्युत्पत्त्या प्राणनामकोऽभूः ।
—तै. आ. ३, १४, ७;

(३) आदित्यः स्वयमुद्यन्नेव सर्वप्राणिनः प्रणयति चेष्टयति तस्मात्प्रणयतीति व्युत्पत्त्याऽऽदित्यस्य प्राण इति नाम ।
—ऐ. ब्रा. ५, २५, ६;

(४) देवाः इन्द्रियाणि प्राण्यन्त इति व्युत्पत्त्या प्राणाः अभूवन् ।
—श. ब्रा. ७, ४, १, २१;

(५) यतः एषः (आदित्य) इमाः प्रजास्सर्वाः प्रणयति लोकान्तरं प्रापयति तस्मात् एष एव प्राणः । —श. ब्रा. १०, ३, ६, १४;

प्राणभृत्

(१) प्राणान् बिभर्ति शरीरे धारयत्याभिरिति वा प्राणलिङ्गोपेतमंत्रोपधानाद्वा प्राणभृत इष्टकाः ।
—श. ब्रा. ८, १, १, १; ८, १, ३, १;

(२) प्राणान् विभर्तीति । —श. ब्रा. ११, २, २, २;

प्रातराशा

प्रातरश्यन्ते भुज्यन्त इति प्रातराशाः । —सा. वि. ब्रा. १, २, २;

प्रातर्यावाण

प्रातःकाले यान्ति यज्ञं गच्छन्तीति । —श. ब्रा. ३, ७, ४, ८;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

प्रादेशमात्र

प्रादेशैर्द्यु मूर्द्धादिभिः पृथिवी पादान्तैरवयवैरध्यात्मं मीयत इति प्रादेशमात्रं ……मुखादिषु करणदेशेषु कर्तृत्वेन मीयत इति……प्रकर्षेण शास्त्रेणादिश्यन्त इति प्रदेशाः द्युलोकादय एव तावत्परिमाणो वा प्रादेशमात्रः ।

—श. ब्रा. १०, ४, ४, १४;

प्रायणीय

(१) प्रायणीयाख्यो यः कर्मविशेषोऽस्त्येतेन यजमानाः स्वर्गं लोकं सामीप्येन प्राप्नुवन्ति । तस्मात्प्रयन्त्यनेनेति व्युत्पत्त्या तत् प्रायणीयनामसंपन्नम् । —ऐ. ब्रा. १, २, १;

(२) प्रकर्षेण यन्ति गच्छन्ति स्वर्गमनेनेति । —तां. म. ब्रा. ४, २, १;

(३) प्रयन्त्यनेनेति प्रायणीयं प्रथममहः । —तां. म. ब्रा. ११, ४, ६;

(४) प्रैति प्रारभत अनेन सौमिकं कर्मेति प्रायणीयः ।

—श. ब्रा. ३, २, ३, १;

प्रार्थ

प्रकर्षेण इयर्ति गच्छतीति प्रार्थोऽनड्वान् । —तां. म. ब्रा. ११, १, ६;

प्रावित्र

प्रकर्षेणावतीति प्रावित्रः यज्ञः । —श. ब्रा. १, ४, ३, १;

प्राशित्रहरण

प्राशित्राख्यो यो भागः स ह्रियत अनेनेति प्राशित्राहरणं गोकर्णाकृतिपात्रम् । —श. ब्रा. १, २, ४, ६;

प्राशू

प्रकर्षेणाश्यते व्याप्यतेऽभिमतमनेनेति प्राशूः पराक्रमः ।

—तै. ब्रा. १, १, ५, १;

प्रासह

प्रकर्षेण सहत अभिभवतीति प्रासहः बलम् । —श. ब्रा. ११, ४, १, ६;

प्रेङ्ख

प्रकर्षेणेङ्खते वलते इति व्युत्पत्त्या प्रेङ्खनाम संपन्नम् ।

—ऐ. आ. १, २, ३ (७);

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

प्रैष

(१) देवा । होता यक्षत् । इत्यादिभिः प्रैषमंत्रैः प्रैषं प्रकृष्टं सोमस्यान्वेषणमैच्छन् । ततः प्रेष्यत इति व्युत्पत्त्या मंत्राणां प्रैषनाम संपन्नम् । —तै. ब्रा. २, २, ८, ५;

(२) ज्योतिष्टोमाख्यो यज्ञो यदा केनचिन्निमित्तेन देवेभ्य उद क्रामत् तदानीमुत्क्रान्तं यज्ञं प्रैषैर्होता यक्षदग्निं समिधेत्येवमाद्यैः प्रैषमन्त्रैः तस्य यज्ञस्याह्वनमैच्छन् । यस्मादेवं तस्मात् प्रैषन्त्यह्वानं कुर्वन्त्येभिरिति व्युत्पत्त्या मंत्राणां प्रैषनाम संपन्नम् ।

—ऐ. ब्रा. ३, ११,६;

प्रोक्षणी

प्रोक्षत्याभिरिति प्रोक्षण्य आपः । —श. ब्रा. १, २, ३, २०;

फ

फाल

फालयन्ति भूमिं विदारयन्ति ते फालाः । —श. ब्रा. ७, १, ४, ६;

फाल्गुन

यस्मिन् मासे फाल्गुनी पौर्णमासी युज्यते स फाल्गुनः ।

—तां. म. ब्रा. ५, ६, ७;

ब

बन्धु

(१) बध्नातीति बन्धुः (सूर्यः) । —श. ब्रा. ३, ४, १, २१;

(२) (उपयामस्य बन्धुः)—बध्यते नियमेन प्रयुज्यते स्वार्थे शब्दो येन तत् प्रवृत्तिनिमित्तं बन्धुः । —श. ब्रा. ४, १, २, १५;

(३) बध्यत अनेन स्तुतिरिति बन्धुर्वाक्यशेषः ।

—श. ब्रा. ५, १, ५, १८;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

बर्हिषद्

(१) बर्हिषि दर्भे सीदन्त्युपविशन्तीति बर्हिषदः पितरः।

—ऐ. ब्रा. ३, १३, ३;

(२) बर्हिषि सीदन्तीति बर्हिषदोऽकृतसोमयागाः केवल हविर्यज्ञयाजिनः पितरः।

—श. ब्रा. २, ५, २, ५;

बहिःश्रि

आस्यबाह्यदेशे श्रयति वर्तत इति।

—श. ब्रा. ११, २, ८, १०;

बहुकार

बहुकरोतीति (बहुकार यजमानः)।

—श. ब्रा. ५, ४, १, १४;

बिभ्रद्वाज

वजिधातुर्गत्यर्थः। गतिमत्वात्प्रजानां देहो वाजशब्देनोच्यते। अथवा श्रुतौ 'अन्न वैवाज' इत्युक्तेरन्नसंबंधाद्वाजशब्देन प्रजा विवक्षिताः। तं प्रजारूपं वाजमेष प्राणः स्वप्रवेशेन बिभर्ति पोषयतीति बिभ्रद्वाजः।

—ऐ. आ. २, २, २ (१०);

बेकुरा

विकिर्व्याप्तिकर्मानाम शब्दप्रसिद्धौ सर्वत्र व्यापनात् बेकुरेति (सरस्वती)।

—तां म. ब्रा. १, ३, १;

बैन्द

बिन्दुर्जलं (?) तेन जीवतीति शौष्कलस्तम्। —तै. ब्रा ३, ४, १२, १;

ब्रह्मकृत्

ब्रह्म परिवृढमिदं कर्म करोतीति।

—तै. ब्रा. २, ८, ६, ४;

ब्रह्मचारिन्

ब्रह्म वेदः तत्र चरति गच्छतीति ब्रह्मचारी।

—सा. वि. ब्रा. १, २, २;

ब्रह्मवाह

ब्रह्माणि वेदान्वहतीति ब्रह्मवाहो वेदैरविना भूतः सूर्यः।

—तै. ब्रा. २, ४, ६, २;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

ब्रह्मवित्

तथाविधं ब्रह्म वेत्ति मनसा साक्षात्करोतीति ब्रह्मवित् ।

—तै. आ. ८, २, १;

ब्रह्मवृद्धि

ब्रह्मणा वेदेन वर्द्धत इति ब्रह्मवृद्धिः । —वंश. ब्रा. १, १;

ब्रह्मश्री

ब्रह्मणा वेदेन श्रीयते । ब्रह्म वेदं श्रयतीति वा ।

—षड्. विं. ब्रा. १, २, १०;

ब्रह्मोद्य

ब्रह्म तत्त्वस्वरूपमुद्यत प्रतिपाद्यते येन तत् । —श. ब्रा. ११, ३, ५, १;

ब्राह्मण

ब्रह्मणा वेदेनानन्तेन चेष्टन्ते नित्यनैमित्तिकादीनि कर्माणि कुर्वन्तीति ब्राह्मणाः । यद्वा । ब्रह्म अधीयते विदन्ति वा ब्राह्मणाः । —वंश. ब्रा. १, १;

भ

भन्दना (ब्रेशी-आपः)

भन्दन्ते भद्रा भवन्तीति भन्दनाः । —श. ब्रा. ११, ४, ३, ८;

भर

(१) भ्रियते संपाद्यते हविरत्रेति भरो यज्ञः । —तै. ब्रा. २, ८, १, ३;

(२) भरः संग्रामस्तं तन्वन्ति विस्तारयन्तीति भरता योद्धारः ।

—ऐ. ब्रा. २, ६, १;

(३) बिभर्ति फलमिति भरो यज्ञस्तं भरं तन्वन्ति इति भरता ऋत्विजः । —ऐ. ब्रा. ३, १२, ७;

भरेषुजा

भरेषु भरणीयेषु अग्निष्टोमादिषु जायते निवसतीति भरेषुजास्तं भरेषुजाम् ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

भागदुघ (पूषन्)

भागं दोग्धीति भागदुघ: भागप्रद:। —श. ब्रा. १, १, २, १७;

भाजन

भाजयतीति भाजनं स्थानम्। —श. ब्रा. ३, २, ६, ११;

भान्त

भाति दीप्यत इति भान्तश्चन्द्र:। —श. ब्रा. ८, २, ४, १०;

भुज्यु

वृष्ट्यादिसंपादनेन सर्वाणि भूतानि भुनक्ति रक्षतीति भुज्युशब्दो यज्ञे समवेतार्थ:। —श. ब्रा. ६, ३, ३, ११;

भुव

भवत्यस्मादिति व्युत्पत्त्या भुवशब्दोऽग्निवचन:। —श. ब्रा. ८, १, १, ४;

भूत

भवन्ति सद्भावं प्रतिपद्यन्त इति भूतानि। —श. ब्रा. २, ३, ४, १;

भूमि

(१) यस्मादियं मृत्तिका प्रथिता तस्माद् पृथिवी नाम संपन्नम्। तत: सन्तुष्ट: इदं स्थावरजङ्गमाधारभूतं वस्त्वभूदित्युवाच। ततो भवतीति भूमिनाम संपन्नम्। —तै. ब्रा. १, १, ३, ७;

(२) वेदशास्त्रलौकिकभाषारूपेण या वाक् सन्तता तस्या सकाशाद् वक्तॄणां गानभागमनपेक्ष्य तृतीयं भागं स प्रजापतिरच्छिनत् ……स भाग एतीत्युच्चार्य प्रदर्श्यते अकार इति शब्दनरस्सन् एतीति निदर्श्यते। अकारस्तृतीयो भाग:……तदकारस्वरूपञ्चात्र वाक्यार्थ……रूपा भूमिरभवत्………प्रजापति: स्वमनस्येव चिन्तयामास………इदं पृथिवीरूपमभूदिव वै पूर्वमविद्यमानं सदिदानीं विद्यमानमेवाऽऽसीत् इत्येवं यस्माच्चिन्तितवान् तत्तस्मात्कारणात् अस्या भूमे अभूदिति व्युत्पत्त्या भूमिनाम संपन्नम्। —तां. म. ब्रा. २०, १४, २;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

भूयस्कर (यजमान)

भूयो भूयो महत्तरं करोतीति भूयस्करः। —श. ब्रा. ५, ४, १, १४;

भोजन

भुज्यतेऽनेनेति भोजनमन्नम्। —सा. वि. ब्रा. १, ३, ७;

म

मंत्रकृत्

मन्त्रं कुर्वन्तीति मन्त्रकृतः। —तै. आ. ४, १, १;

मंहम

महनीयं स्तुत्यं यथा भवति तथा कृत्स्नं निर्मातीति मंहमः।

—सा. वि. ब्रा. १, २, २;

मदिन्तमा

अत्यर्थं मदयन्ति तर्पयन्तीति मदिन्तमा। —श. ब्रा. ११, ४, ३, ८;

मधुश्च्युत्

मधुश्च्योतयति च्यावयति क्षारयतीति मधुश्च्युदिति।

—तां. म. ब्रा. ३, ११, १७-१८;

मनश्चित्

अर्का अर्चनीया मनसा चीयन्ते संपाद्यन्ते इति मनश्चितः।

—श. ब्रा. १०, ४, १, १;

मयन्द

मय इति सुखनाम। तद्ददातीति मयन्दम्। —श. ब्रा. ८, १, ७, ११;

मरित्र

म्रियन्ते संज्ञप्यन्ते पशवो येष्विति मरित्राः पुनः पुनर्विशस्यमानपशुकाः।

—तै. ब्रा. २, ७, १२, १;

मरीचिपा

देवास्ते मरीचय एव सन्तः संस्कृतिरित्यादयो याज्यान् पिबन्तीति मरीचिपाः। —श. ब्रा. ४, १, १, २५;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

महावद

ब्रह्मवादिन .... महान्तं प्रौढं वेदं वदन्तीति महावदाः ।

—ऐ. ब्रा. ५, २५, ८;

महाव्रत

(१) महान् भवत्यनेन व्रतेनेति । —ऐ. आ. १, १, १;

(२) प्रजासृष्टिव्यापारेण श्रान्त प्रजापतिर्यदा शयनं कृतवाँस्तदा देवाः सर्वेषां भूतानां मध्ये सारं भूतं तेजः संपाद्य तेन तेजसा तमेनं श्रान्तं प्रजापतिं चिकित्सितवन्तः । ततोऽयं प्रजापतिर्महान्-भूदित्युक्तवन्तः । यदिदं रसरूपं तेजस्तदिदं महाव्रताख्ये विद्यमानं हविः । तथा सति महानवतिष्ठानेन कर्मणेति व्युत्पत्त्या तस्य कर्मणो महाव्रतो नाम संपन्नम् । —तै. ब्रा. १, २, ६, १;

मह्य

मह्यन्ते पूज्यन्ते इति मह्यः एतच्च 'एतासां' गवां साधारणं नाम ।

—श. ब्रा. १, १, ५, २२;

मा

मीयते परिच्छिद्यत इति मा । —श. ब्रा. ८, २, २, ५;

मातरिश्वन्

(१) यदा वायुर्दक्षिणस्यां दिशि संचरति तदा मातरिश्वेति तस्य नाम ध्यातव्यम् । मातर्यन्तरिक्षे श्वयति वर्धते मातृवन्नयतीति वा मातरिश्वा सर्वेषामाप्यायनकारी । —तै. ब्रा. २, ३, ६, ६;

(२) मातरि अन्तरिक्षे श्वयति इति मातरिश्वा वायुरादित्यो वा ।

—श. ब्रा. १, ५, ४, ११;

मात्रा

तस्य त्रिवृत्स्तोमस्य संबंधिनी मीयतेऽवगम्यते इति मात्रा धनादि-संपद्यावती । —तै. ब्रा. १, ५, १०, २;

मान्दा

भूतानि यत्र मन्दन्त इति मान्दाः । —श. ब्रा. ५, ३, १, १४;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

माया

मीयन्ते प्रमीयन्ते पदार्था अभिश्चित्तवृत्तिस्ताः चित्तवृत्तयो मायाः।
—तै. आ. ४, ५, ७;

मितद्रु

(१) महान्तमपि पन्थानं मितमल्पमिव द्रवन्ति गच्छन्तीति मितद्रवः।
—तै. ब्रा. १, ३, ६, ४;

(२) मितमल्पं द्रवन्ति गच्छन्तीति मितद्रवः। —श. ब्रा. ५, १, ५, २२;

मित्रभू

मित्रात् सूर्यात् भवतीति मित्रभूः। —वंश. ब्रा. २, २४;

मुद्

व्रीह्यादिभिरोषधिभिरिदं सर्वं जगन्मोदत इति ओषधयो मुदः।
—श. ब्रा. ९, ३, ३, ७;

मृचय

मृचिधातुर्गत्यर्थः। मर्चयति गच्छतीति गतिमान् प्राणी।
—ऐ. ब्रा. ४, १७, ४;

मेधाकार

ग्रंथतदर्थधारणशक्तिर्मेधा तां करोतीति मेधाकारस्तम् (अग्नि)।
—तै. ब्रा. ३, ११, ६, ३;

मोहम

मोहो वैचित्र्यमज्ञानं तेन मातीति मोहमः। —सा. वि. ब्रा. १, २, २;

य

यज्ञ

(१) इज्यत इति व्युत्पत्त्या यज्ञशब्दः सर्वत्र भागवाची। इह तु यजतीति व्युत्पत्त्या यष्टारमाचक्षते। —ऐ. ब्रा. १, ५, २;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

(२) इज्यतेऽनेनेति यज्ञ: हवि:। —श. ब्रा. १, १, २, १; ७;

(३) इज्यतेऽनेनेति यज्ञ: पुरोडाश:। —श. ब्रा. १, १, ६, १७;

यज्ञगाथा

सर्वैरपि सुभाषितत्वेन गीयत इति गाथा यज्ञविषया गाथा।

—ऐ. ब्रा. ३, १४, ५;

यज्ञनी

यज्ञं नयति निष्पादयतीति। —श. ब्रा. १, ३, १, १६;

यज्ञिय

यज्ञं यज्ञसाधनं हविरर्हतीति। —श. ब्रा. १, ४, १, १५;

यत्कारी

यत्कर्म करोतीति यत्कारी तादृशश्चिकीर्षु: पुरुष:।

—तै. ब्रा. १, ५, २, १;

यमन

यमयतीति यमनो नियन्ता। —श. ब्रा. ६, ३, १, ११;

यव

यौतीति यव:। —श. ब्रा. १, ५, ५, २५;

याम

यायते गम्यते प्राप्यते देवैरिति यान्ति संगच्छन्ते यत्र परस्परं देवा इति वा यामं कर्म। —श. ब्रा. ६, २, ४, ३;

युग्य

युगं वहतीति युग्य इति युग्यशब्देनाश्वोऽभिधीयते।

—श. ब्रा. ६, ३, ४, ११;

युज

युज्यन्ते शरीराख्यरथे बध्यन्त इति युज:। —ऐ. आ. २, ३, ८ (२०);

युधाजय

युधा अजैष्म असुरानिति इंद्रोऽब्रवीत् तस्मात् युधाजयस्य हेतुत्वात् यौधाजयमिति नाम संपन्नम्। —तां. म. ब्रा. ७, ५, १५;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

युधाजित्

युधा युद्धेन शत्रून् जयतीति इंद्र एव युधाजित् । —तां. म. ब्रा. ७, ५, १४;

यू

यौति मिश्रयतीति यूः वसा । —श. ब्रा. ३, ६, ४, २०;

यूनर्वा

यूनर्व्वर्चः पुरुषं यूनर्ति प्राप्नोतीति यूनर्व्वा । —तां. म. ब्रा. ६, ४, ८;

योग

युञ्जन्ति देवा अत्रेति योग कर्म । —श. ब्रा. ६, २, ४, ४;

योषित्काम

योषितः कामयन्त इति । —श. ब्रा. ३, २, ३, २;

र

रक्षोभाष्

रक्षोभिर्भाष्यत इति रक्षोभाष् । —ऐ. ब्रा. २, ६, ७;

रथेष्ठा

योद्धुं यो रथमारोहति स रथेष्ठाः । —तै. ब्रा. ३, ८, १३, २;

रमति

रमन्तेऽस्याँ देवपितृमनुष्या इति रमतिः । —तै. ब्रा. ३, ७, ७, १;

राजसू

राजानं सुवते जनयन्ति अनुजानन्तीति राजस्वः ।
—श. ब्रा. ५, ३, १, ३; २, १६;

राजसूय

राजा सूयतेऽभिषिच्यतेऽस्मिन् कर्मणीति । —तै. ब्रा. २, ७, १५, २;

रातिषाच

(१) रातिं फलदानं सचन्ते समवयन्तीति रातिषाचः ।
—तै. ब्रा. २, ७, १२, ६;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

(२) रातिर्मित्रम् तेन सचन्त इति रातिषाचो मित्रद्वारा संबध्यमानाः पुरुषाः ।
—तै. ब्रा. २, ८, ६, ४;

रात्रिसाचयानि

रात्रिं सचन्ते समवयन्तीति रात्रिसाचयानि रात्रौ संचरणशीलानि खलु रक्षांसि ।
—श. ब्रा. ७, २, ४, १९;

रामा

शरीरं रमणीयं करोतीति रामा ।
—तै. ब्रा. २, ४, ४, १;

राष्ट्रदा

स्वभावत एव राष्ट्रं जनपदं ददातीति राष्ट्रदाः । —श. ब्रा. ५, ३, १, ५;

रुद्र

रुद् वैदिकः शब्दस्तं द्रवति प्राप्नोति ।
—तै. आ. १०, १०;

रुशत्पशु (उषस्)

रुशन्तः परस्परध्वनिं कुर्वन्तः पशवो यस्यामुषसि सेयं रुशत्पशुः ।
—ऐ. ब्रा. २, ७, ८;

रूर

रूरु इति शब्दायमानो दहतीति रूरोऽग्निः । —तां. म. ब्रा. ७, ५, १०;

रेतोधस्

जाठराग्निर्वै रेतः पक्वं कृत्या गर्भरूपेण धारयत्यतो रेतोधाः ।
—तै. ब्रा. ३, ७, ३, ७;

रेवती

यस्मिन्नक्षत्रे देवा अरवन्तासुरभीति करं शब्दमकुर्वंस्तस्य रेवतीति नाम ।
—तै. ब्रा. १, ५, २, ६;

रोहिणी

(१) रुह्यन्ते प्राप्यन्त इति रोहाः कामास्ते यस्यां रुह्यन्ते सा रोहिणी ।
—तै. ब्रा. १, १, २, २;

(२) रोहतीति व्युत्पत्त्या रोहिणी नाम संपन्नम् ।
—तै. ब्रा. १, १, १०, ६;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

(३) रोहत्यनया पश्वादिसमृद्धिमिति । —श. ब्रा. ११, १, १, ७;

रोहिणौ

स्वर्गं रोहत्याभ्यां पुरोडाशाभ्यामिति । —तै. ब्रा. ५, ७, ४१;

रौहिणहवन्यो

रोहिणौ पुरोडाशौ हूयेते आभ्यामिति रौहिणहवन्योः ।
—श. ब्रा. १४, १, ३, १;

ल

लोक

(१) लोक्यतेऽवगम्यत इति व्युत्पत्त्या लोकशब्दः कालपरः ।
—तै. ब्रा. १, १, ४, ३;

(२) लोक्यत इति लोकः ।
—सा. वि. ब्रा. २, १, ४; श. ब्रा. ११, १, १, २;

लोकंपृण

(१) अवशिष्टं स्थानं पृणाति पूरयतीति लोकंपृणा ।
—श. ब्रा. ८, १, ४, ६;

(२) सर्वलोकान् पूरयन्तीति लोकंपृणाः । (इष्टका)
—श. ब्रा. १०, ३, १, १८;

व

वयस्कृत्

वयः अन्नं करोतीति वयस्कृत् । —श. ब्रा. २, ३, २, २१;

वयुनावित्

यद्वा वीयते गम्यत इति वयुनं यज्ञमार्गः । —श. ब्रा. ३, ४, ३, ११;

वयोधस्

वय आयुष्यं धारयतीति वयोधास्तादृशमिन्द्रम् । —तै. ब्रा. २, ६, १७, १;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

वरसत्

(१) वरे श्रेष्ठे काशोद्धारावत्यादौ पूजनीयदेवरूपेण सीदतीति वरसत् ।

—तै. आ. १०, १०;

(२) वरे श्रेष्ठे मण्डले सीदतीति ।

—ऐ. ब्रा. ४, १८, ६; श. ब्रा. ५, ३, ५, २२;

वराहु

वरं श्रेष्ठं वर्षमाह्वयतीति वराहुः ते च बहवः वराहवः ।

—तै. आ. १, ९, ४;

वरिवोवित्

वरिवो धनम्……तं विन्दति वेदयतीति लम्भयतीति वरिवोवित् ।

—श. ब्रा. ४, ३, २, १५;

वरुण

(१) सर्वमपि वृणोति व्याप्नोतीति वरुणः प्रजापतिः ।

—श. ब्रा. ४, ३, १, २६;

(२) ऊर्ध्वं निर्गच्छन्तं प्राणं आवृणोति इति वरुणोऽपानः ।

—श. ब्रा. ८, २, ५, ६;

वरुणसव

वरुणाभिषेकः वरुणोऽभिषिच्यते यस्मिन्निति । —श. ब्रा. ५, ३, १, १२;

वर्षनिर्णिक्

वर्षेण निर्णेजन्ति भूमिं शोधयन्तीति वर्षनिर्णिजः ।

—तै. ब्रा. २, ७, १२, ४;

वलगह

वलगान् हन्तीति वलगहा । —श. ब्रा. ३, ४, ४, ८;

वसु

तस्य (रथस्य) उपरि यजमानं वासयतीति वसुः ।

—श. ब्रा. ५, ३, ५, २२;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

वस्यष्टि

वसनेन तमसां विवासनेनाश्नुते व्याप्नोति विश्वमिति वस्यष्टिः उषाः ।

—तां. म. ब्रा. १, १०, ११;

वाज

वाजयति बलयतीति । —श. ब्रा. १, ३, ३, ६;

वाजजित्

वाजमन्नं जयत्यनेनेति वाजजित् तत्साम । —तां. म. ब्रा. १३, ९, २०;

वाजस

वाजमन्नं सनोति सम्भजतीति वाजसाः । —श. ब्रा. ४, ३, १, १३;

वाजसाति

वाजोऽन्नं सोऽस्मिन् सायते सम्भज्यत इति वाजसातिः ।

—श. ब्रा. ४, ३, १, १३;

वाजसृत्

वाजमन्नमुद्दिश्य सरन्ति धावन्तीति वाजसृतः । —तै. ब्रा. १, ३, ६, ७;

वातापि

वायुवदाप्नोति सहसा गच्छतीति वातापिः । —तै. ब्रा. २, २, २, २;

वामदेव्य

वाममिदं धनं सामलक्षणं देवेष्वजनि उदभूदिति तस्मादेवं ताभ्यामुक्तत्वाद्वामदेव्यमिति तन्नाम संपन्नम् । —तां. म. ब्रा. ७, ८, १;

वायुनाधा

वयो वयुनं नह्यन्ति बध्नन्तीति वयोनाधाः प्राणाः ।

—श. ब्रा. ६, १, ८, १;

वार

वार्यन्ते प्रवेशार्थिनः प्राणिनो यत्र तत्सुवर्गस्य द्वारं वारमित्युच्यते ।

—तै. ब्रा. २, ५, ४, ५;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

वारवन्तीय

दहन्तं तमग्नि वरणो वृक्षविशेषः तस्य शाखयाऽवारयन्त अशमयन् तस्माद्वरणशाखया वार्यमाणोऽग्निस्तावकत्वात् अस्य साम्नो वारवन्तीयन्नाम संपन्नम् । —तां. म. ब्रा. ५, ३, ६; १८, ११, ४;

विक्रम

विक्रमशब्देनाऽत्र विक्रम्यते अनेनैवेति व्युत्पत्त्या एकपादप्रक्षेपपरिमितोंऽश उच्यते । —श. ब्रा. १, ६, १, २३;

विघन

विघनाख्यं क्रतुविशेषं एकाहं निश्चित्य तदनुष्ठानेनैतासां प्रजानां तं संस्तम्भं स्तम्भनरूपं प्रतिकूल्याचरणं व्यहन् विहतं कृतवान् । यद्यस्मात्कारणादनेन कर्मणा विहतवान् तस्मात् विहन्त्यनेनेति व्युत्पत्त्या कर्मणो विघननामसंपन्नम् । —तै. ब्रा. २, ७, १८, १;

वित्ति

विद्यते लभ्यत इति वित्तिः प्राप्तव्योऽर्थः । —श. ब्रा. ४, १, ३, ५;

विधा

विधीयते क्रियते आभिरद्भिरिदमिति विधा आपः ।

—श. ब्रा. ८, १, ६, ८;

विधृति

विविधमधोऽवस्थितो बर्हिषः पृथक्त्वेन प्रस्तरो धार्यत आभ्यामिति विधृतिः । —तै. ब्रा. ३, ७, ६, ७;

विनाराशंस

नरा शस्यन्तेऽनयेति नाराशंसा स्तुतिः तद्रहिता ऋक् अस्याह्नो रूपम् ।

—तां म. ब्रा. १०, ७, ६;

विपश्चित्

विप् इतिवाङ्नाम । सकलशाखागतान् मंत्रान् एकत्र कर्मणि सञ्चिन्वन्तीति विपश्चितः । —श. ब्रा. ६, २, ३, १६;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

विप्रचित्ति

श्रोत्रेन्द्रियं शब्दवेदनसद्भावात् कविरूपं तच्च शब्दान् विविच्य प्रकर्षेण चेतयत इति विप्रचित्तिः । —तै. ब्रा. ३, १०, ८, ३;

विभात्

विशेषेण भातीति । —ऐ. ब्रा. ७, ३४, ८;

विभू

विशिष्टेन रूपेण भवतीति विभूः । —तै. ब्रा १, १, ७, ३;

विराट्

(१) विविधम् राजन्ते वस्तून्यत्र ।
—तै. आ. ३, १२, २; तै. ब्रा. १, १, ५, १०; ७, २;

(२) विशेषेण राजत इति विराडग्नि ।
—तै. ब्रा. १, ४, ४, १०; २, ५, १, २; ७, ७, २;

(३) विस्पष्टं राजत इति ब्रह्माण्डदेहः । —तै. आ. १०, २२;

(४) यस्मादन्नस्य विराजनहेतुत्वं तस्मात्कारणादिहलोकं यस्यैव पुरुषास्यान्नं प्रसूतं भवति स एव जनमध्येऽत्यन्तं शोभते तस्माद्विराजत्यनेनेति व्युत्पत्त्या विराट् शब्दो व्युत्पन्नः ।
—ऐ. ब्रा. १, १, ५;

(५) विराजत इति विराट् । —तां. म. ब्रा. ६, ३, ६;

(६) चरुपुरोडाशादिना विशेषेण राजत इति विराट् वेद्यात्मिका पृथिवी । —श. ब्रा. १, ४, ३, २०; द्र. ७, ३, २, २३;

विलम्बसौपर्ण

सौपर्णानां साम्नां मध्ये एष आत्मा वै एतद् विलम्बसौपर्णं साम मध्यदेहस्थानीयं यदष्टमेऽहनि विनियुज्यते । ये ऐडस्वाराख्ये सौपर्णे सप्तमनवमयोरह्नोर्विनियुज्येते एतावभितः पार्श्वयोर्वर्तमानौ पक्षौ भवतः । ……एवं पक्षयोर्मध्ये आत्मा देहमध्ये वीवलम्बते विशेषेण लम्बमानो भवति । ……यद्यस्मात् पक्षौ पक्षभूतयोः सौपर्णयोर्मध्ये आत्मा आत्मभूतः सौपर्णं विलम्बते तस्मात् विलम्बसौपर्णमिति साम्नो नाम संपन्नम् ।

—तां. म. ब्रा. १४, ९, २०;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

विश्व

विशन्ति देवानां हृदयानीति विश्वानि शस्त्राणि ।

—तां. म. ब्रा. ६, ९, १५;

विश्वकर्मा

(१) कृत्स्नविषयव्यापारं करोतीति विश्वकर्मा ।

—श. ब्रा. १, ४, २, २५;

(२) विश्वं क्रियतेऽनयेति व्युत्पत्त्या वागेव विश्वकर्मा ।

—श. ब्रा. ८, १, २, ९;

विश्वधायस्

धीयत इति धायाः । —श. ब्रा. १, ५, ४, १७;

विश्वप्री

विश्वं प्रीणयतीति विश्वप्रीः । —तै. ब्रा. ३, ११, ९, ९;

विश्वमिन्व

विश्वं मिनोत्येतावदिति निश्चिनोतीति विश्वमिन्वः ।

—तै. ब्रा. २, ८, १, ६;

विश्ववारा

स्वकीयक्षीरेण क्षुधादिरूपं विश्वं सर्वमपि उपद्रवं वारयन्तीति विश्ववाराः । —तै. ब्रा. ७, २, १३, ४;

विश्ववेदस्

विश्वं वेत्ति जानातीति विश्ववेदाः (पूषन्) । —तै. आ. १, १, १;

विश्वव्यचा

(१) विश्वं व्यचति व्याप्नोतीति विश्वव्यचा वृष्टिः ।

—तै. ब्रा. १, ५, १, ५;

(२) विश्वं व्यचति व्याप्नोतीति । —श. ब्रा. ८, १, २, १;

विश्वसृक्

(१) विश्वं सृजन्तीति विश्वसृजः । — तै. ब्रा. ३, १२, ९, ७;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

(२) सृष्टिकामा देवा एतद् सत्रमनुष्ठाय सत्यसंकल्पाः सन्तः इदं विश्वमसृजन्त । एतेषां विश्वसृज इति संज्ञाऽप्येतन्निमित्ता ।

—तां. म. ब्रा. २५, १८, २;

विश्वसृत्

विश्वं सरति प्राप्नोतीति विश्वसृत् सर्वजगद्व्यापी । —तै. आ. १०, ६३;

विश्वाची

विश्वमञ्चतीति विश्वाची । —तै. आ. १०, ३६;

विषासहि

विषवद्वैरिणा सहतेऽभिभवतीति विषासहिस्तम् ।

—तै. ब्रा. २, ७, १५, ६;

विषूची

विश्वमञ्चन्ति परस्परं वियुज्य वर्तन्त इत्याग्नेयादयश्चतस्रो विदिशो विषूच्य इति । —ऐ. आ. २, १, ६;

विष्णु

व्याप्नोतीति विष्णुः यज्ञश्च व्यापकत्वात् विष्णुरिति व्यपदिश्यते ।

—श. ब्रा. ४, २, १, ६;

विसर्जन

विसृज्यते अनेनेति 'विसर्जनं' हविरिति । —श. ब्रा. १, १, ४, ८;

विहव

विशेषेण हूयन्ते देवा अत्रेति विहवो यज्ञः । —तै. ब्रा. २, ८, १, ३;

वीर्य

वीरयति नानाप्रकारकार्यारम्भाय ईरयति तद्वीर्यं विव्रियतेऽनेनेति वीर्यम् । —श. ब्रा. ५, ४, ७, ३-४;

वृक्ष

वृश्च्यते तत्त्वज्ञानेनोच्छिद्यत इति वृक्षः संसारः । —तै. आ. ७, १०;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

वृत्र

वर्तमानः सर्वं व्याप्नुवन्नेव यतः समभवत् तस्मात् तस्य नाम सर्वं व्याप्य वर्तत इति व्युत्पत्त्या वृत्र इति संपन्नम् । —श. ब्रा. १, ५, २, ६;

वृत्रखाद

वृत्रं खादति भक्षयतीति वृत्रखादः । —ऐ. ब्रा. ५, २२, ७;

वृत्रतुर्

वृत्रं तुर्वन्ति घ्नन्तीति वृत्रतुरः आपः । —श. ब्रा. ३, ७, ५, १६;

वृत्रहा

वृत्रं शत्रुं हन्तीति वृत्रहा । —ऐ. ब्रा. १, १, ४;

वेद

वेद्यते ज्ञायतेऽनेनेति वेदत्वनिरुक्तिः । —तै. ब्रा. ३, १०, ९, १४;

वेदि

देवा सर्वामेतां पृथिवीं सम्यगलभन्त । अतो विद्यते लभ्यते अनेनेति यज्ञस्थानस्य वेदि नामधेयम् । —श. ब्रा. १, २, ३, ७;

वेदिषत् (होता)

(१) सोमयागाद्यङ्गभूतायां वेद्यां सीदतीति । —तै. आ. १०, १०;

(२) यागवेद्यां सीदतीति । —ऐ. ब्रा. ४, १८, ६;

(३) (हंस) वेद्यां सीदतीति । —श. ब्रा. ५, ३, ५, २२;

वेन

वेनति दीप्यत इति वेनः सूर्यस्य नाम संपन्नम् । —श. ब्रा. ७, ३, १, १४;

वैश्वानर

विश्वान्नरान् पुण्यपापरूपां गतिं विश्वानरः सर्वात्मा एक एव ईश्वरो विश्वानर एव वैश्वानरः·······यद्वा विश्वैर्वा नरैः प्रत्यगात्मा यो विभज्य नीयते इति स वैश्वानरः । —श. ब्रा. १०, ४, ४, ११;

व्यथिषत्

उष्मा ततः सकाशात् व्यथयतीति व्यथिषत । —श. ब्रा. ३, ६, ४, २३;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

व्यान

अन्नपानादिरसं विविधं सर्वासु नाडीष्वनिति प्रेरयतीति व्यानः ।

—श. ब्रा. १, १, ५, १६;

व्याममात्र

तिर्यक्प्रसारितौ बाहू यावत्परिमाणौ भवतः तस्य परिमाणविशेषस्य व्यायम्यतेऽस्मिन् बाहुद्वयमितिव्युत्पत्त्या व्यायाम इति संज्ञा। स एवात्र वर्णलोपेन व्याम इत्युच्यते। —श. ब्रा. ७, १, १, ३७;

व्याहृति

(१) व्याह्रियन्त इति व्याहृतयः मंत्राः ।

—श. ब्रा. १, १, १, १३; १, २, ३, १३;

(२) व्याह्रियन्त व्याहृतयः वाक्यानि ।

—श. ब्रा. १, ४, ३, १६; ७, २, १, ६;

व्योमसत्

(१) व्योम्न्याकाशे नक्षत्रादिरूपेण सीदतीति व्योमसत् ।

—तै. श्रा. १०, १०;

(२) व्योम्न्याकाशमार्गे सीदतीति व्योमसत् । —ऐ. ब्रा. ४, १८, ६;

(३) (हंस) सूर्यं वोढुं व्योमनि आकाशे सीदतीति ।

—श. ब्रा. ५, ३, ५, २२;

व्रेशी

व्रेश्यादयः शब्दा देवलोकस्थानामपां संज्ञा। व्रेश्यन्ते सिच्यन्ते आभिरिति व्रेश्यः। —श. ब्रा. ११, ४, ३, ८;

श

शमी

शमयत्यनेनेति व्युत्पत्त्या शमीति नाम संपन्नम् । —तै. ब्रा. १, १, ३, १२;

शम्यापराध

शम्यापरास्ताः विध्यति निपतति यत्रेति सः शम्यापराधो देशः ।

—श. ब्रा. ५, ४, ४, २;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

शर्करा

तां भूमिं स प्रजापतिः शर्कराभिः क्षुद्रपाषाणैः दृढीचकार। कृत्वा च नोऽस्माकं सुखमभूदित्युवाच। तस्मात्कारणात् शं सुखं कृतमाभिरिति व्युत्पत्त्या शर्करेति नाम संपन्नम्। —तै. ब्रा. १, १, ३, ७;

शस्त्र

शंसत्यनेनेति शस्त्रमिति ऋक्समुदायस्य नामधेयम्।

—श. ब्रा. ४, २, ६, ३;

शाकदास

शक्यते समाधिनावगन्तुमिति शाक ईश्वरः। तस्य दासः शाकः। तन्नामकात्। —वंश. ब्रा. २, ५;

शास

शस्यते हिंस्यते अनेनेति शासः असिः। —श. ब्रा. ३, ६, २, ४;

शिक्य

शक्नोत्यनेन अवस्थातुमिति वर्णव्यापत्त्या शिक्यशब्दो निष्पन्नः।

—श. ब्रा. ६, ५, १, १९;

शिशुमार

शिशून् मारयति मुखेन निगिरतीति शिशुमार नलग्राहविशेषः।

—तै. आ. २, १९, १;

शीक्षा

शिक्ष्यन्ते वेदनीयत्वेनोपदिश्यन्ते स्वरवर्णादयो यत्रासौ शिक्षा सैव शीक्षा। —तै. आ. ७, २, १;

शुक्र

शोचते दीप्यते इति तस्य शुक्रनामधेयम्। —श. ब्रा. ४, १, ६, १;

शुचिषत्

(१) शुचौ शुद्धप्रदेशे स्वर्गे सीदतीति शुचिषद्धंसः सर्वप्राणिहृदिस्थितो जीवात्मा। —तै. ब्रा. २, ६, २, १;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

(२) शुचौ शुद्धे मण्डले ज्योतिर्मये सीदतीति ।

—तै. आ. १०, १०; ऐ. ब्रा. ४, १८, ६;

(३) शुचौ देवयजने रथवाहने च सीदतीति । —श. ब्रा. ५, ३, ५, २२;

शुनंहुवीय

शुनं हुवेमेति यस्यामृचि श्रूयते सा शुनंहुवीया । —ऐ. ब्रा. ६, २६, ६;

शौष्कल

शुष्कलं बडिशं तेन जीवतीति शौष्कलस्तम् । —तै. ब्रा. ३, ४, १२, १;

श्रायन्तीय

यदश्रयन् तत् श्रायन्तीयस्य श्रायन्तीयत्वम् । —तां. म. ब्रा. १८, ११, ४;

श्री

श्रयन्ति निवसन्त्यस्मिन् काल इति रात्रिः श्रीशब्दवाच्या ।

—श. ब्रा. १०, २, २, १६;

श्रेयस्कर

श्रेयः करोतीति श्रेयस्करः । —श. ब्रा. ५, ४, १, १४;

श्रेष्ठस्था

श्रेष्ठे तिष्ठतीति श्रेष्ठस्थाः । —तां. म. ब्रा. ७, ८, २;

श्लोककृत्

श्लोकशब्दः संघवाची पद्यवाची वा । सैन्यादिरूपं संघं करोति संपादयतीति श्लोककृद्राजा । यद्वा काव्यादिग्रंथेषु पद्यं करोतीति श्लोककृत् विद्वान् । —तै. आ. ६, १०;

श्वपात्

श्ववत् पद्यते शवं गच्छतीति श्वपात् । —तै. आ. ४, २६;

श्विचीचि

श्विचीं वृद्धिमञ्चन्ति गच्छन्ति प्रतिदिनमनुष्ठानवृद्धियुक्ता इत्यर्थः ।

—तै. ब्रा. २, ७, १२, १;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

स

संकृति

तद्देवा देवस्थाने साम्नि आधारभूते तिष्ठन्तः तन्नवममहः संकृतिना साम्ना समस्कुर्वन् तत्तस्मात्संस्कारसाधनत्वात् संस्कृतेरस्य साम्नः संकृतित्वं संकृतीति नाम संपन्नम्। —तां. म. ब्रा. १५, ३, २९;

संग्रहीता

सम्यक् प्रग्रहं गृह्णातीति सङ्ग्रहीता सारथिः। —श. ब्रा. ५, ३, ५, २२;

संचर

सम्यक् चरन्त्यनेनेति संचरो मार्गः। —ऐ. आ. ५, १, १;

संजय

देवा सञ्जयेनाऽनेन साम्ना असुरान् समजयन् अभ्यजयन्। यद्यस्मादनेन साम्ना समजयन् तस्मात् संजयमिति तस्य नाम्नो संपन्नम्।

—तां. म. ब्रा. १३, ६, ७;

संदृश

अस्मदुपद्रवोपायं सम्यक् पश्यन्तीति संदृशः। —तै. आ. १, २८, १;

संयोजन

संयुज्यतेऽनेनेति संयोजनं वत्सबन्धनार्थं दाम। —श. ब्रा. ११, ३, ५, २;

संवत्सर

बहवः कालावयवाः संभूय वसन्ति यत्र सोऽयं संवत्सरः।

—तै. आ. १, ८, १;

संवर

संवृणोति विवेकमित्यविवेकादि संवरः। —तै. आ. ८, २;

संशर

संशीर्यते शिथीलीभवत्यनेनेति संशरः यत् द्वे छन्दसी संयुञ्जन्तीति (?) एष छन्दसां संशर इव वै शिथिलीभावः। —तां. म. ब्रा. ४, ४, ४;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

संसृप

सम्यक् सृप्यते प्राप्यते वीर्यमाभिरग्न्यादिभिर्देवताभिः इति संसृपः देवताः । —श. ब्रा. ५, ४, २, ३;

संस्थितसंचर

सवने समाप्ते सदसः पश्चिमद्वारेण निर्गच्छति सोऽयं संस्थितसंचरः ।

—ऐ. आ. ५, १, १;

सङ्गमन

सङ्गच्छन्ते धनान्यस्मिन्निति सङ्गमनः । —श. ब्रा. ७, १, ३, २०;

सखिवित्

अध्येतारं सखायं वेत्ति इति सखिवित् स्वाध्यायः ।

—तै. आ. २, १५, १;

सचिविद्

सचिशब्दः सखिवाची । ·······तादृशमुपकारिणं अध्येतारं वेत्तीति ।

—ऐ. आ. ३, २, ४ (१०);

सजाता

समानं जायन्त इति 'सजाता' ज्ञातयः । —श. ब्रा. १, १, ५, ७;

सदन

सीदत्यत्रेति सदनं स्थानम् । —श. ब्रा. १, ४, २, २४;

सदस्

(१) सीदत्यस्मिन्नव्याकृते कारणे सर्वं जगदिति सदः ।

—तै. आ. १०, १;

(२) सीदत्यत्रेति सदो देवयजनस्थानम् ।

—तै. ब्रा. २, ६, ४, ४; श. ब्रा. ३, ४, ३, ५;

सधि

सह धीयत अस्मिन्निति 'सधिः' सहस्थानं·······योनिः ।

—श. ब्रा. ६, ५, ६, ४;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

सध्रियक्

सह अञ्चतीति सध्रियक्। —तै. ब्रा. २, ५, ८, १०;

सध्रीची

सहाञ्चन्ति चतुष्कोणरूपेण परस्परसंश्लिष्टा वर्तन्त इति प्राच्यादयश्चतस्रो दिशः सध्रीच्यः। —ऐ. आ २, १, ६;

सन्ताप

सन्तप्यते चक्रसंघर्षेणेति सन्तापः चक्रवलयसंस्पर्शप्रदेशः।

—श. ब्रा. ३, ४, ३, १३;

सन्त्य

सन्तिर्दानं तमर्हतीति सन्त्यः। —तै. ब्रा. ३, ६, ७, २;

सन्नहन

सन्नह्यतेऽनेनेति सन्नहनं रज्जुः। —श. ब्रा. २, ५, २, १५;

सपत्नक्षित्

सपत्नान् क्षिणोतीति सपत्नक्षित्। —श. ब्रा. १, २, ४, ६;

सप्तह

सप्तपुरुषान् हन्तीति सप्तहम्। —सा. वि. ब्रा. ३, ६, २;

सभासह

सभां विद्याप्रसंगेन सहतेऽभिभवति (इति) सभासहः।

—ऐ. ब्रा. १, ३, २;

सब्रह्मचारिन्

ब्रह्मचारिभिः सह वसतीति सब्रह्मचारी। —ऐ. आ. ५, ३, ३ (१४);

समद

मदेन सह वर्तत इति समदः कलहः। —तै. ब्रा. ३, ६, ११, १;

समय

प्राणाः खलु सीताः नाड्यः तत्—संचारित्वात्। तासां नाडीरूपाणां सीतानाम् अयं मुखलक्षणः समयः सङ्गमः सम्यगयन्ते सङ्गच्छन्ते यत्र सोऽयं समयः।

—श. ब्रा. ७, २, १, ३;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

समाप्ति

सम्यगाप्यायते बलमनयेति समाप्तिर्मेखला। —श. ब्रा. ३, १, ५, १०;

समीषन्ती

समित्येकीभावे सवनत्रयेऽप्येकीभूय ईषति गच्छतीति समीषन्ती।
—तां. म. ब्रा. ३, ११, ४;

समुद्र

समुद्रवन्ति समुद्गच्छन्ति इति समुद्राः लोकाः।
—श. ब्रा. ७, ४, १, ६;

सम्पत्

सम्पद्यत इति सम्पत्। —श. ब्रा. ३, १, ४, १; ७, १, ४, ६;

सम्पात

सम्पतत्यनेन कर्मणा स्वर्गमिति संपातः। —तै. आ. ८, ८;

सम्पातत्व

संपतति सम्यक् प्राप्नोति लोकानेतैरिति संपातत्वं नाम संपन्नम्।
—ऐ. ब्रा. ४, २०, २;

सम्पारिणी

ताः पूर्वोक्ताः ऋजुनीति इन्द्रं वो यत्सोम इत्येतास्तिस्रः (ऋचः) स्वर्गप्राप्तये नौस्थानीयाः सम्यक् पारं नयन्तीति संपारिण्यः।
—ऐ. ब्रा. ६, २७, ३;

सम्प्रसाद

सम्यक् प्रसीदत्युपाध्युपशान्ताविति सम्प्रसादो जीवः।
—तै. आ. ८, २, १;

सम्भरण

यस्मात् सर्वाणि भूतानि सम्भ्रियन्ते स्वाङ्गैः सम्पूर्णैः अतः सम्भरतीति सम्भरणः संवत्सरः। —श. ब्रा. ८, २, ४, १४;

सम्राट्

(१) सम्यग्राजत इति सूत्रात्मा हिरण्यगर्भः सम्राट्।
—तै. आ. १०, २२;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

(२) सम्यग्राजत इति ।

—तै. ब्रा. १, १, ७, २; ४, ४, १०; २, ७, ७, २;

सयुज्

सह युञ्जत इति सयुजः । —श. ब्रा. ३, ४, ४, १७;

सर्प

सर्पन्ति गच्छन्तीति देवाः । —तै. ब्रा. २, २, ६, २;

सर्पिरासेचन

(१) सर्पिरासिच्यतेऽस्मिन्निति । —श. ब्रा. २, १, ४, ५;

(२) सर्पिः सर्पणशीलमाज्यमासिच्यते आनीयतेऽस्मिन्निति सर्पिरासेचनम् । —श. ब्रा. २, ४, ४, ६;

सर्वतात

सर्वे देवास्तायन्ते विस्तीर्यन्त एष्विति सर्वताता ये यज्ञाः ।

—तै. ब्रा. २, ७, १५, १;

सर्वराट्

सर्वेषु राजत इति । —श. ब्रा. ३, ४, ४, १५;

सर्वहुत्

सर्वात्मक पुरुषो यस्मिन्यज्ञे हूयते सोऽयं सर्वहुतः । —तै. आ. ३, १२, ४;

सव

सूयतेऽभिषिच्यते यजमानो यस्मिन् महाक्रतौ सोऽयमभिषेकयुक्तो महाक्रतुः सव इत्युच्यते । —तां. म. ब्रा. १८, ८, १; १०, १;

सवन

सूयते सोमोऽत्रेति सवनं सोमयागः । —सा. वि. ब्रा. १, ७, ३;

सव्यष्ठा

सव्यभागे तिष्ठतीति सव्यष्ठा । —श. ब्रा. ५, ३, ५, १८;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

सहस्कृत्

सहः शत्रूणामभिभवनं तद्वन्तः सहस्वन्तः तादृशं सहः शत्रुविषयकमभिभवनं करोतीति सहस्कृत् । —श. ब्रा. २, ३, २, २१;

सहस्पुत्र

सहत अभिभवति शत्रुमिति सहो बलं मथनकाले बलेनोत्पद्यमानत्वात् बलस्य पुत्रः । —श. ब्रा. ६, ४, ४, १४;

सहस्रसा

सहस्रं सनुते संभजतीति । —ऐ. ब्रा. ४, १८, ६;

सहस्रसाव्य

सहस्राणि अहानि कात्स्न्येंन सूयते अभिषूयते सोम इति सहस्रसाव्यम् ।
—तां. म. ब्रा. २५, ६, १;

सहस्राश्वीन

प्रबलोऽश्वः एकेनाह्ना यावन्ति योजनानि गच्छति तावद्योजनपरिमितो देशो आश्वीनः । स च सहस्रसंख्यया गुणितः सहस्राश्वीनः ।
—ऐ. ब्रा. २, ७, ७;

साकमेध

यस्मादस्मिन्यज्ञे पूज्यपूजकभावेन छन्दोदेवताः सोमश्च समैधन्त संभूय वृद्धिं प्राप्तास्तस्मात् साकमेधन्ते वर्धन्त एभिर्हविशेषैरिति तेषां साकमेधनामसंपन्नम् । —तै. ब्रा. १, ४, १०, ७-८;

सांग्रहणी

संगृह्यतेऽपेक्षितं सर्वंययाऽसौ संग्रहणी सैव सांग्रहणी ।
—तै. ब्रा. ३, ८, २, १;

साम

सामगानसामर्थ्येन तं सोमं समानयन् । समानीयतेऽनेनेति व्युत्पत्त्या सामनाम संपन्नम् । —तै. ब्रा. २, २, ८, ६;

सामगा

साम गायन्तीति सामगाः । —षड्. वि. ब्रा. ५, ३, ६;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

सामविधान

अथ सामविधानाख्ये तृतीये ब्राह्मणग्रंथे तेषु अनधिकृतानां वक्ष्यमाणानामजपृश्निवैखानसादीन् तेष्वशक्तानामन्येषां च शुद्धयर्थं कृच्छ्रादिप्रायश्चित्तानि तैरपहृतपाप्मनां स्वर्गादिफलप्राप्तये बहुविधाग्न्याधानाग्निहोत्रादि—प्रत्याम्नायरूपाणि सामानि विधास्यन्ते । तत एवास्य सामविधानमिति नाम संपन्नम् । सायणीयभाष्यप्रारम्भे—
सामविधानाख्ये ब्राह्मणे ।

सामिधेनी

सम्यगिध्यते ज्वाल्यतेऽग्निर्याभिस्ता सामिधेन्यः । —ऐ. आ. ५, १, १;

सायंयावान

सायंकाले यान्ति अग्निहोत्रिणो गृहं गच्छन्तीति सायंयावानः ।
—तै. ब्रा. २, १, ५, १०;

सारङ्ग

सारं कर्मसु श्रेष्ठं यागं गच्छतीति । —ऐ. ब्रा. ८, ३६, ७;

सीतासमद

कृष्टाः सीताः समृच्छन्ते सङ्गच्छन्ते यत्रासौ सीतासमदः ।
—श. ब्रा. ७, २, १, ३;

सीर

ईरया अन्नेन सह वर्तत इति सेरं एतदेव पारोक्ष्येण सीरमित्युच्यते ।
—श. ब्रा. ७, १, ४, २;

सुक्षिति

सुक्षियन्ति अस्मिन्निति व्युत्पत्त्या सुक्षितिः ।
—श. ब्रा. १४, १, २, २४;

सुत्रामन्

शोभनं यथा भवति तथा त्रायत इति सुत्रामा । —तै. ब्रा. २, ६, ४, ३;

सुत्या

यस्यां क्रियायां सोमः सूयतेऽभिषूयते सा सुत्या । —ऐ. ब्रा. १, ४, ६;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

सुदुघा

शोभनं क्षीरं दोग्धीति सुदुघा । —तै. ब्रा. २, ६, ४, ३;

सुधा

सुष्ठु धीयन्ते सुकृतिनोऽस्यां दिवि सा द्यौः सुधा । —ऐ. ब्रा. ३, १४, १;

सुपदी

सुष्ठु पद्यत इति सुपदी । —तै. ब्रा. २, ५, ८, १०;

सुम्नयु

सुम्नं सुखं स्वर्गादिलक्षणमात्मन इच्छतीति सुम्नयुः यजमानः ।

—श. ब्रा. १, ३, ३, २१;

सुम्नहू

सुम्नमाह्वयतीति । —श. ब्रा. ९, २, २, २०;

सुम्नायव

सुम्नं सुखमात्मन इच्छतीति सुम्नायव ऋत्विजः ।

—तै. ब्रा. १, २, १, १२;

सुरुच

सुष्ठु रोचन्ते सवितृप्रकाशेन दीप्यन्त इति सुरुचः पृथिव्यादिलोकाः ।

—श. ब्रा. ७, ३, १, १४;

सुवर्षा

सुवः स्वर्गस्यात्यरिष्टं विनाशयतीति सुवर्षाः । —तै. ब्रा. २, ७, ४, १;

सुशेव

सुष्ठु शोभनं शेवयति सुखयति तत्सुशेवम् । —श. ब्रा. ७, १, ४, ११;

सूयवसात्

सुष्ठु यवसं तृणं सूयवसम् । तदत्ति भक्षयतीति सूयवसात् ।

—ऐ. ब्रा. ५, २५, २;

सेळगा

इळाशब्देनान्नमुच्यते । तेन सह वर्तत इति सेळमन्नबहुलो देशस्तं गच्छन्तीति सेळगाः विहितकर्मानुष्ठायिनः । —ऐ. ब्रा. ७, ३१, १; ८, ३७, १;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

सोमक्रयण

सोमः कीयते यैर्गन्धर्वादिभिस्ते सोमक्रयणाः । —श. ब्रा. ३, ५, १, १६;

सोमतृप्सु

सोमेन तृप्यन्तीति सोमतृप्सवः यजमानाः । —तै. आ. १, १०, ४;

सोमपान

सोमः पीयतेऽनेनेति । —श. ब्रा. १, ५, २, २;

सोमपित्सरू

सोमं पिबतीति सोमपाः यजमानः तस्मिन् सोमपि यजमाने त्सरति पापादिकं नाशयतीति सोमपित्सरू । यद्वा सोममन्नं पाति रक्षति स सोमपा तस्मिन् वर्तमानं अशनाया दुःखं त्सरति नाशयतीति ।

—श. ब्रा. ७, १, ४, ११;

सोमोपनहन

सोम उपनह्यते येन तत् सोमोपनहनम् । —श. ब्रा. ३, २, ५, ३;

सौभर

अनेन समृद्धा प्रजाः प्रजापतिं यस्मान्नोऽस्मान् सुभृतमभार्षीत् भृतवानित्थं स्तुवीत तस्मात् सौभरमिति नाम संपन्नम् । —तां. म. ब्रा. ८, ८, १६;

सौभाग्य

भज्यते इति भगः । शोभनश्चासौ भगश्च सुभगः । तस्य भावः सौभाग्यम् । —सा. वि. ब्रा. २, ६, १;

स्तनयित्नु

स्तनयतीति व्युत्पत्त्या मेघवाची तथापि तस्य पृथगभिधानादत्र स्तवनमात्रमभिधत्ते । —श. ब्रा. १, ४, ३, १८;

स्थालीपाक

स्थाल्यां पच्यत इति स्थालीपाकश्चरुः । —सा. वि. ब्रा. १, २, २;

स्रुक्सम्मार्जन

स्रुचः समृज्यन्ते एभिरिति स्रुक्सम्मार्जनानि वेदाग्राण्यग्नावभ्यादधति ।

—श. ब्रा. १, ३, ४, ११;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

स्वगाकार

स्वगा स्वगतं तत्तत् देवतानां हविः करोतीति स्वगाकारः।

—तै. ब्रा. २, १, ५, २;

स्वधा

स्वस्मिन्नेव धीयतऽवस्थाप्यत इत्याश्रयान्तररहिता ब्रह्मरूपा चित् स्वधाशब्देनोच्यते। —तै. आ. १०, १०;

स्वर

निधनरूपः स्वरशब्दो गमनक्रियामाचष्टे स्वरति गच्छतीति व्युत्पत्तेः।

—तां. म. ब्रा. २४, ११, ६;

स्वराट्

(१) स्वयमेव राजत इति।

—तै. ब्रा. १, १, ७, २; श. ब्रा. ३, ४, ४, १५;

(२) स्वातंत्र्येण राजत इति। —तै. ब्रा. २, ७, ७, २;

(३) इन्द्रियादिनैरपेक्ष्येण स्वयमेव राजत इति अव्याकृताभिमानीश्वरः। —तै. आ. १०, २२;

(४) स्वायत्तं राजते ईष्टे इति स्वराट्। —श. ब्रा. ७, ३, १, ६;

(५) स्वयमेव राजत इति। —श. ब्रा. ७, ३, २, २३; ७, ४, १, ३०;

स्वरु

एतत् छिन्नं द्रव्यं अस्य यूपसंबंधि पुनः स्वमेव स्वकीयमेव अरुः गन्ता भवति। तस्मात् स्वयमियर्तीति स्वरुः। —श. ब्रा. ३, ५, ४, २४;

स्वर्ग

सुष्ठु अर्ज्यते शोभनेनार्जनेन गम्यत इति वा स्वर्गः।

—श. ब्रा. ११, १, १, २;

स्वर्वित्

स्वर्गं लम्भयतीति स्वर्वित्। —श. ब्रा. ९, १, ३, ८;

स्वसर

स्वयं सरति सर्वदा गच्छतीति स्वसर आदित्यः। —तै. ब्रा. २, ८, ६, ४;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

स्वसिच

स्वमात्मीयं यजमानशरीरं सिञ्चन्तीति स्वसिचः आपः ।

—श. ब्रा. ५, ३, ४, ५;

स्वादुसंमुद्

स्वादुना हविषा सम्यक् मोदन्त इति स्वादुसंमुदः ।

—तै. ब्रा. २, ५, २, ३;

स्वाधी

सुष्ठु आसमन्ताद् ध्यायतीति स्वाधीः । —ऐ. ब्रा. २, ६, २;

स्विष्टकृत्

(१) यत्पूर्वमिष्टं तत्सर्वं सुष्ठु कुर्वन्वर्तत इति व्युत्पत्त्या स्विष्टकृन्नाम संपन्नम् । —तै. ब्रा. २, ६, १०, ६;

(२) स्विष्टं शोभनं यज्ञं करोतीति स्विष्टकृत् ।

—श. ब्रा. २, ४, ३, ३९;

स्वौपशा

औपशो नाम जघनभागः सुजघना । यद्वा, उपशेते शयनं करोति यैरवयवविशेषैः ते सर्वेऽप्युपशा तेषां समूहः औपशः शोभनः शयनविदग्धो विलासचतुरः औपशोऽवयवसमूहः यस्याः सा स्वौपशा ।

—श. ब्रा. ६, ३, ६, १०;

ह

हंस

(१) जगद्ब्रह्मरूपेणावभासत इत्ययं मन्त्रार्थं प्रदर्श्यते । तदर्थमादौ जगदनूद्यते हन्ति सर्वदा गच्छतीति हंस आदित्यः ।

—तै. आ. १०, १०;

(२) हन्ति सर्वदा गच्छतीति । —ऐ. ब्रा. ४, १८, ६;

(३) हन्ति वर्षणाय मेघं भिनत्तीति । —ऐ. आ. २, ३, ५ (१७);

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

(४) हन्ति पृथिवीमिति हंसः रथः। —श. ब्रा. ५, ३, ५, २२;

(५) हन्ति गच्छतीति सूर्यः। —श. ब्रा. ५, ३, ५, २२;

हरित्

प्राच्यादिदिशस्तत्तत्कर्मसु विहिताः सत्योऽनुष्ठानवैकल्यं हरन्तीति हरिच्छब्देनोच्यन्ते। —ऐ. आ. २, १, १;

हव

(१) हूयते देवाऽस्मिन्निति हवः। —ऐ. ब्रा. १, १, २;

(२) हूयतेऽत्रेति हवो यज्ञः। —ऐ. ब्रा. २, ७, ५; ऐ. आ. १, १, ४;

हवनश्रुत्

हवनमाह्वानं शृणोतीति हवनश्रुत्।
—तै. आ. ३, ३, १; तै. ब्रा. २, २, २, २;

हवमान

देवानाह्वयति तेभ्यो जुहोतीति वा हवमानशब्दो यजमानवाचीत्यर्थः।

हविर्धाने

हविः सोमरूपं धत्तो धारयत इति हविर्धाने द्वे शकटे।
—ऐ. ब्रा. १, ५, ३;

हव्यवाट्

हव्यं वहतीति हव्यवाट्। —ऐ. ब्रा. २, १०, २; तै. ब्रा. २, ७, १२, २;

हव्यवाह

हव्यं वहतीति हव्यवाहोऽग्निः। —तै. ब्रा. १, २, १, ८;

हव्यवाहन

देवेभ्यो दीयमानं हविर्हव्यं……तद् वहति। —श. ब्रा. २, ५, २, ३०;

हिरम्य

हितेऽस्मिन् रमत इति व्युत्पत्त्या हिरम्यमिति नाम संपन्नम् तदेव पारोक्ष्येण हिरण्यमिति उच्यते। —श. ब्रा. ७, ३, १, १४;

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

हुताद

ये ब्राह्मणा सन्ति एताः प्रजा आर्त्विज्यसद्भावात् हुतशेषमदन्ति भक्षयन्तीति हुतादः । —ऐ. ब्रा. ७, ३४, १;

होता

जुहोत्यस्मिन्नग्नाविति होताऽग्निः । —ऐ. ब्रा. १, ५, ४;

होतृषदन

होता सीदत्यस्मिन्निति होतृषदनम् । —श. ब्रा. २, ४, ३, ३०;

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

T CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy